महाभारत-कथा

[१]

[तमिल ग्रंथ 'व्यासर विरून्दु' का अनुवाद]

रचयिता

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादक

श्री पू. सोमसुन्दरम्

१९४९

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

दूसरी बार १९४९

मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक,
देवीप्रसाद शर्मा,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

प्राक्कथन

(दूसरे संस्करण के लिए खास तौर से लिखित)

मैं समझता हूं कि अपने जीवन में मुझसे जो सबसे बड़ी सेवा बन सकी है, वह है महाभारत को तमिल-भाषियों के लिए कथाओं के रूप में लिख देना। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' ने 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के एक दक्षिण भारतीय द्वारा किये हुए हिन्दी रूपान्तर को बढ़िया मानकर उत्तर भारत के पाठकों के समक्ष उपस्थित करने के लिए स्वीकार कर लिया है।

मेरा विश्वास है कि महाभारत की ये संक्षिप्त कथाएं पाठकों को पहले की अपेक्षा अच्छा आदमी, अच्छा चिंतक और अच्छा हिन्दू बनावेंगी।

नई दिल्ली,
मार्च १९४९

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दो शब्द

(पहले संस्करण के लिए)

आज से ढाई वर्ष पूर्व मैंने 'कल्की' नामक पत्रिका में शिशुपाल की कहानी लिखी थी जिसका शीर्षक था 'प्रथम ताम्बूल'। उसे देखकर 'कल्की' के सम्पादक श्री कृष्णमूर्ति और श्री टी के चिदबरनाथ मुदलियार ने मुझे प्रोत्साहन देते हुए कहा कि जब महाभारत में ऐसी सुन्दर बातें हैं कि जिन्हे पढकर मालूम होता है मानो आज ही कल की बातें हो, तो क्यो नही आप क्रमश सारे महाभारत की कथा लिख डालें।

मैंने उनकी बात मान ली। लिखना आरम्भ तो किया, लेकिन डरते-डरते। थोडे ही दिनो के बाद मेरा आनन्द, भक्ति और उत्साह बढ़ने लगा और पुस्तक के १०८ अध्याय तैयार हो गए। मेरे तमिल भाई कथा सुनने बैठे हे ऐसी कल्पना करके कहानी सुनाने के ढंग से ही भक्ति व श्रद्धा के साथ मैंने लिखना शुरू किया। इससे मुझे इस काम में श्रम मालूम नही हुआ।

हमारे देश मे कोई भी व्यक्ति ऐसा नही होगा जो महाभारत और रामायण से परिचित न हो, लेकिन ऐसे बहुत थोडे लोग होगे जिन्होंने कथावाचको और भाष्यकारो की नवीन कल्पनाओ से अछूते रहकर उनका अध्ययन किया हो। इसका कारण संभवत. यह हो कि ये नई कल्पनाएं बड़ी रोचक हो। पर महामुनि व्यास की रचना मे गाभीर्य और अर्थ-गूढ़ता है, उसे उपस्थित करना और किसीके लिए संभव नही। यदि लोग व्यास के महाभारत को, जिसकी गणना हमारे देश के प्राचीन और महाकाव्यो में की जाती है और जो अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ है, अच्छे, वाचकों से सुनकर उसका मनन करें तो मेरा विश्वास है कि वे

ज्ञान, क्षमता और आत्म-शक्ति प्राप्त करेगे। महाभारत से बढ़कर और कही भी इस बात की शिक्षा नही मिल सकती कि जीवन मे विरोधभाव, विद्वेष और क्रोध से सफलता नही मिल सकती।

प्राचीन काल में बच्चो को पुराणों की कहानिया दादियां सुनाया करती थी, लेकिन अब तो बेटे-पोते वाली महिलाओं को भी ये कहानिया ज्ञात नही है। इसलिए अगर इन कहानियो को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाय तो उससे भारतीय परिवारों को लाभ ही होगा।

महाभारत की इन कथाओ को केवल एक बार पढ लेने से ही काम न चलेगा। इन्हे बार-बार पढ़ना चाहिए, गांवों में बे-पढे-लिखे स्त्री-पुरुषों को इकट्ठा करके दीपक के उजाले मे इन्हे पढकर सुनाना चाहिए। ऐसा करने से देश में ज्ञान, प्रेम और धर्म-भावनाओं का प्रसार होगा, सबका भला होगा।

प्रश्न हो सकता है कि पुस्तक मे चित्र क्यो नही दिये गए ? इसका कारण है। मेरी धारणा है कि हमारे चित्रकारों के चित्र सुन्दर होने पर भी यथार्थ और कल्पना के बीच जो सामंजस्य होना चाहिए, वह स्थापित नहीं कर पाते। भीम को साधारण पहलवान, अर्जुन को नट और कृष्ण को छोटी लडकी की तरह चित्रित करके दिखाना ठीक नहीं है। पात्रों के रूप की कल्पना पाठको की भावना पर छोड देना ही अच्छा है।

सन् १९४६ —च० राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

महाभारत-कथा

[१]

महाभारत-कथा

गणेशजी की शर्त

भगवान् व्यास महर्षि पराशर के कीर्तिमान् पुत्र थे। चारो वेदो को क्रमबद्ध करके उनका सकलन करने का श्रेय इन्हीको है। महाभारत की पावन कथा भगवान् व्यास ही की देन है।

महाभारत की कथा व्यासजी के मानस-पटल पर अकित हो चुकी थी। लेकिन उनको यह चिता हुई कि इसे ससार को किस तरह प्रदान करें। यह सोचते-सोचते उन्होंने ब्रह्मा का ध्यान किया और ब्रह्मा प्रत्यक्ष हुए। व्यासजी ने उनके सामने सिर नवाया और हाथ जोडकर निवेदन किया—

"भगवन् ! एक महान् ग्रथ की रचना मेरे मानस-पटल पर हुई है। अब चिता इस बात की है कि इसे लिपिबद्ध कौन करे ?"

यह सुन ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होने व्यासजी की बहुत प्रशंसा की और बोले—"तात ! तुम गणेशजी को प्रसन्न करो। वे ही तुम्हारे ग्रथ को लिखने में समर्थ होगे।" यह कह ब्रह्मा अन्तर्द्धान हो गए।

महर्षि व्यास ने गणेशजी का ध्यान किया। प्रसन्नवदन गणेशजी व्यासजी के सामने उपस्थित हुए। महर्षि ने उनकी विधिवत पूजा की और उनको प्रसन्न देखकर बोले—"हे गणेश, एक महान् ग्रथ की रचना मेरे मस्तिष्क मे हुई है। आपसे प्रार्थना है कि आप उसे लिपिबद्ध करने की कृपा करें।"

गणेशजी ने व्यासजी की प्रार्थना स्वीकार तो की; लेकिन बोले—"आपका ग्रंथ लिखने को में तैयार हूं, लेकिन शर्त यह है कि अगर मैं लिखना शुरू करूं तो फिर मेरी लेखनी ज़रा भी न रुकने पाये। अगर

आप लिखाते-लिखाते ज़रा भी रुक गए तो फिर मेरी लेखनी भी रुक जायगी और फिर आगे नहीं चलेगी। क्या आपसे यह हो सकेगा ?"

गणेशजी की शर्त जरा कठिन थी। लेकिन व्यासजी ने तुरत मान ली। वह बोले—"आपकी शर्त मुझे मजूर है, पर विघ्नहर, मेरी भी एक शर्त है। वह यह कि आप भी जब लिखे तब हर श्लोक का अर्थ ठीक-ठीक समझ लें तभी लिखे।"

व्यासजी का यह कथन सुन गणेशजी हंस पड़े। बोले—"तथास्तु"

और व्यासजी और गणेशजी आमने-सामने बैठ गये। व्यासजी बोलते जाते थे और गणेशजी लिखते जाते थे। गणेशजी की गति तेज थी इस कारण बीच-बीच मे व्यासजी श्लोको को ज़रा जटिल बना देते थे कि गणेशजी को समझने मे कुछ देर लग जाती थी और उनकी लेखनी कुछ देर के लिए रुक जाती थी। इसी बीच व्यासजी कई और श्लोकों की मन-ही-मन रचना कर लेते थे। इस तरह महाभारत की कथा व्यासजी की ओजपूर्ण वाणी से प्रवाहित हुई और गणेशजी की अथक लेखनी ने उसे लिपिबद्ध किया।

ग्रथ तैयार हो गया तो व्यासजी के मन में उसे सुरक्षित रखने तथा उसके प्रचार का प्रश्न उठा। उन दिनों छापेखाने तो थे नही। लोग ग्रथो को कण्ठस्थ कर लिया करते थे और इस प्रकार स्मरण-शक्ति के सहारे उनको सुरक्षित रखते थे। व्यासजी ने भारत की यह कथा सबसे पहले अपने पुत्र शुकदेव को कण्ठस्थ कराई और बाद में अपने दूसरे शिष्यो को भी।

●

कहते है कि देवो को नारदमुनि ने महाभारत की कथा सुनाई थी, और शुक मुनि ने गन्धर्वों, राक्षसों तथा यक्षो मे इसका प्रचार किया। यह तो सब जानते ही है कि मानव जाति में महाभारत की कथा का प्रचार महर्षि वैशपायन के द्वारा हुआ। वैशपायन व्यासजी के प्रमुख शिष्य थे। वह बड़े विद्वान् और धर्मनिष्ठ थे।

महाराजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने एक बड़ा यज्ञ किया। उसमे महाभारत की कथा सुनाने की प्रार्थना उन्होंने वैशंपायन से की थी।

वैशपायनजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और महाभारत की कथा विस्तार-पूर्वक कह सुनाई।

इस महायज्ञ में सुप्रसिद्ध पौराणिक सूतजी भी मौजूद थे। महाभारत की कथा सुनकर वह बहुत ही प्रभावित हुए। भगवान् व्यास के इस महाकाव्य का मनुष्यमात्र को लाभ पहुचाने की इच्छा उनके मन में प्रबल हुई। इस उद्देश्य से सूतजी ने नैमिषाराण्य में समस्त ऋषियों की एक सभा बुलाई। महर्षि शौनक इस सभा के अध्यक्ष हुए।

"महाराज जनमेजय के नाग-यज्ञ के अवसर पर महर्षि वैशंपायन ने व्यासजी की आज्ञा से भारत की कथा सुनाई थी। वह पवित्र कथा मैंने सुनी और तीर्थाटन करते हुए कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि को भी जाकर देखा।"

इस भूमिका के साथ सूतजी ने ऋषियों की इस सभा में महाभारत की कथा प्रारम्भ की।

●

महाराजा शान्तनु के बाद उनके पुत्र चित्रांगद हस्तिनापुर की गादी पर बैठे। उनकी अकाल मृत्यु हो जाने पर उनके भाई विचित्रवीर्य राजा हुए। उनके दो पुत्र हुए—धृतराष्ट्र और पाण्डु। बड़े लड़के धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्धे थे। इसलिए पाण्डु को गद्दी पर बिठाया गया।

पाण्डु ने कई वर्षों तक राज्य किया। उनके दो रानिया थी—कुन्ती और माद्री। कुछ काल राज्य करने के बाद पाण्डु अपने किसी अपराध के प्रायश्चित्तार्थ तपस्या करने जगल मे गए। उनकी दोनो रानियां भी उनके साथ ही गई। वनवास के समय कुन्ती और माद्री ने पांचों पांडवो को जन्म दिया। कुछ समय बाद पाण्डु की मृत्यु हो गई। पाचों अनाथ बच्चो का वन के ऋषि-मुनियो ने पालन-पोषण किया और पढाया-लिखाया। जब युधिष्ठिर सोलह वर्ष के हुए तो ऋषियों ने पाचो कुमारो को हस्तिनापुर ले जाकर पितामह भीष्म के हवाले कर दिया।

पांचों पांडव बुद्धि के तेज और शरीर के बली थे। छुटपन में ही उन्होने वेद, वेदांग तथा अनेक शास्त्रों का संपूर्ण अध्ययन कर लिया था

और क्षत्रियोचित विद्याओ मे भी दक्ष हो गये थे। उनकी प्रखर बुद्धि और मधुर स्वभाव ने सबको मोह लिया था। यह देखकर धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव उनसे जलने लगे और उन्होंने उनको तरह-तरह के कष्ट पहुंचाना शुरू किया।

दिन-पर-दिन कौरव-पाडवो के बीच वैर-भाव बढता गया। अन्त में पितामह भीष्म ने दोनों को किसी तरह समझाया और उनमें सन्धि कराई। भीष्म के आदेशानुसार कुरु-राज्य के दो हिस्से किये गए। कौरव हस्तिनापुर में ही राज करते रहे और पांडवो को एक अलग राज्य दिया गया, जो आगे चलकर इन्द्रप्रस्थ के नाम से मशहूर हुआ। इस प्रकार कुछ दिन शान्ति रही।

उन दिनो राजा लोगों में जुआ (चौपड) खेलने का आम रिवाज था। राज्य तक की बाजिया लगाई जाती थी। इस रिवाज के मुताबिक एकबार पाडवो और कौरवो ने जुआ खेला। कौरवो की तरफ से कुशल शकुनि खेला। उसने धर्मात्मा युधिष्टिर को हरा दिया। इसके फल-स्वरूप पाडवों का राज्य छिन गया और उनको तेरह वर्ष का बनवास भोगना पड़ा। उसमे एक शर्त यह भी थी कि बारह वर्ष के बनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास करना होगा। उसके बाद उनका राज्य उन्हे लौटा दिया जायगा।

द्रौपदी के साथ पांचो पाडव बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास मे बिताकर लौटे। पर लालची दुर्योधन ने लिया हुआ राज्य वापस करने से इन्कार कर दिया। अतः पाडवो को अपने राज्य के लिए लड़ना पडा। युद्ध मे सारे कौरव मारे गये। पांडव उस विशाल साम्राज्य के स्वामी हुए।

इसके बाद छत्तीस वर्ष तक पाडवो ने राज्य किया और फिर अपने पोते परीक्षित को राज्य देकर द्रौपदी के साथ तपस्या करने हिमालय चले गए।

संक्षेप में यही महाभारत की कथा है।

●

महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भण्डार के सर्वश्रेष्ठ महा-ग्रन्थो में की जाती है। इसमें पाण्डवों की कथा के साथ कई सुन्दर उप-

कथाए भी हैं। बीच-बीच में सूक्तियों तथा उपदेशों के भी उज्ज्वल रत्न जड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं।

रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल-स्रोत माने जा सकते हैं।

: १ :

देवव्रत

'सुन्दरी, तुम कोई भी हो, मेरा प्रेम स्वीकार कर लो और मेरी पत्नी बन जाओ। मेरा राज्य, मेरा धन,, यहांतक कि मेरे प्राणतक आज से तुम्हारे अर्पण हैं।" प्रेम विह्वल राजा ने उस दैवी सुन्दरी से याचना की।

देवी गंगा एक सुन्दर युवती का रूप धारण किये नदी के तट पर खड़ी थी। उसके सौंदर्य और नवयौवन ने राजा शान्तनु को मोह लिया था।

स्मित-वदना गंगा बोली—"राजन्! आपकी पत्नी होना मुझे स्वीकार है। पर इससे पहले आपको मेरी कुछ शर्तें माननी होंगी। मानेंगे ?"

राजा ने कहा—"अवश्य।"

गंगा बोली—"मुझसे कोई यह न पूछ सकेगा कि मैं कौन हूं और किस कुल की हूं ? मैं कुछ भी करू—अच्छा या बुरा, मुझे कोई न रोके। मेरी किसी भी बात पर कोई मुझपर नाराज न हो और न कोई मुझे डाटे-डपटे। ये मेरी शर्तें हैं। इनमें से एक के भी तोड़े जाने पर मैं आपको छोडकर तुरत चली जाऊगी। आपको ये स्वीकार है ?"

राजा शान्तनु ने गंगा की शर्तें मान ली और वचन दिया कि वह उनका पूर्ण रूप से पालन करेंगे।

गंगा राजा शान्तनु के भवन की शोभा बढ़ाने लगी। उसके शील-स्वभाव, नम्रता और अचंचल प्रेम को देखकर राजा शान्तनु मुग्ध हो

गये। काल-चक्र तेजी से घूमता गया; और प्रेम-सुधा-मग्न राजा और गंगा को उसकी खबरतक न थी।

समय पाकर गगा से शान्तनु के कई तेजस्वी पुत्र हुए; पर गंगा ने उनको जीने न दिया। बच्चे के पैदा होते ही वह उसे नदी की बढ़ती हुई धारा मे फेंक देती और फिर हसती-मुस्कराती राजा शान्तनु के पास आ जाती।

अज्ञात सुन्दरी के इस व्यवहार से राजा शान्तनु चकित रह जाते। उनके आश्चर्य और क्षोभ का पारावार न रहता। सोचते, यह स्मितवदन और मृदुल गात और यह पैशाचिक व्यवहार! यह तरुणी कौन है? कहा की है? इस तरह के कई विचार उनके मन में उठते, पर वचन दे चुके थे, इस कारण मन मसोस कर रह जाते।

●

सूर्य के समान तेजस्वी सात बच्चों को गगा ने इसी भाति नदी की धारा में बहा दिया। आठवा बच्चा पैदा हुआ। गगा उसे भी लेकर नदी की तरफ जाने लगी तो शान्तनु से न रहा गया। बोले—"ठहरो, बताओ कि यह घोर पाप करने पर क्यो तुली हो? मा होकर अपने नादान बच्चो को अकारण ही क्यो मार दिया करती हो? यह घृणित व्यवहार तुम्हें शोभा नही देता।"

राजा की बात सुनकर गगा मन-ही-मन मुस्कराई, पर क्रोध का अभिनय करती हुई बोली—

"राजन्! क्या आप अपना वचन भूल गये? मालूम होता है अब आपको पुत्र ही से मतलब है मुझसे नही। आपको मेरी क्या परवाह है! ठीक है। शर्त के अनुसार अब मैं जाती हू। हा, आपके इस पुत्र को मै नदी मे नही फेकूगी।" इसके बाद गगा ने अपना परिचय दिया और बोली—"राजन्! घबराओ मत। मै वह गगा हूं जिसका यश ऋषि-मुनि गाते हैं। जिन बच्चों को मैंने नदी की धारा में बहा दिया वे सात वसु थे। महर्षि वसिष्ठ ने आठो वसुओ को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया था। वसुओ ने मुझसे

प्रार्थना की थी कि मैं उनकी मां बनूं और जन्मते ही उनको नदी की धार में फेक दू ताकि मर्त्यलोक में अधिक समय जीवन न बिताना पडे। मैंने उनकी प्रार्थना मान ली, तुम्हे लुभाया और उनको जन्म दिया। यह अच्छा ही हुआ कि उन्होने तुम्हारे-जैसे यशस्वी राजा को पिता के रूप मे पाया। तुम भी भाग्यशाली हो जो ये आठ वसु तुम्हारे पुत्र हुए। तुम्हारे इस अन्तिम बालक को मै कुछ दिन पालूगी और फिर पुरस्कार के रूप में तुम्हे सौप दूगी।"

यह कहकर गंगादेवी बच्चे को साथ लेकर ओझल हो गई। यही बच्चा आगे चलकर भीष्म के नाम से विख्यात हुआ।

●

एक दिन आठो वसु अपनी पत्नियो सहित हसते-खेलते उस पहाडी के पास विचरण कर रहे थे जहा वसिष्ठ मुनि का आश्रम था। ऋतु सुहावनी थी और पहाड़ी का दृश्य मनोहर। वसु-दपति निकुजो और पहाडों पर विचरण करते हुए अपने खेल-कूद में मग्न थे कि इतने में वसिष्ठ मुनि की गाय नन्दिनी अपने बछडे के साथ चरती हुई उधर से आ निकली। उसके अलौकिक सौन्दर्य एवं दैवी छवि को देखकर वसु-पत्निया मुग्ध हो गई और उस मोदमयी गौ की प्रशसा करने लगी। एक वसु-पत्नी का मन उसको देखकर ललचा गया। उसने अपने पति प्रभास से अनुरोध किया कि यह गाय उसके लिए पकड ले।

सुनकर प्रभास को हंसी आई। उसने कहा—"प्रिये! हम लोग तो देवता है! दूध की हमें आवश्यकता ही क्या है? फिर हम महर्षि वसिष्ठ के तपोवन मे है और यह उनकी प्यारी गाय नन्दिनी है। इस गाय का दूध मनुष्य पिये तो चिरजीवी बन सकते है। हम तो खुद ही अमर ठहरे। इसे लेकर क्या करेगे? और फिर व्यर्थ ही मुनिवर का क्रोध क्यो मोल ले?"

इस प्रकार प्रभास ने अपनी पत्नी को बहुत ऊंच-नीच समझाया लेकिन उसने न माना। वह बोली—"यह गाय मै अपने लिए थोडे चाह रही हूं? बल्कि मर्त्यलोक में मेरी एक सहेली है, उसके लिए चाह रही हूं। महर्षि वसिष्ठ इस समय तो आश्रम में हैं नही। उनके आने से पहले

ही हमे इसे उडा ले जाना चाहिए। मेरे लिए क्या तुम इतना भी नही कर सकते ?"

प्रभास अपनी पत्नी की ज़िद टाल न सका। दूसरे वसुओ की सहायता से नन्दिनी और उसके बछड़े को वह भगा ले गया।

वसिष्ठ जब आश्रम लौटे तो नित्य की यज्ञानुष्ठान तथा पूजा-सामग्री प्रदान करनेवाली गाय और उसके बछड़े को न पाया। गाय की खोज में उन्होंने सारा वन-प्रदेश छान डाला, पर वह न मिली। तब मुनि ने अपने ज्ञान-चक्षु से देखा तो उन्हें पता लगा कि यह तो वसुओ की करतूत है। वसुओं की इस धृष्टता पर मुनि वसिष्ठ का प्रशान्त मन क्रुद्ध हो उठा। चूकि वसुओं ने देवता होकर मनुष्य का-सा लालच किया था इसलिए मुनि ने शाप दिया कि ये आठों वसु मनुष्य-लोक मे जन्म लें।

मुनि का तपोबल ऐसा था कि उनके शाप देते ही वसुओ के मन मे घबराहट पैदा हो गई। बेचारे भागे आये और ऋषि के सामने गिडगिड़ाने और उनको मनाने लगे।

तब वसिष्ठ बोले—"मेरा शाप झूठा नही हो सकता। तुम लोगो को मर्त्य-लोक में जन्म तो लेना ही पड़ेगा। फिर भी प्रभास को छोड़कर बाकी सबके लिए इतना कर सकता हूं कि वे पृथ्वी पर जन्म लेते ही विमुक्त हो जायंगे। चूकि तुम्हे उभाड़ने वाला प्रभास था इसलिए उसे काफी दिन मर्त्य-लोक में जीवित रहना होगा। हा, वह होगा बडा यशस्वी।"

इतना कहकर मुनि शांत हो गये और अपनी क्रोध-विक्षत तपस्या मे फिर ध्यान लगाया।

मुनि के आश्रम से लौटते हुए वसु अपने मन में सोचने लगे कि मुनि ने इतनी कृपा तो की कि मृत्यलोक पर अधिक दिन नही रहना पड़ेगा। वहासे वे गगादेवी के पास गये और उनके सामने अपना दुखड़ा रोया। गगा से उन्होने प्रार्थना की कि पृथ्वी पर वे ही उनकी माता बने और उत्पन्न होते ही उनको जल में डुबोकर मुक्त कर दे। गंगा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्हींकी प्रार्थनानुसार गंगा

ने यशस्वी शान्तनु को लुभाया और उनके सात बच्चों को, जो वसु ही थे, नदी में प्रवाहित कर दिया था।

●

गंगा चली गई तो राजा शान्तनु का मन विरक्त होगया। उन्होंने भोगविलास से जी हटा लिया और राज-काज में मन लगाने लगे।

एक दिन राजा शिकार खलते-खेलते गंगा के तट पर चले गये तो एक अलौकिक दृश्य देखा! किनारे पर देवराज के समान एक सुन्दर और गठीला युवक खडा गंगा की बहती हुई धारा पर वाण चला रहा था। वाणो की बौछार से गंगा की प्रचण्ड धारा एकदम रुकी हुई थी। यह दृश्य देखकर शान्तनु दंग रह गये

इतने मे ही राजा के सामने स्वयं गंगा आ खडी हुई। गंगा ने युवक को अपने पास बुलाया और राजा से बोली—"राजन्, पहचाना तुमने मुझे और इसे? यही तुम्हारा और मेरा आठवां पुत्र देवव्रत है। महर्षि वशिष्ठ ने इसे वेदो और वेदांतो की शिक्षा दी हैं। शास्त्र-ज्ञान मे शुक्राचार्य और रण-कौशल में परशुराम ही इसका मुकाबला कर सकते हे। यह जितना कुशल योद्धा है, उतना ही चतुर राजनीतिज्ञ भी है। आपका पुत्र अब आपको सौप रही हूं। अब ले जाइये इसे अपने साथ।"

गंगादेवी ने देवव्रत का माथा चूमा और आशीर्वाद देकर राजा के साथ उसे बिदा किया।

: २ :

भीष्म-प्रतिज्ञा

तेजस्वी पुत्र को पाकर राजा प्रफुल्लित मन से नगर को लौटे। और देवव्रत राजकुमार के पद को सुशोभित करने लगे।

●

चार वर्ष और बीत गये। एक दिन राजा शान्तनु जमुना तट की तरफ घूमने गए तो वहां के वातावरण को अनैसर्गिक सुगन्धि से भरा पाया।

उन्हें आश्चर्य हुआ कि ऐसी मनोहारिणी सुवास कहां से आ रही होगी इस बात का पता लगाने के लिए वह जमुना तट पर इधर-उधर खोजने लगे कि सामने अप्सरा-सी सुन्दर एक तरुणी खड़ी दिखाई दी। राजा को मालूम हुआ कि उसी सुन्दरी की कमनीय देह से यह सुवास निकल रही है और सारे वन-प्रदेश को सुवासित कर रही है।

तरुणी का नाम सत्यवती था। पराशर मुनि से उसे वरदान मिला था कि उसके सुकोमल शरीर से दिव्य गन्ध निकलती रहेगी।

गगा के वियोग के कारण राजा के मन मे जो विराग छाया हुआ था वह इस सौरभमयी तरुणी को देखते ही विलीन होगया। उस अलौकिक सुन्दरी को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा उनके मन मे बलवती हो उठी। उन्होने सत्यवती से प्रेम-याचना की। सत्यवती बोली—"मेरे पिता मल्लाहो के सरदार है। उनकी अनुमति ले लो तो मै आपकी पत्नी बनने को तैयार हू।"

उसकी मीठी बोली उसके सौन्दर्य के अनुरूप ही थी।

पर केवट-राज बड़े चतुर निकले। राजा शान्तनु ने जब अपनी इच्छा उन पर प्रकट की तो दाशराज ने कहा—

"जब लडकी है तो इसका विवाह भी किसी-न-किसी से करना ही होगा। और इसमें सन्देह नही कि आपके जैसा सुयोग्य वर इसको और कहा मिलेगा ? पर मुझे एक बात का वचन देना पडेगा।"

राजा ने कहा—"जो मागोगे दूगा, यदि वह मेरे लिए अनुचित न हो।"

केवटराज बोले—"आपके बाद हस्तिनापुर के राज-सिहासन पर मेरी लडकी का पुत्र बैठे। क्या इस बात का आप मुझे वचन दे सकते है ?"

केवटराज की शर्त राजा शान्तनु को नागवार गुजरी। काम-वासना से राजा की सारी देह विदग्ध हो रही थी। फिर भी उनसे ऐसा अन्यायपूर्ण वचन देते न बना। गगा-सुत को छोडकर अन्य किसी को राजगद्दी पर बिठाने की कल्पना तक उनसे न हो सकी। निराश और उद्विग्न मन से वे नगर को लौट आए। किसी से कुछ कह भी न सके।

पर चिन्ता उनके मन को कीड़े की तरह कुतर-कुतरकर खाने लगी। वह दिन-पर-दिन दुबले होने लगे।

●

देवव्रत ने देखा कि पिता के मन में कोई-न-कोई व्यथा समाई हुई है। एक दिन उसने शान्तनु से पूछा—

"पिताजी, ससार का कोई भी ऐसा सुख नही जो आपको प्राप्त न हो। फिर भी इधर कुछ दिनो से आप दुःखी दिखाई दे रहे है। आपका चेहरा पीला पड़ता जा रहा है और शरीर भी दुबला हो रहा है। आपको किस बात की चिन्ता है?"

शान्तनु को सच्ची बात कहते ज़रा झेप आई। फिर भी कुछ-न-कुछ तो बतलाना ही था। बोले—"बेटा! तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो। और युद्ध का तो तुम्हे व्यसन-सा हो गया है। किसी-न-किसी दिन तुम युद्ध में जाओगे अवश्य। और ससार में किसी बात का ठिकाना नही। परमात्मा न करे तुम पर कुछ बीत जाय तो फिर हमारे वश का क्या होगा? इसीलिए तो शास्त्रज्ञ लोग कहते है कि एक पुत्र का होना-न-होना बराबर है। मझे इसी बात की चिन्ता है कि वश की यह कडी बीच ही मे टूट न जाय।"

यद्यपि शान्तनु ने गोलमोल बाते बताई फिर भी कुशाग्र-बुद्धि देवव्रत को बात समझते देर न लगी। उन्होने राजा के सारथी से पूछताछ करके, उस दिन केवटराज से जमुना नदी के किनारे जो कुछ बाते हुई थी, इसका पता लगा लिया। पिताजी के मन की व्यथा जान कर देवव्रत केवटराज के पास गये और उससे कहा कि वह अपनी लड़की सत्यवती का विवाह महाराजा शान्तनु से करदे।

केवटराज ने अपनी वही शर्त दुहराई जो उन्होने शान्तनु के सामने रक्खी थी।

देवव्रत ने कहा—"यदि तुम्हारी आपत्ति का कारण यही है तो मै वचन देता हूं कि मै राज्य का लोभ नही करूगा। सत्यवती का ही पुत्र मेरे पिता के बाद राजा बनेगा।"

लेकिन केवटराज इसीसे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने और दूर की सोची। बोले—"आर्यपुत्र, निःसन्देह आप बड़े वीर हैं। आपने आज एक ऐसा कार्य किया है जो इतिहास में निराला है। अब आप ही मेरी कन्या के पिता बन जायं और इसे ले जाकर राजा शान्तनु को ब्याह दें। पर मेरे मन में एक और सन्देह रह गया है। उसे भी आप दूर कर दें तो फिर मुझे कोई आपत्ति न होगी।

"इस बात का तो मुझे पूरा भरोसा है कि आप अपने वचन पर अटल रहेंगे। किन्तु आपकी सन्तान से मैं वही आशा कैसे रख सकता हू ? आप जैसे वीर का पुत्र भी तो वीर ही होगा ! बहुत संभव है कि वह मेरे नाती से राज्य छीनने का प्रयत्न करे। इसके लिए आपके पास क्या सामाधान है ?"

केवटराज का प्रश्न लाजवाब था। उसे सतुष्ट करने का यही अर्थ हो सकता था कि देवव्रत अपने भविष्य का बलिदान कर दें। पितृभक्त देवव्रत विचलित न हुए। सोच-समझकर गभीर स्वर में उन्होंने यह भयकर प्रतिज्ञा की—"मै जीवन भर ब्याह न करूंगा—ब्रह्मचारी रहूगा, ताकि मेरे सन्तान ही न हो।"

किसीको आशा न थी कि तरुण कुमार ऐसा कठोर व्रत धारण करेंगे। खुद केवटराज के रोमांच हो आया।

देवताओंने फूल बरसाये। दिशाये "धन्य महावीर, धन्य भीष्म" के घोष से गूज उठी। भयंकर कार्य करने वाले को भीष्म कहते हैं। देवव्रत ने भयंकर प्रण किया था, इसलिए उस दिन से उनका नाम भीष्म ही पड़ गया। केवटराज न सानन्द अपनी पुत्री को देवव्रत के साथ बिदा किया।

●

सत्यवती से शान्तनु के दो पुत्र हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। शान्तनु के देहावसान पर चित्रागंद और उनके मारे जाने पर विचित्र-वीर्य हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे। विचित्रवीर्य के दो रानियां थीं—अम्बिका और अम्बालिका। अम्बिका के पुत्र थे धृतराष्ट्र और अम्बालिका के पाण्डु। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाये और पाण्डु के पाण्डव।

महात्मा भीष्म शान्तनु के बाद से लेकर कुरुक्षेत्र-युद्ध के अन्त तक उस विशाल राजवंश के सम्मान्य कुलनायक और पूज्य बने रहे। शान्तनु के बाद कुरुवंश का क्रम यह रहा—
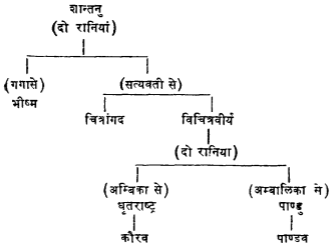
: ३ :

अम्बा और भीष्म

सत्यवती के पुत्र चित्रांगद बड़े ही वीर पर स्वेच्छाचारी थे। एक बार किसी गन्धर्व के साथ हुए युद्ध में वह मारे गए : उनके कोई पुत्र न था, इसलिए उनके छोटे भाई विचित्रवीर्य हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठे। विचित्रवीर्य की आयु उस समय बहुत छोटी थी। इस कारण उनके बालिग होते तक राज-काज भीष्म को ही सम्हालना पड़ा।

जब विचित्रवीर्य विवाह योग्य हुए तो भीष्म को उनके विवाह की चिन्ता हुई। उन्हें खबर लगी कि काशीराज की कन्याओं का स्वयंवर होनेवाला है। यह जानकर भीष्म बडे खुश हुए और स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए काशी रवाना हो गये।

काशीराज की कन्याएं अपूर्व सुन्दरियां थी। उनके रूप और गुण का यश दूर-दूर तक फैला हुआ था। इसलिए देश-विदेश के असंख्य राजकुमार उनके स्वयंवर मे भाग लेने के लिए आये थे। स्वयवर-मंडप उनकी भीड से खचाखच भरा हुआ था। राजपुत्रियां पाने के लिए आपस में बड़ी स्पर्द्धा थी।

क्षत्रियो में भीष्म की प्रतिष्ठा अद्वितीय थी। उनके महान् त्याग तथा भीषण प्रतिज्ञा का हाल सब जानते थे। इसलिए जब वह स्वयंवर मडप मे प्रविष्ट हुए तो राजकुमारो ने सोचा कि वह सिर्फ स्वयवर देखने के लिए आये होगे। परन्तु जब स्वयवर मे सम्मिलित होनेवालो मे उन्होने भी अपना नाम दिया तो अन्य कुमारो को निराश होना पडा। *उनको क्या पता था कि दृढव्रत भीष्म अपने लिए नही, किन्तु अपने* भाई के लिए स्वयंवर में सम्मिलित हुए है!

सभा में खलबली मची। चारो ओर से भीष्म पर फब्तिया कसी जाने लगी—"माना कि भारत-श्रेष्ठ भीष्म बडे बुद्धिमान और विद्वान् है, किन्तु साथ ही बूढे भी तो हो चले है। स्वयवर से इनसे मतलब? इनके प्रण का क्या हुआ? तो क्या इन्होने मुफ्त मे ही यश कमा लिया? जीवन-भर ब्रह्मचारी रहने की इन्होने जो प्रतिज्ञा की थी क्या वह झूठी ही थी?" इस भांति सब राजकुमारो ने भीष्म की हसी उड़ाई, यहा तक कि काशीराज की कन्याओ ने भी वृद्ध भीष्म की तरफ से दृष्टि फेर ली और उनकी अवगणना-सी करके आगे की ओर चल दी।

अभिमानी भीष्म इस अवहेलना को सह न सके। मारे क्रोध के उनकी आखे लाल हो गईं। उन्होंने सभी इकट्ठे राजकुमारों को युद्ध के लिए ललकारा और अकेले तमाम राजकुमारो को हराकर तीनो राजकन्याओं को बलपूर्वक लाकर रथ पर बिठा लिया और हस्तिनापुर को चल दिये। सौभदेश का राजा शाल्व बड़ा ही स्वाभिमानी था।

काशीराज की सबसे बड़ी कन्या अम्बा उसपर अनुरक्त थी और उसको ही मन में अपना पति मान लिया था। शाल्व ने भीष्म के रथ का पीछा किया और उसको रोकने का प्रयत्न किया। इसपर भीष्म और शाल्व के बीच घोर युद्ध छिड़ गया। शाल्व वीर अवश्य था; परन्तु धनुष के धनी भीष्म के आग कबतक ठहर सकता था? भीष्म ने उसे हरा दिया; किंतु काशीराज की कन्याओ की प्रार्थना पर उसे जीवित ही छोड़ दिया।

भीष्म काशीराज की कन्याओ को लेकर हस्तिनापुर पहुंचे। विचित्र-वीर्य के ब्याह की सारी तैयारी हो जाने के बाद जब कन्याओ को विवाह-मण्डप मे ले जाने का समय आया तो काशीराज की जेठी लडकी अम्बा एकात मे भीष्म से बोली--

"गागेय, आप बडे धर्मज्ञ हैं। मेरी एक शंका है, उसे आप ही दूर कर सकते है। मैंने अपने मन मे सौभ-देश के राजा शाल्व को अपना पति मान लिया था। उसके बाद ही आप बलपूर्वक मुझे यहां ले आये थे। आप सब शास्त्र जानते है। मेरे मन की बात जानने के बाद अब मेरे बारे मे जो उचित समझे, करे।"

धर्मात्मा भीष्म को अम्बा की बात जची। उन्होने अम्बा को उसकी इच्छानुसार उचित प्रबन्ध के साथ शाल्व के पास रवाना कर दिया और अम्बा की दोनो बहनों—अम्बिका और अम्बालिका का विचित्रवीर्य के साथ विवाह कर दिया।

अम्बा अपने मनोनीत वर सौभराज शाल्व के पास गई और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने कहा—

"राजन्! मै आपको ही अपना पति मान चुकी हूं। मेरे अनुरोध से भीष्म ने मुझे आपके यहा भेजा है। आप शास्त्रोक्त विधि से मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर लें।"

पर शाल्व ने न माना। उसने अंम्बा से कहा—"सारे राजकुमारों के सामने भीष्म ने मुझे युद्ध में पराजित किया और तुम्हें बलपूर्वक हरण करके ले गये। इतने बड़े अपमान के बाद मै तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूं? तुम्हारे लिए अब उचित यही है कि तुम भीष्म के पास

चली जाओ और उनकी सलाह के मुताबिक ही काम करो।' यह कह कर सौभराज शाल्व ने प्रणय-कामिनी अंबा को भीष्म के पास लौटा दिया।

बेचारी अंबा हस्तिनापुर लौट आई और भीष्म को सब हाल कह सुनाया। उन्होंने विचित्रवीर्य से कहा—"वत्स, राजा शाल्व अंबा को स्वीकार नही करता। इससे विदित होता है कि उसकी इच्छा अंबा को पत्नी बनाने की नही थी। अब इसके साथ तुम्हारे ब्याह करने में कोई आपत्ति नही रही।" पर विचित्रवीर्य अंबा के साथ ब्याह करने को राजी न हुए। क्षत्रिय जो ठहरे! बोले—"भाई साहब, इसका मन एक बार राजा शाल्व पर रीझ चुका है और यह उन्हें मन में अपना पति मान चुकी है। क्षत्रिय होकर ऐसी स्त्री के साथ कैसे ब्याह करू?"

बेचारी अंबा न इधर की रही न उधर की। कोई और रास्ता न देख वह भीष्म से बोली—"गागेय, मै तो दोनो ओर से ही गई। मेरा कोई सहारा न रहा। आप ही मुझे हर लाये थे। अतः अब आप ही का कर्त्तव्य है कि आप मेरे साथ ब्याह कर ले।"

भीष्म ने उसकी बात ध्यान से सुनी और अपनी प्रतिज्ञा की याद दिला कर बोले—"अपनी प्रतिज्ञा को मै नही तोड़ सकता।" उन्होने अंबा की परिस्थिति समझकर विचित्रवीर्य से दुबारा आग्रह किया कि वह अंबा के साथ ब्याह कर ले; पर उन्होने न माना। तब भीष्म ने अंबा को फिर समझाया और कहा कि सौभराज शाल्व ही के पास जाओ और एकबार फिर प्रार्थना करो। लेकिन अंबा को दुबारा शाल्व के पास जाते लज्जा आई। उसने भीष्म से बहुत आग्रह किया कि वे ही उसे पत्नी के रूप मे स्वीकार करले। किन्तु भीष्म अपनी प्रतिज्ञा से टस-से-मस न हुए।

लाचार अंबा फिर शाल्व के पास गई और उसने उसकी बहुत मिन्नतें कीं। लेकिन दूसरे की जीती हुई कन्या को स्वीकार करने से सौभराज ने साफ इन्कार कर दिया।

कमल-नयनी अंबा इसी भाति छः साल तक हस्तिनापुर और सौभ-देश के बीच ठोकरें खाती फिरी। रो-रोकर बिचारी के आसू

तक सूख गये। उसके दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसको पूछनेवाला कोई न रहा। और उसने अपने इस सारे दुःख का कारण भीष्म को ही समझा। उनपर उसे बहुत क्रोध आया और प्रतिहिंसा की आग उसके मन में जलने लगी।

भीष्म से बदला लेने की इच्छा से वह कई राजाओं के पास गई और उनको अपना दुखड़ा सुनाया। भीष्म से युद्ध करके उनका वध करने की उसने राजाओं से प्रार्थना की। पर राजा लोग तो भीष्म के नाम से डरते थे। किसीमें इतना साहस न था कि भीष्म का युद्ध मे सामना करे।

जब मनुष्यों से उसकी कामना पूरी न हो सकी तो अंबा ने भगवान् कार्त्तिकेय का ध्यान करते हुए घोर तपस्या आरंभ की। अन्त में उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर कार्तिकेय प्रकट हुए और सदा ताजे रहने वाले कमल के फूलों की माला अम्बा के हाथों मे देते हुए बोले—"अंबा, तेरी तपस्या सफल होगी। यह माला लो। जो इसे पहनेगा वह भीष्म के नाश का कारण होगा।"

माला पाकर अंबा बडी प्रसन्न हुई। उसने सोचा कि अब मेरी इच्छा पूरी होगी। माला लेकर वह फिर कई राजाओं के दरवाजे गई और प्रार्थना की कि कोई भी भगवान् कार्तिकेय का दिया हुआ यह हार पहन ले और भीष्म से युद्ध करे। पर किसी क्षत्रिय मे इतनी हिम्मत न थी कि महान् पाराक्रमी भीष्म से शत्रुता मोल लेता।

अब अंबा कुछ निराश हुई। पर फिर भी उसने हिम्मत न हारी। उसने सुना था कि पांचाल-देश के राजा द्रुपद बडे प्रतापी और वीर है। वह उनके पास गई और भीष्म से लड़ने के लिए प्रार्थना की। जब उन्होने भी उसकी बात न मानी तब तो उसकी आशा पर एकदम पानी फिर गया। हताश हो द्रुपद के ही महल के द्वार पर माला टाग कर वह चली गई। उसके उद्विग्न हृदय को कही शान्ति न मिली। मानो व्यथा ही उसकी एक-मात्र सहेली बन गई।

क्षत्रियो से एकदम निराश होकर अंबा ने तपस्वी ब्राह्मणों की शरण ली और उनसे कहा कि भीष्म ने कैसे उसके जीवन को सुख से रहित और अपमानपूर्ण बना दिया।

तपस्वियों ने कहा—"बेटी, तुम परशुराम के पास जाओ। तुम्हारी च्छा वे अवश्य पूरी करेंगे।" ऋषियों की सलाह पर अंबा क्षत्रिय-दमन परशुराम के पास गई।

अंबा की करुण कहानी सुनकर परशुराम का हृदय पिघल गया। उन्होंने दयार्द्र स्वर में कहा—"काशीराज-कन्ये, तुम मुझसे क्या चाहती हो? यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं शाल्व से तुम्हारा ब्याह करा दूं तो मैं प्रस्तुत हूं। शाल्व मेरा प्रिय है। वह मेरा कहा अवश्य मानेगा।

अबा ने कहा—"ब्राह्मण-वीर, मैं ब्याह करना नहीं चाहती। मेरी प्रार्थना केवल यही है कि आप भीष्म से युद्ध करें। मैं आपसे भीष्म के वध की भीख मागती हूं।"

परशुराम को अंबा की प्रार्थना पसंद आई। क्षत्रियो के शत्रु जो ठहरे! बड़े उत्साह के साथ वे भीष्म के पास गये और उन्हे युद्ध के लिए ललकारा। दोनों कुशल योद्धा थे और धनुष-विद्या के जानकार भी। दोनो ही जितेंद्रिय थे—ब्रह्मचारी थे। समान योद्धाओं की टक्कर थी। कई दिनों तक युद्ध होता रहा, फिर भी हार-जीत का निश्चय न हो सका। अन्त में परशुराम ने हार मान ली और उन्होंने अबा से कहा—"जो कुछ मेरे बस में था कर चुका। अब तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम भीष्म ही की शरण लो।"

●

अंबा के क्षोभ ओर शोक की सीमा न रही। निराश होकर वह हिमालय पर चली गई और कैलासपति महेश्वर को लक्ष्य करके कठोर तपस्या आरभ करदी। कैलासनाथ उससे प्रसन्न हुए और उसे दर्शन देकर बोले—"पुत्री, अगले जन्म में तुम्हारे हाथो भीष्म की मृत्यु होगी।" यह कहकर कैलासपति अन्तर्द्धान हो गए।

भीष्म से जितनी जल्दी हो सके बदला लेने के लिए अंबा उत्कंठित हो उठी। स्वाभाविक मृत्यु तक ठहरना भी उसको दूभर मालूम हुआ। उसने एक भारी चिता जलाई। क्रोध के कारण उसकी आंखें अग्नि के

समान ही प्रज्वलित हो उठीं। जब उसने धधकती हुई आग में कूदकर प्राणों की आहुति दी तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो अग्नि से अग्नि की भेंट हो रही हो।

महादेव के वरदान से अंबा दूसरे जन्म राजा द्रुपद की कन्या हुई। पिछले जन्म की बातें उसे भली भांति याद रही। जब वह जरा बडी हुई तो खेल-खेल में भवन के द्वार पर टंगी हुई वह कमल के फूलों की माला, जो अबा को पिछले जन्म में भगवान् कार्तिकेय से प्राप्त हुई थी, उठाकर उसने अपने गले में डाल ली। कन्या की यह बात देखकर राजा द्रुपद घबरा उठे। सोचा—इस पगली कन्या के कारण भीष्म से बैर क्यो मोल लू ? यह सोच राजा द्रुपद ने उसे अपने घर से निकाल दिया।

पर अंबा ऐसी बातो से कब विचलित होने वाली थी ? उसने बन में जाकर फिर तपस्या शुरू की और तपोबल से स्त्री-रूप छोड़कर पुरुष बन गई। और उसने अपना नाम शिखण्डी रख लिया।

जब कौरवो तथा पाण्डवों के बीच कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ तो शिखण्डी अर्जुन का सारथी बना। भीष्म के विरुद्ध लडते समय शिखण्डी ने ही अर्जुन का रथ चलाया था। शिखण्डी रथ के आगे बैठा था और अर्जुन ठीक उसके पीछे। ज्ञानी भीष्म को यह बात मालूम थी कि अबा ने ही शिखण्डी का रूप धारण कर लिया है। इस-लिए किसी भी हालत मे उन्होंने उसपर बाण चलाना अपनी वीरोचित प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। शिखण्डी को आगे करके अर्जुन ने भीष्म पितामह पर हमला किया और अन्त मे उनपर विजय प्राप्त की। जब भीष्म आहत होकर पृथ्वी पर गिरे तब जाकर अंबा का क्रोध शात हुआ।

: ४ :

कच और देवयानी

एक बार देवताओं और असुरो के बीच इस बात पर लड़ाई छिड़ गई कि तीनो लोकों पर किसका आधिपत्य हो। बृहस्पति देवताओ के गुरु थ और असुरो के शुक्राचार्य। वेद-मन्त्रो पर बृहस्पति का पूर्ण अधिकार

था और शुक्राचार्य का ज्ञान सागर-जैसा अथाह था। इन्ही दो ब्राह्मणो के बुद्धि-बल से देवासुर-संग्राम होता रहा।

शुक्राचार्य को मृत-सजीवनी विद्या का ज्ञान था, जिसके सहारे युद्ध में जितने भी असुर मारे जाते उनको वे फिर से जिला देते थे। इस तरह युद्ध मे जितने असुर खेत रहते वे शुक्राचार्य की सजीवनी विद्या से जी उठते और फिर मोर्चे पर आ डटते। देवताओ के पास यह विद्या थी नही। देव-गुरु बृहस्पति सजीवनी विद्या नही जानते थे। इस कारण देवता सोच मे पड गये। उन्होंने आपस मे इकट्ठे होकर मत्रणा की और एक युक्ति खोज निकाली। वे सब देव-गुरु के पुत्र कच के पास गये और उनसे बोले—"गुरुपुत्र! तुम हमारा काम बना दो तो बडा उपकार हो। तुम अभी जवान हो और तुम्हारा सौन्दर्य मन को लुभाने वाला है। तुम यह काम आसानी से कर सकोगे। तो करना यह है कि तुम शुक्राचार्य के पास ब्रह्मचारी बनकर जाओ और उनकी खूब सेवा-टहल करके उनके विश्वास-पात्र बन जाओ, उनकी सुन्दरी कन्या का प्रेम प्राप्त करो और फिर शुक्राचार्य से सजीवनी विद्या सीख लो।"

कच ने देवताओ की प्रार्थना मान ली।

शुक्राचार्य असुरो के राजा वृषपर्वा की राजधानी मे रहते थे। कच वहां पहुचकर असुर-गुरु के घर गया और आचार्य को दण्डवत करके बोला—"आचार्य, मै अंगिरा मुनि का पोता और बृहस्पति का पुत्र हू। मेरा नाम कच है। आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करने की कृपा करें। मै आपके अधीन पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करूगा।"

उन दिनो ब्राह्मणो मे यह नियम था कि कोई सुयोग्य व्यक्ति किसी उपाध्याय या आचार्य का शिष्य बनकर विद्याध्ययन करना चाहता उसकी प्रार्थना स्वीकार की जाती। शर्त यही रहती कि जो शिष्य बनना चाहे उसे ब्रह्मचर्य-व्रत का पूर्ण पालन करना आवश्यक होता था।

इस कारण विरोधीपक्ष का होने पर भी शुक्राचार्य ने कच की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होने कहा—"बृहस्पति-पुत्र, तुम अच्छे कुल के हो। तुम्हें मै अपना शिष्य स्वीकार करता हूं। इससे बृहस्पति भी गौरवान्वित होगे।"

कच ने ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा ली और शुक्राचार्य के यहां रहने लगा। वह बडी तत्परता के साथ शुक्राचार्य और उनकी कन्या देवयानी की सेवा-शुश्रूषा करने लगा। आचार्य शुक्र अपनी पुत्री को बहुत चाहते थे। इस कारण कच देवयानी को प्रसन्न रखने का हमेशा प्रयत्न करता। उसकी इच्छाओं का बराबर ध्यान रखता। इसका असर देवयानी पर भी हुआ। वह कच के प्रति आसक्त होने लगी, पर कच अपने ब्रह्मचर्य-व्रत पर दृढ रहा। इस तरह कई वर्ष बीत गए।

असुरो को जब पता चला कि देव-गुरु बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का शिष्य बना हुआ है तो उनको भय हुआ कि कही शुक्राचार्य से वह सजीवनी-विद्या न सीख ले। अत: उन्होने कच को मार डालने का निश्चय किया।

एक दिन कच जगल में आचार्य की गायें चरा रहा था कि असुर उसपर टूट पडे और उसके टुकडे-टुकडे करके कुत्तो को खिला दिया। साझ हुई तो गायें अकेली घर लौटी।

जब देवयानी ने देखा कि गायो के साथ कच नही आया है तो उसके मन में शका पैदा हो गई। उसका दिल धड़कने लगा। वह पिता के पास दौडी गई और बोली--"पिताजी, सूरज डूब गया। गायें अकेली वापस आ गई। आपका अनिहोत्र भी समाप्त हो गया। पर फिर भी न जाने क्यो कच अभी तक नही लौटा। मुझे भय है कि जरूर उस पर कोई-न-कोई विपत्ति आ गई होगी। उसके बिना मैं कैसे जिऊगी ?" कहते-कहते देवयानी की आखे भर आई।

अपनी प्यारी बेटी का कष्ट शुक्राचार्य से नही देखा गया। उन्होने संजीवनी-विद्या का प्रयोग किया और मृत कच का नाम पुकार कर बोले "आओ, कच ! मेरे प्रिय शिष्य, आओ !" सजीवन मन्त्र की शक्ति ऐसी थी कि शुक्राचार्य के पुकारते ही मरे हुए कच के शरीर के टुकडे कुत्तों के पेट फाड़कर निकल आये और जुड गये। कच फिर जीवित हो उठा और गुरु के सामने हाथ जोडकर आ खडा हुआ। उसके मुख पर आनन्द की झलक थी।

देवयानी ने पूछा--"क्यो कच ! क्या हुआ था ? किसलिए इतनी देर हुई ?"

कच ने सरल भाव से उत्तर दिया—"जंगल में गायें चराने के बाद लकडी का गट्ठा सिर पर रखे आ रहा था कि जरा थकावट मालूम हुई। एक बरगद के पेड की छाया मे जरा देर विश्राम करने बैठ गया। गायें भी पेड़ की ठडी छांह में खडी हो गईं। इतने में कुछ असुरों ने आकर पूछा—

"तुम कौन हो ?"

मैंने उत्तर दिया—"मै बृहस्पति का पुत्र कच हूं।" इसपर उन्होने तुरन्त मुझपर तलवार का वार किया और मुझे मार डाला। न जाने कैसे फिर में जीवित हो गया हू ! बस मै इतना ही जानता हू।"

कुछ दिन और बीत गये। एक बार कच देवयानी के लिए फूल लाने जंगल गया। असुरों ने वही उसे घेर लिया और खत्म कर दिया और उसके टुकडो को पीसकर समुद्र मे बहा दिया।

इधर देवयानी कच की बाट जोह रही थी। शाम होने पर भी जब कच न लौटा तो घबराकर उसने अपने पिता से कहा। शुक्राचार्य ने पहले ही की भाति सजीवन मन्त्र का प्रयोग किया। कच समुद्र के पानी से जीवित निकल आया और सारी बातें देवयानी को कह सुनाईं।

इस प्रकार असुर इस ब्रह्मचारी के पीछे हाथ धोकर ही पड गये। उन्होने तीसरी बार फिर कच की हत्या कर डाली, उसके मृत शरीर को जलाकर भस्म कर दिया और उसकी राख मदिरा मे घोलकर स्वयं शुक्राचार्य को पिला दी। शुक्राचार्य को मदिरा का बडा व्यसन था। असुरों की दी हुई सुरा बिना देखे-भाले पी गये। कच के शरीर की राख उनके पेट में पहुच गई।

सन्ध्या हुई, गाये घर लौट आईं; पर कच न आया। देवयानी फिर पिता के पास आखो मे आसू भरकर बोली—"पिताजी ! कच को पापियों ने फिर मार डाला मालूम होता है। उसके बिना मै पलभर भी जी नही सकती।"

शुक्राचार्य बेटी को समझाते हुए बोले—"मालूम होता है, असुर लोग कच के प्राण लेने पर तुले हुए हैं। मैं कितनी ही बार उसे क्यो न

जिलाऊं, आखिर वे उसे मारकर ही छोडेंगे। किसीकी मृत्यु पर शोक करना तुम-जैसी समझदार लडकी को शोभा नही देता। तुम मेरी पुत्री हो। तुम्हें कमी किस बात की है! सारा संसार तुम्हारे आगे सिर झुकाता है। फिर तुम्हें सोच किस बात का है? व्यर्थ शोक न करो।"

शुक्राचार्य ने हजार समझाया, किन्तु देवयानी न मानी। उस तेजस्वी ब्रह्मचारी पर तो वह जान देती थी। उसने कहा—"पिताजी, अगिरा ऋषि का पोता और देव-गुरु बृहस्पति का बेटा कच कोई ऐसा-वैसा युवक नही है। वह अटल ब्रह्मचारी है। तपस्या ही उसका धन है। वह यत्नशील था और कार्य-कुशल भी। ऐसे युवक के मारे जाने पर मै उसके बिना कैसे जी सकती हूं? मै भी उसीका अनुकरण करूगी।" यह कहकर शुक्र-कन्या देवयानी ने अनशन शुरू कर दिया--खाना-पीना छोड़ दिया।

शुक्राचार्य को असुरो पर बडा क्रोध आया। वे इस निश्चय पर पहुंचे कि अब असुरो का भला नही जो ऐसे निर्दोष ब्राह्मण को मारने पर तुले हुए है। यह निश्चय कर उन्होने कच को जीवित करने के लिए संजीवन-मन्त्र पढा और पुकारकर बोले—"वत्स, आ जाओ।"

उनके पुकारते ही कच जीवित हो उठा और आचार्य के पेट के अन्दर से बोला—"भगवन्, मुझे अनुगृहीत करें।"

अपने पेट के भीतर से कच को बोलते हुए सुनकर शुक्राचार्य बड़े अचरज मे पड़ गये और पूछा—"हे ब्रह्मचारी! मेरे पेट के अन्दर तुम कैसे पहुचे? क्या यह भी असुरो की ही करतूत है? जल्दी बताओ। मै इन पापियो का सत्यानाश कर दूगा और देवताओं के पक्ष का हो जाऊगा। जल्दी करो।" क्रोध के मारे शुक्राचार्य के ओठ फड़कने लगे।

कच ने शुक्राचार्य को पेट के अन्दर से ही सारी बातें बता दी।

महानुभाव, तपोनिधि तथा असीम महिमा वाले शुक्राचार्य को जब यह ज्ञात हुआ कि मदिरा-पान के ही कारण धोखे मे उनसे यह अनर्थ हुआ है तो उन्हें अपने ही ऊपर बड़ा क्रोध आया। तत्काल ही

मनुष्य-मात्र की भलाई के लिए यह अनुभव-वाणी उनके मुंह से निकल पड़ी—

"जो मन्दबुद्धि अपनी नासमझी के कारण मदिरा पीता है धर्म उसी क्षण उसका साथ छोड़ देता है। वह सभी की निन्दा और अवज्ञा का पात्र बन जाता है। यह मेरा निश्चित मत है। लोग आज से इस बात को शास्त्र मान लें और इसी पर चले।"

इसके बाद शुक्राचार्य ने शांत होकर अपनी पुत्री से पूछा—"बेटी, यदि मैं कच को जिलाता हूं तो मेरी मृत्यु हो जाती है; क्योकि उसे मेरा पेट चीरकर ही निकलना पडेगा। बताओ, तुम क्या चाहती हो?"

यह सुनकर देवयानी रो पड़ी। आसू बहाती हुई बोली—"हाय, अब मैं क्या करूं? कच के बिछोह का दुख मुझे आग की तरह जला देगा और आपकी मृत्यु के बाद तो मैं जीवित रह ही न सकूगी। हे भगवान्, मैं तो दोनों तरफ से मरी।"

शुक्राचार्य कुछ देर सोचते रहे। उन्होने दिव्य दृष्टि से जान लिया कि बात क्या है। वह कच से बोले—"बृहस्पति-पुत्र, तुम्हारे यहा आने का रहस्य मेरी समझ मे आ गया है। अब तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। देवयानी के लिए तुम्हे जिलाना ही पडेगा। साथ ही मुझे भी जीवित रहना होगा। इसका केवल एक ही उपाय है, और वह यह कि मैं तुम्हे संजीवनी विद्या सिखा दू। तुम मेरे पेट के अन्दर ही वह सीख लो। और फिर मेरा पेट चीरकर निकल आओ। उसके बाद उसी विद्या से तुम मुझे जिला देना।"

कच के मन की मुराद पूरी हो गई। उसने शुक्राचार्य के कहे अनुसार सजीवनी विद्या सीख ली और पूर्णिमा के चन्द्र की भाति आचार्य का पेट चीरकर निकल आया। मूर्त्तिमान बुद्धि के समान ज्ञानी शुक्राचार्य मृत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। थोडी ही देर मे कच ने सजीवन-मन्त्र पढ़कर उनको जिला दिया। देवयानी के आनन्द की सीमा न रही।

शुक्राचार्य जी उठे तो कच ने उनके आगे दण्डवत् की और अश्रुधारा से उनके पाव भिगोते हुए बोला—"अविद्वान् को विद्या पढ़ानेवाले

आचार्य माता और पिता के समान है। आपने मुझे एक नई विद्या प्रदान की। इसके अलावा अब आपकी कोख ही से मानो मेरा जन्म हुआ, सो आप सचमुच मेरे लिए मा के समान है।"

इसके बाद कई वर्ष तक कच शुक्राचार्य के पास ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए रहा। व्रत समाप्त होने पर गुरु से आज्ञा लेकर वह देवलोक को लौटने को प्रस्तुत हुआ तो देवयानी ने उससे कहा--"अंगिरा मुनि के पौत्र कच, तुम शीलवान हो, ऊचे कुल के हो। इन्द्रिय-दमन करके तुमने तपस्या की और शिक्षा प्राप्त की। इस कारण तुम्हारा मुखमण्डल सूर्य की भाति तेजस्वी है। जब तुम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहे थे तब मैंने तुमसे स्नेहपूर्ण व्यवहार किया था, अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम भी वैसा ही व्यवहार मुझसे करो। तुम्हारे पिता बृहस्पति मेरे लिए पूज्य है। अतः तुम अब मुझसे यथाविधि विवाह कर लो।" यह कह शुक्र-कन्या सलज्ज खडी रही।

यह कोई आश्चर्य की बात नही कि देवयानी ने ऐसी स्वतन्त्रता से बाते की। वह जमाना ही ऐसा था कि जब शिक्षित ब्राह्मण-कन्याये निर्भय तथा स्वतन्त्र होती थी। मन की बात कहते झिझकती न थी। इस बात की कितनी ही मिसाले हमारे पुराने ग्रथो मे पाई जाती है।

देवयानी की बात सुनकर कच ने कहा--"अकलंकिनी, एक तो तुम मेरे आचार्य की बेटी हो सो मेरा धर्म है मै तुम्हे पूज्य समझू। दूसरे मेरा शुक्राचार्य के पेट से मानो पुनर्जन्म हुआ, इससे भी मै तुम्हारा भाई बन गया हू। तुम मेरी बहन हो। अतः तुम्हारा यह अनुरोध न्यायोचित नही।"

किंतु देवयानी ने हठ नही छोड़ा। उसने कहा--"तुम तो बृहस्पति के बेटे हो, मेरे पिता के नही। तिस पर मै शुरू से ही तुमसे प्रेम करती आई हू। उसी प्रेम और स्नेह से प्रेरित होकर मैंने पिता से कहकर तुम्हे तीन बार जिलाया। मेरा विशुद्ध प्रेम तुम्हे स्वीकार करना ही होगा।"

देवयानी ने बहुत अनुनय-विनय की। फिर भी कच ने उसकी बातें न मानी। तब मारे क्रोध के देवयानी की भौहे टेढी हो गई और विशाल काली-काली आंखे लाल बन गई।

यह देखकर कच ने बडे नम्र भाव से कहा—"शुक्र-कन्ये ! तुम्हे मैं अपने गुरु से भी अधिक समझता हूं। तुम मेरी पूज्य हो। नाराज न होओ। मुझ पर दया करो। मुझे अनुचित कार्य के लिए प्रेरित न करो। मै तुम्हारे भाई समान हू। मुझे स्वस्ति कहकर विदा करो। आचार्य शुक्रदेव की सेवा-टहल अच्छी तरह और नियमपूर्वक करती रहना। स्वस्ति।" यह कहकर कच वेग से इन्द्रलोक चला गया।

शुक्राचार्य ने किसी तरह अपनी बेटी को समझा-बुझाकर शांत किया।

: ५ :

देवयानी का विवाह

असुर राजा वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा और शुक्राचार्य की बटी देवयानी एक दिन अपनी सखियों के संग बन में खेलने गई। खेल-कूद के बाद लडकिया तालाब में स्नान करने लगी। इतने मे जोरो की आंधी चली और सबकी साडिया उलट-पलट हो गईं। लड़किया नहाकर बाहर निकल आई और जो भी कपडा हाथ मे आया लेकर पहनने लगी। इस गडबडी मे वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा ने धोखे से देवयानी की साडी पहन ली। देवयानी को विनोद सूझा। उसने शर्मिष्ठा से कहा– -"अरी असुर-पुत्री ! क्या तुम्हें इतना भी पता नही कि गुरु-कन्या का कपडा शिष्य की लडकी को पहनना नही चाहिए ? सचमुच तुम बड़ी नासमझ हो !"

यद्यपि देवयानी को अपने ऊचे कुल का घमड जरूर था, लेकिन यह बात उसने मजाक में ही कही थी। राजकुमारी शर्मिष्ठा को इससे बड़ी चोट लगी। वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गई और बोली—"अरी भिखारिन ! क्या भूल गई कि मेरे पिताजी के आगे तेरे गरीब बाप हर रोज सिर नवाते हैं और उनके आगे हाथ फैलाते है ? भिखारी की लड़की होकर तेरा यह घमण्ड ! अरी ब्राह्मणी ! याद रख कि मैं उस राजा की कन्या हूं जिसके लोग गुण गाते हैं और तू उस दीन ब्राह्मण

की बेटी है जो मेरे पिता का दिया खाता है। इस फेर में न रहना कि तुम ऊचे कुल की हो। मै उस कुल की हूं जो देना जानता है लेना नही और तू उस कुल की है जो भीख मागकर निर्वाह करता है। एक दीन ब्राह्मणी की यह मजाल कि मुझे तमीज सिखाये; धिक्कार है तुझे और तेरे कुल को।"

यों असुरराज-कन्या देवयानी पर बरस पड़ी। उसके तीखे शब्द-बाण देवयानी से न सहे गए। वह भी क्रुद्ध हो उठी। राज-कन्या और गुरु-कन्या मे देर तक तू-तू मैं-मैं होती रही। आखिर हाथा-पाई तक नौबत आई। ब्राह्मणी की कन्या भला असुर-राज की बेटी के आगे कहां ठहर सकती थी? शर्मिष्ठा ने देवयानी के कसकर जोर का थप्पड़ लगाया और उसे एक अन्धे कुए में धकेल दिया। दैवयोग से कुआ सूखा था। असुर-कन्याओं ने समझा कि देवयानी मर चुकी होगी, वे महल लौट आईं।

देवयानी को कुए मे गिरने से बडी चोट आई। कुआं गहरा था। अतः वह अन्दर पड़ी तडफडाती रही। ऊपर न चढ सकी।

सयोग से भरतवंश के राजा ययाति शिकार खेलते हुए उधर से आ निकले। उन्हे प्यास लगी थी और वे पानी खोजते-खोजते उस कुएं के पास पहुंचे। कुएं के अदर झाका तो कुछ प्रकाश-सा दीखा। एकदम आश्चर्य-चकित रह गये। कुएं के अदर उन्होने बजाय पानी के एक तरुणी को देखा। उसका कोमल शरीर अगारो की भाति प्रकाशमान था और उससे सौन्दर्य की आभा फूट रही थी।

"तरुणी! तुम कौन हो? तुमने तो गहने पहने है। तुम्हारे नाखून लाल है। तुम किसकी बेटी हो? और किस कुल की हो! कुएं में कैसे गिर पडीं?" राजा ने आश्चर्य और अनुकपा के साथ पूछा।

देवयानी ने अपना दाहिना हाथ बढाते हुए राजा से कहा--"मै असुर-गुरु शुक्राचार्य की कन्या हू। पिताजी को यह मालूम नही है कि मै कुएं में पडी हूं। कृपाकर मुझे बाहर निकालियेगा।" राजा ने देवयानी का हाथ पकड़ कर कुएं से बाहर निकाल लिया।

शर्मिष्ठा से अपमानित होने पर देवयानी ने मन में निश्चय कर लिया था कि अब वह वृषपर्वा के राज्य में अपने पिताजी के पास वापस

नही जायगी । वहा जाने से बेहतर है कि कही और ही जगल म चली जाय। उसने ययाति से अनुरोध-पूर्ण स्वर में कहा--"मालूम नही आप कौन हैं ? पर ऐसा लगता है कि आप बड़े शक्तिशाली, यशस्वी और चरित्रवान् है। आप कोई भी हो, मेरा दाहिना हाथ आप ग्रहण कर चुके हैं, अतः आपको मैंने अपना पति मान लिया है। आप मुझे स्वीकार करे।"

ययाति ने उत्तर दिया--"हे तरुणी ! तुम ब्राह्मणी हो, और शुक्राचार्य की बेटी, जो ससार भर के आचार्य होने योग्य हैं। मैं ठहरा साधारण क्षत्रिय। मैं तुमसे कैसे ब्याह कर सकता हूं ? अतः देवी, मुझे तो आज्ञा दो और तुम भी अपने घर जाओ।"

यह कहकर राजा ययाति देवयानी से बिदा होकर चल दिये।

उस जमाने में ऊंचे कुल का कोई पुरुष निचले कुल की कन्या से विवाह कर लेता तो उसे अनुलोम विवाह कहते थे। निचले कुल के पुरुष के साथ ऊचे कुल की कन्या का विवाह प्रतिलोम कहा जाता था। प्रतिलोम विवाह मना किया गया था, क्योकि स्त्री के कुल को कलंक न लगने देना उन दिनो जरूरी समझा जाता था। यही कारण था कि ययाति ने देवयानी की प्रार्थना अस्वीकार कर दी।

ययाति के चले जाने पर देवयानी वही कुएं के पास सांप की फुफकार की भांति आहें भरती और सिसकिया लेती हुई खडी रही। शर्मिष्ठा की बातों ने उसके हृदय को छेद डाला था। वह घर नही जाना चाहती थी।

शुक्राचार्य अपनी बेटी को प्राणो से भी अधिक प्यार करते थे। जब देवयानी देर तक वापस न आई तो वे घबराये। उन्होने फौरन अपनी एक सेविका को देवयानी की तलाश मे भेज दिया। सेविका अपनी कुछ सहेलियो को साथ लिये उस जगल मे गई, जहा देवयानी अपनी सखियों के साथ खेलने गई थी। वहां एक पेड के नीचे देवयानी को खड़ा देखा। उसकी आंखें रोते रहने के कारण लाल हो गई थी। मुख मलिन था और क्रोध के कारण उसके ओठ कांप रहे थे।

देवयानी का यह हाल देखकर सेविका घबरा गई और बड़ी आतुरता से पूछा कि क्या बात है ?

देवयानी के मुख से मानो चिनगारियां निकली ! उसने कहा—"पिताजी से जाकर कहना कि उनकी बेटी अब राजा वृषपर्वा के राज्य मे कदम न रक्खेगी।"

देवयानी का यह हाल जानकर शुक्राचार्य बड़े दुखी हुए। वे बेटी के पास दौडे आये और उसे गले लगा लिया। दोनों खुब रोये। थोड़ी देर बाद जब शुक्राचार्य शान्त हुए तो देवयानी को बड़े प्यार से कोमल स्वर मे समझाते हुए बोले—"बेटा, लोग अपने ही किये का फल भोगते है। बुराई का नतीजा बुरा और भलाई का भला ही हुआ करता है। दूसरे की बुराई से हमे कुछ भी हानि नही पहुच सकती। अतः तुम किसी पर रोष न करो। जो कुछ हुआ उसे अपने ही दोष का परिणाम समझ कर शांत हो जाओ।"

पर अपमानित देवयानी को इस उपदेश से शांति नही मिली। वह बोली—"पिताजी, मुझमे दोष हो सकते है; लेकिन चाहे दोष हों या गुण, उन सबकी जिम्मेदारी अकेले मुझ पर ही है। दूसरो का उनसे कोई मतलब नही। तब वृषपर्वा की लडकी ने क्यों कहा कि तेरा बाप राजाओ की चापलूसी करता फिरता है और भिखारी है। पिताजी, बताइए क्या यह सच है कि आप चापलूसी करते है ? वृषपर्वा के आगे सिर झुकाते है ? भिखारी की तरह उसके आगे हाथ फैलाते है ? उस मूर्ख असुर की लडकी ने मेरा इतना अपमान किया ! फिर भी मै चुप रही। कोई प्रतिवाद नही किया। ऊपर से वह दानवी मुझे मार-पीटकर और कुए मे धकेलकर चली गई। फिर भी आप कहते है कि यह सब अपने किये का फल है ! और मै शांत होकर घर वापस लौट जाऊ ! पिताजी, आप ही बताइए कि इतना अपमानित होने के बाद मै शर्मिष्ठा के पिता के राज्य मे मै कैसे रह सकती हूं ?" यह कहकर देवयानी फूट-फूट कर रोने लगी।

शुक्राचार्य देवयानी को समझाते हुए बोले—"बेटी, वृषपर्वा की कन्या ने असत्य कहा। निश्चय मानो तुम किसी चापलूस की बेटी नही

हो, न तुम्हारा पिता भीख मांगकर गुजर करता है; बल्कि तुम उस पिता की बेटी हो जिसका सारा ससार गुण गाता है। इस बात को देवेन्द्र तक जानता है। भरतवश का राजा ययाति जानता है और खुद वृषपर्वा भी जानता है। अपने मुंह अपनी प्रशसा करना किसी भी समझदार और योग्य व्यक्ति को बुरा लगता है। अतः मै अधिक कुछ नही कहूगा। तुम मेरे कुल के यश-रूपी प्रकाश को बढानेवाला स्त्री-रत्न हो। तुम शांत होओ और घर चलो।"

देवयानी को और समझाते हुए वे बोले—"बेटी, जिसने दूसरों की कडवी बातें सह ली उसने मानो संसार पर विजय पा ली। मनुष्य के मन में जो क्रोध है वह अड़ियल घोड़े के समान है। घोडे की बागडोर हाथ में पकड़ लेने भर से कोई घुड़सवार नही हो जाता। चतुर घुडसवार वह है जो क्रोध-रूपी घोड़े पर काबू पा सके। सांप जैसे केंचुली को निकाल देता है वैसे ही क्रोध को जो मन से निकाल सके वही पुरुष कहला सकता है। दूसरो के हजार निन्दा करने पर भी जो दुःखी नही होता, वही अपने यत्न मे सफल हो सकेगा। जो हर महीने यज्ञ करते हुये सौ बरस तक दीक्षित रहे, उससे भी बढ़कर श्रेय उसीको है जिसने क्रोध पर विजय पा ली हो। जो बात-बात पर बिगडता है उसे क्या नौकर, क्या मित्र, क्या पत्नी, क्या भाई सब छोड़ कर चले जाते है। धर्म और सचाई तो एकदम ही उसका साथ छोड़ देते है। समझदार लोग बालको की बातों पर ध्यान नही दिया करते।"

यह सुन देवयानी ने नम्रभाव से कहा—"पिताजी, मैं यद्यपि उम्र मे छोटी ही हूं, फिर भी धर्म का कुछ मर्म तो जानती हू। क्षमा बडा धर्म है, यह मुझे मालूम है। फिर भी जिनमें शील नही, जो कुल की मर्यादा नही जानते उनके पास रहना कहा का धर्म है ? समझदार लोग ऐसे लोगो के साथ कभी नही रहते जो कुलीनों की निन्दा करते है, कुलवानों की इज्जत करना नही जानते। जिनमे शील नही, जिनका व्यवहार सज्जनोचित नही, वे चाहे ससार भर के धनी हों, फिर भी चाण्डाल ही समझे जाते है। सज्जनो को ऐसे लोगो से दूर ही रहना चाहिए। तलवार के घाव पर मलहम लग सकता है; किन्तु शब्दों का घाव जीवन भर

नही भर सकता। वृषपर्वा की कन्या की बातों से मेरे सारे शरीर में आग-सी लग गई है। जैसे पीपल की लकड़ी रगड़ खाकर जल उठती वैसे ही ही मेरा मन जल रहा है। अब मै शान्त कैसे होऊं ?"

देवयानी की ये बातें सुनकर शुक्राचार्य के माथे पर बल पड़ गये। वे वहां से सीधे असुर-राज वृषपर्वा की सभा में गये। उनका मुह क्रोध से लाल हो रहा था। वृषपर्वा को सिंहासन पर बैठे देखकर बोले—"राजन् ! पाप का फल तत्काल ही चाहे न मिले, पर मिलता जरूर है और वह पापी के वश की जड़ें तक काट देता है। और तुम पाप के रास्ते चल पडे हो। बृहस्पति का पुत्र कच, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता हुआ, प्रेम से मेरी सेवा-टहल करके शिक्षा पा रहा था। उस निर्दोष ब्राह्मण को तुमने कई बार मरवाया। तब भी मै चुप रहा। पर अब क्या देखता हूं कि मेरी प्यारी बेटी देवयानी को, जो कि आत्माभिमान को प्राणो से भी अधिक समझती है, तुम्हारी लडकी ने अपमानित किया और मार पीटकर कुएं में धकेल दिया ! यह अपमान देवयानी के लिए असहनीय है। उसने निश्चय किया है कि अब वह तुम्हारे राज्य में नही रहेगी। और तुम जानते हो कि वह मुझे प्राणो से अधिक प्रिय है। उसके बिना मै यहा नही रह सकता अत. मै भी तुम्हारा राज्य छोडकर जा रहा हू।"

आचार्य की बाते सुनकर वृषपर्वा तो हक्का-बक्का रह गया। वह नम्रतापूर्वक बोला—"गुरुदेव, मै निर्दोष हू। आपने जो-कुछ कहा, उन बातो से मै सर्वथा अपरिचित हूं। आप मुझे छोड जायगे तो मै पल भर भी जी नही सकता। मै आग मे कूदकर मर जाऊगा।"

शुक्राचार्य दृढतापूर्वक बोले—"तुम और तुम्हारे दानव गण चाहे आग में जल मरो, चाहे समुद्र में डूब मरो, जबतक मेरी प्राणप्यारी बेटी का दुख दूर न होगा मेरा मन शात नही होगा। जाकर मेरी बेटी को समझाओ। अगर वह मान गई तो ही मैं यहां रह सकता हूं, वरना नही।"

राजा वृषपर्वा सारे परिवार को साथ लेकर देवयानी के पास गया और उसके पाव पड़कर क्षमा मांगी।

देवयानी दृढ़ता के साथ बोली—"तुम्हारी लड़की शर्मिष्ठा ने मेरा बुरी तरह से अपमान किया और मुझे भिखमंगे की बेटी कहा। इस कारण उसे मेरी नौकरानी बनकर रहना मंजूर हो और पिताजी जहां मेरा ब्याह करें वहां मेरी दासी बनकर मेरे साथ जाने को राजी हो तो मैं तुम्हारे राज्य में रह सकती हूं, अन्यथा नहीं।"

असुर-राज को देवयानी की शर्त माननी पड़ी। उसने अपनी बेटी शर्मिष्ठा को बुला भेजा और उसे सारी बातें समझाईं।

शर्मिष्ठा ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उसने शर्म से आंखें नीची करके कहा—"सखी देवयानी की इच्छा पूरी हो। ऐसा न हो कि मेरे अपराध के कारण पिताजी आचार्य को गवां बैठें। गुरु-पुत्री की दासी बनकर रहना मुझे स्वीकार है।" तब जाकर देवयानी का क्रोध शांत हुआ और वह पिता के साथ नगर को लौटी।

जंगल में देवयानी की इस घटना के कई दिन बाद राजा ययाति से दुबारा भेंट हुई। देवयानी ने उनपर अपना प्रेम फिर प्रकट किया और कहा—"जब एक बार आप मेरा दाहिना हाथ पकड़ चुके हैं तो फिर आप मेरे पति के ही समान हैं। आप मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर लें।" परन्तु ययाति ने फिर न माना। उन्होंने कहा—"क्षत्रिय होकर ब्राह्मण-कन्या से विवाह करने की मैं कैसे हिम्मत करूं?"

तब देवयानी उन्हें साथ लेकर अपने पिता के पास गई और ब्याह के लिए पिता की अनुमति लेकर ही मानी। ब्राह्मण-पुत्री देवयानी का क्षत्रिय राजा ययाति के साथ बड़ी धूमधाम से ब्याह होगया।

ययाति और देवयानी का ब्याह इस बात का सबूत है कि आम रिवाज न होते हुए भी प्रतिलोम विवाह उन दिनों हुआ करते थे। शास्त्रों में यह जरूर कहा जाता था कि अमुक कार्य उचित है और अमुक नहीं; किन्तु जब सबकी पसंदगी से कोई कार्य किया जाता था तो शास्त्रोक्त न होने पर भी लोग प्रायः उसे सही मान लिया करते थे।

देवयानी ययाति के रनवास में आई और शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर उसके साथ रहने लगी। इस प्रकार ययाति और देवयानी कई वर्ष तक सुख-चैन से रहे।

इस बीच एक दिन शर्मिष्ठा ने राजा ययाति को अकेला पाकर उनसे प्रार्थना की कि वे उसे भी अपनी पत्नी बनालें। ययाति ने उसकी प्रार्थना मान ली और उसके साथ गुप्तरूप से विवाह कर लिया; देवयानी को इस बात का पता न चलने दिया। लेकिन चोरी आखिर कहा तक छिपती? देवयानी को एक दिन पता चल ही गया कि शर्मिष्ठा उसकी सौत बनी हुई है। यह जानकर वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गई, रोती-पीटती अपने पिता के पास दौड़ी गई और शिकायत की कि राजा ययाति ने वचन-भंग किया है। शर्मिष्ठा को उसने अपनी पत्नी बना लिया है।

यह सुनकर शुक्राचार्य को बडा क्रोध हुआ। उन्होने शाप दिया कि राजा ययाति इसी घडी बूढे हो जायं।

उनका शाप देना था कि ययाति को बुढापे ने आ घेरा। वह अभी अधेड उम्र के ही थे। जवानी उनकी बीत नही चुकी थी और अचानक बुढापा आ गया। वे शुक्राचार्य के पास दौडे गये, उनसे क्षमा मागी और शाप-मुक्ति के लिए बहुत अनुनय-विनय की।

शुक्राचार्य को उनके हाल पर दया आई। सोचा—आखिर मेरी कन्या को इसीने तो कुएं से निकालकर बचाया था। वे सान्त्वनापूर्ण स्वर मे बोले—"राजन्! तुम शाप-वश बूढे हो गये। इसका निवारण तो मेरे पास है नही, पर एक बात है। अगर कोई पुरुष अपनी जवानी तुम्हे दे दे और तुम्हारा बुढ़ापा अपने ऊपर ले ले तो तुम फिर से जवान बन सकते हो।"

यह युक्ति बताकर शुक्राचार्य ने बूढे ययाति को आशीर्वाद देकर बिदा किया।

: ६ :

ययाति

राजा ययाति पाण्डवों के पूर्वजों में थे। वे ऐसे कुशल योद्धा थे कि कभी लड़ाई के मैदान में उनकी हार नही हुई थी। वे बड़े ही शीलवान थे;

पितरो और देवताओं की पूजा बडी श्रद्धा के साथ करते और सदा प्रजा की भलाई में लगे रहते। इससे उनका यश बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था।

ऐसे कर्त्तव्यशील राजा जवानी बीतने से पहले ही शापवश रग-रूप बिगाडने और दुःख देनेवाले बुढ़ापे को प्राप्त हो गए। जो बुढ़ापे को पहुंच चुके है वे ही अनुभव कर सकते है कि बुढापा कैसी बुरी बला है। तिसपर ययाति की तो अभी जवानी की दुपहरी भी न हो पाई थी ! उनकी ग्लानि का पूछना क्या ?

ययाति की भोग-लालसा भी अभी छूटी न थी। उनके पाचो पुत्र अभी सुन्दर और जवान थे। वे अस्त्र-विद्या में निपुण थे और गुणवान भी थे। ययाति ने अपने पांचो बेटो से एक-एक करके प्रार्थना की कि अपनी जवानी थोडे दिन के लिए उनको दे दे। उन्होंने कहा—"प्यारे पुत्रो, तुम्हारे नाना शुक्राचार्य के शाप से मुझे अचानक ही बुढापे ने दबा लिया है। अभी तक मैंने भोग-विलास की तरफ ज्यादा ध्यान ही नही दिया था। नियमपूर्वक कर्त्तव्य करने मे ही मैंने अपना समय बिता दिया। मुझ बूढे पर दया करो और अपनी जवानी कुछ समय के लिए मुझे दे दो। जो मेरा बुढापा ले लेगा और मुझे अपनी जवानी दे देगा वही मेरे राज्य का अधिकारी होगा। मै उसकी जवानी लेकर कुछ दिन अपनी भोग-लालसा पूरी कर लेना चाहता हू।"

राजा की इस प्रार्थना के उत्तर मे बडे बेटे ने कहा—"पिताजी, आप यह क्या माग रहे है ? अगर मै आपको अपनी जवानी देकर आपका बुढापा खुद ले लू तो नौकर-चाकर और युवतिया मेरी हसी नही उडायेंगी ? यह मुझसे नही हो सकता। मुझसे ज्यादा आपको मेरे और भाइयो पर प्यार है। उन्ही से क्यों नहीं मागते ?"

दूसरे बेटे ने कहा—"बुढापा आदमी को कमजोर बना देता है। रग-रूप बिगाड़ देता है। बुद्धि भी बूढे की स्थिर नही रहती। आप मुझे कहते है कि ऐसा बुढापा ले लो। क्षमा कीजियेगा, पिताजी, मुझमें इतनी हिम्मत नही है।"

तीसरे बेटे ने भी इसी तरह साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा—"बूढा न हाथी पर चढ सकता है, न घोड़े पर ही सवार हो सकता है।

उसकी जबान लड़खड़ाती है। ऐसा बुढापा लेकर मैं क्या करूं ? इससे तो मौत ही अच्छी । नही पिताजी, मै आपकी यह बात नहीं मान सकता।"

जब इस तरह तीन बेटो ने इन्कार कर दिया तो राजा निराश-से हो गये। उन्हें बड़ा क्रोध आया। फिर भी उन्होने चौथे बेटे से बड़ी अनुनय-पूर्वक कहा—"प्यारे पुत्र, मैं असमय मे ही बूढा हो गया हू। तुम थोड़े दिन के लिए मेरा बुढ़ापा अपने ऊपर ले लो और अपनी जवानी मुझे दे दो। कुछ दिन सुख भोगने के बाद मैं अपना बुढ़ापा वापस ले लूगा और तुम्हारी जवानी लौटा दूगा। इतनी दया तो मुझ-पर करो !"

चौथे बेटे ने कहा—"क्षमा कीजियेगा, पिताजी। बुढ़ापा परा-धीनता का ही तो दूसरा नाम है। बूढे को बात-बात पर दूसरो का मुह ताकना पडता है। अकेले चलने हुए भी वह लडखडाता है। शरीर का मैल दूर करने तक के लिए उसे दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। मै अपनी स्वाधीनता खोना नही चाहता।"

चारो बेटो से कोरा जवाब पाकर राजा ययाति के शोक-संताप की सीमा न रही। पाचवे बेटे पुरु मे उन्होने रुद्ध-कण्ठ से प्रार्थना की—"बेटा पुरु, तुमने कभी मेरी बात नहो टाली। अब तुम्ही मेरी रक्षा कर सकते हो। शुक्राचार्य के शाप से मुझे असमय में बूढा होना पडा है। जरा देखो तो, सारे शरीर पर झुरिया पडी हैं। शरीर काप रहा है। बाल एकदम पक गये है। इतना उपकार अपने पिता पर करो कि मेरा बुढ़ापा कुछ समय के लिए ले लो और अपनी जवानी मुझे दे दो। जरा भोग की प्यास बुझा लूं, फिर तुम्हें तुम्हारी जवानी वापस दे दूगा। अपने भाइयों की तरह तुम भी नाही न कर देना।"

पिता की यह प्रार्थना सुनकर पुरु से न रहा गया। उसका जी भर आया। वह बोला—"पिताजी ! आपकी आज्ञा सिर आखों पर है। मैं खुशी खुशी अपनी जवानी आपको दे देता हू और आपका बुढ़ापा तथा राजकाज संभालने का बोझ अपने ऊपर ले लेता हूं।" ययाति ने यह सुनते ही पुत्र को प्रेम से गले लगा लिया।

उसी समय पुत्र की जवानी ययाति को प्राप्त हो गई। पुरु बूढ़ा हो गया और राज-काज संभालने लगा।

जवानी पाकर ययाति दोनों पत्नियों के साथ बहुत दिनों तक भोग-विलास करते रहे। जब पत्नियों से जी नहीं भरा तो यक्षराज कुबेर के नन्दन-बन में किसी अप्सरा के साथ कई वर्ष तक सुख भोगते रहे—इतने पर भी ययाति की प्यास नहीं बुझ सकी। उनकी वासना कम नहीं हुई; बल्कि भोग की इच्छा दिन-पर-दिन बढ़ती ही गई।

तब ययाति अपने बेटे पुरु के पास आये और बोले—"प्रिय पुत्र ! मैंने अनुभव करके जान लिया कि कामवासना वह आग है, जो विषय-भोग से नहीं बुझती। मैंने धर्म-ग्रन्थों में पढ़ा तो था कि जैसे घी डालने से आग बुझने के बजाय प्रबल हो उठती है, वैसे ही विषय-भोग से लालसा बढ़ती ही जाती है, कम नहीं होती। इसकी सचाई अब मुझे मालूम हुई। धन-दौलत और स्त्रियों के पाने से मनुष्य की लालसा कभी शान्त नहीं होती। वासनाएं तभी शान्त होती है जब मनुष्य इच्छाओं को अपने काबू में रक्खे। जिसमें न राग है, न द्वेष, वही शांति प्राप्त करता है। इसी स्थिति को ब्राह्मी-स्थिति कहते हैं।"

बेटे को यह उपदेश देकर ययाति ने अपना बुढ़ापा उससे वापस ले लिया और पुरु को जवानी लौटा दी। पुरु को राजगद्दी पर बिठाकर वृद्ध ययाति बन में चले गए। जंगल में बहुत दिनों तक तपस्या की और स्वर्ग सिधारे।

: ७ :

विदुर

नगर के बाहर किसी वन में महर्षि माण्डव्य का आश्रम था। माण्डव्य स्थिर-चित्त, सत्यवादी एवं शास्त्रज्ञ थे। आश्रम में ही रहते और तपस्या में समय बिताते थे। एक दिन वे आश्रम के बाहर एक पेड़ के नीचे बैठे ध्यान कर रहे थे कि इतने में कुछ डाकू डाके का माल लिये उधर से आ निकले। राजा के सिपाही उनका पीछा कर रहे थे,

इसलिए डाकू छिपने की जगह खोजते-खोजते उधर आये। आश्रम पर उनकी दृष्टि पडी तो सोचा कि इसीमे छिपकर जान बचा लें। तेजी से आश्रम के भीतर घुस गये और डाके का माल एक कोने में गाड कर दूसरे कोने मे छिप रहे। इतने मे उनका पीछा करते हुए राजा के सैनिक भी वहां आ पहुचे।

ध्यान-मग्न बैठे माण्डव्य मुनि को देखकर सिपाहियों के सरदार ने उनसे पूछा—"इस रास्ते कोई डाकू आये है ? आये हैं तो किस रास्ते गये हैं ? जल्दी बताइए। वे राज्य मे डाका डालकर आये हैं। हमें उनका पीछा करना है।" पर मुनि तो ध्यान में लीन थे। उन्होने कुछ सुना ही नही। जवाब क्या देते !

सरदार ने दुबारा डपटकर पूछा। फिर भी मुनि ने सुना नही। वे चुप रहे। इतने में कुछ सिपाहियों ने आश्रम के अन्दर तलाश करके देख लिया कि डाकू वही छिपे हुए है और डाके का माल भी आश्रम में ही गड़ा हुआ है। सैनिको ने अपने सरदार को भी आश्रम में बुला लिया और डाकुओं को पकड कर हथकडी पहना दी।

सिपाहियो के सरदार ने मन मे सोचा—"अच्छा, तो यह बात है ! अब समझा कि ऋषि ने चुप्पी क्यों साध ली थी।" उसने माण्डव्य को डाकुओं का सरदार समझ लिया और सोचा कि उन्हीकी प्रेरणा से यह डाका डाला गया है। इस विचार से उसने अपने साथ के सिपाहियो को वहीं ऋषि की रखवाली के लिए छोड दिया और राजा के दरबार में जाकर सारी बाते कह सुनाईं।

जब राजा ने सुना कि कोई ब्राह्मण डाकुओं का सरदार बना हुआ है और मुनि के वेष मे लोगों को धोखा दे रहा है तो उसे बहुत क्रोध आया। बिना विचारे ही उसने आज्ञा दे दी कि उस दुरात्मा को तुरत सूली पर चढा दो। क्रोध के मारे राजा को यह भी सुध न रही कि जरा जाच-पडताल तो कर लेता।

निर्दोष माण्डव्य को सैनिकों के सरदार ने तुरन्त सूली पर चढा दिया और उनके आश्रम मे जो डाके का माल पाया गया उसे राजा के हवाले कर दिया।

महर्षि मण्डव्य तपस्या में लीन थे और उसी लीनावस्था में ही सूली पर चढा दिये गये थे। तपस्या के कारण सूली का प्रभाव उनपर न पड़ सका। बहुत दिनोतक वे जीवित रहे और सूली का दु.ख सहते रहे। जब यह समाचार और तपस्वियो को मालूम हुआ तो आस-पास के जंगलो के कितने ही तपस्वी लोग माण्डव्य के पास आ पहुचे और उनकी सेवा करने लगे।

तपस्वियो ने ऋषि माडव्य से पूछा--"महर्षि, आप तो बड़े पुण्यात्मा है! आपको किस कारण यह दारुण दुःख भोगना पडा है ?"

शाति के साथ माडव्य ने कहा--"राजा ससार का रक्षक माना जाता है। जब उसीकी आज्ञा से यह दण्ड मुझे मिला है तो मै किसे दोष दू ?"

उधर राजा को खबर पहुची कि महर्षि माडव्य सूली पर चढाये जाने पर भूखे-प्यासे रहते हुए भी, जीवित है। वन के रहनेवाले बहुत-से ऋषि-मुनि उनकी सेवा में लगे है तो यह खबर पाकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और भय भी। तुरन्त अपने परिवार के लोगों को साथ मे लेकर वह वन मे गया। जब सूली पर माडव्य को जीवित बैठे देखा तो सन्न रह गया। उसे अपनी भूल मालूम हुई। उसने फौरन आज्ञा दी कि मुनि को सूली पर से उतार दिया जाय। मुनि के सूली से उतारे जाने पर वह उनके पैरो मे गिर पडा और गिडगिडाकर बोला--"अन-जान में मुझसे यह भारी भूल हो गई है। दया करके मुझे क्षमा कर दे।"

माडव्य को राजा पर क्रोध तो आया, पर उन्होने उसे क्षमा कर दिया और वे धर्मदेव के पास गये और बोले--"धर्मदेव ! कृपया यह तो बतायें कि मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया जो मुझे यह दारुण दु:ख भोगना पड़ा ?"

माडव्य की तपस्या का बल धर्मराज जानते थे। उन्होने बडी नम्रता के साथ ऋषि की आवभगत की और बोले--"महर्षि, आपने टिड्डियो और चिड़ियो को पकड़कर सताया था। इसी पाप के फलस्वरूप आपको यह कष्ट भोगना पड़ा। आप जानते ही है कि जैसे थोडे-से दान का बहुत फल मिलता है वैसे ही थोड़े-से पाप का भी बहुत दड मिल जाता है।"

धर्मराज की बात सुनकर मांडव्य मुनि को बडा अचरज हुआ। उन्होने पूछा—"मैने ऐसा पाप कब किया ?"

धर्मदेव ने कहा—"बचपन मे।"

यह सुनकर माण्डव्य को बड़ा क्रोध आया। उन्होने कहा—"बचपन में नासमझी से मैने जो पाप किया उसका तुमने न्यायोचित मात्रा से अधिक दड दिया। इस अन्याय के लिए मै शाप देता हूं कि तुम मर्त्य-लोक में जाकर मनुष्य-योनि में जन्म लो।"

इस प्रकार माडव्य ऋषि के शाप-वश विचित्रवीर्य की रानी अबालिका की दासी की कोख से धर्मदेव का जन्म हुआ। वे ही आगे चलकर विदुर के नाम से प्रख्यात हुए।

विदुर धर्मदेव के अवतार थे। धर्म-शास्त्र तथा राजनीति में उनका ज्ञान अथाह था। वे बडे निस्पृह थे। क्रोध उन्हे छू तक नही गया था, ससार के बड़े-बड़े लोग उनको महात्मा कहकर पूजते थे। उनका सुयश सारे ससार मे फैला हुआ था। युवावस्था मे ही पितामह भीष्म ने उनके विवेक तथा ज्ञान से प्रभावित होकर उन्हे राजा धृतराष्ट्र का प्रधान मत्री नियुक्त कर दिया था।

तीनो लोको मे महात्मा विदुर-जैसा धर्म-निष्ठ या नीतिमान कोई नही था। जिस समय धृतराष्ट ने दुर्योधन को जुआ खेलने की अनुमति दी, विदुर ने धृतराष्ट्र से बहुत आग्रह-पूर्वक निवेदन किया—"राजन्, मुझे आपका यह काम ठीक नही जचता। इस खेल के कारण आपके बेटो मे आपस मे बैर-भाव बढेगा। इसको रोक दीजिये।"

धृतराष्ट्र विदुर की बात से प्रभावित हुए और अपने वेटे दुर्योधन को अकेले में बुलाकर उसे इस कुचाल से रोकने का प्रयत्न किया।

बडे प्रेम के साथ वह बेटे से बोले—"गाधारी के लाल! इस जुए के खेल को विदुर ठीक नही समझता। इस कुविचार को तुम छोड़ दो। विदुर बड़ा बुद्धिमान है, हमेशा हमारा भला चाहता आया है। उसका कहा मानने में हमारी भलाई है। भूत तथा भविष्य की बातें जानने वाले बृहस्पति ने जितने शास्त्र-ग्रंथ रचे है, विदुर ने उन सबका ज्ञान प्राप्त किया है। यद्यपि विदुर मुझसे उमर मे छोटा है फिर भी

हमारे कुल का प्रधान वही समझा जाता है। वत्स ! जुआ खेलने का विचार छोड़ दो। विदुर कहता है कि उससे विरोध बहुत बढ़ेगा और यह राज्य के नाश का कारण हो जायगा; छोड दो इस विचार को।"

इस तरह कई मीठी बातों से धृतराष्ट्र ने अपने बेटे को सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया; किंतु दुर्योधन न माना। बूढे धृतराष्ट्र अपने बेटे को बहुत प्यार करते थे। अपनी इस कमजोरी के कारण उसका अनुरोध वे टाल न सके और युधिष्ठिर को जुए के खेल के लिए न्यौता भेजना ही पडा।

धृतराष्ट्र पर बस न चला तो विदुर युधिष्ठिर के पास गये। उनको जुआ खेलने को जाने से रोकने का प्रयत्न किया। इस खेल की बुराइयां उनको बताई। युधिष्ठिर ने विदुर की बातें ध्यानपूर्वक सुनी और बड़े आदर के साथ बोले--"चाचाजी ! मै भी यह सब जानता हूं, पर जब काका धृतराष्ट्र बुलावे तो मैं कैसे इन्कार करूं ? युद्ध या खेल के लिए बुलाये जाने पर न जाना क्षत्रिय का धर्म तो नही है।"

यह कहकर युधिष्ठिर कुल की मर्यादा रखने के लिए जुआ खेलने गया।

: ८ :

कुन्ती

यदुवंश के प्रसिद्ध राजा शूरसेन श्रीकृष्ण के पितामह थे। इनके पृथा नाम की कन्या थी। उसके रूप और गुणो की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। शूरसेन के फुफेरे भाई कुन्तीभोज के कोई सन्तान न थी। शूरसेन ने कुन्तीभोज को वचन दिया था कि उनके जो पहली संतान होगी उसे कुन्तीभोज को गोद दे देंगे। उसीके अनुसार शूरसेन ने पृथा कुन्तीभोज को गोद दे दी। कुन्तीभोज के यहा आने पर पृथा का नाम कुन्ती पड़ गया।

कुन्ती के बचपन मे ऋषि दुर्वासा कुन्तीभोज के यहां एक बार पधारे। कुन्ती ने एक वर्ष तक बडी सावधानी व सहनशीलता के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा की। उसकी सेवा-टहल से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए और एक दैवी मन्त्र का उसे उपदेश दिया और बोले—"कुन्तीभोज-कन्ये, यह मत्र पढ़कर तुम किसी भी देवता का ध्यान करोगी तो वह तुम्हारे सामने प्रकट होगा तथा अपने ही समान एक तेजस्वी पुत्र तुम्हें प्रदान करेगा।"

महर्षि दुर्वासा ने दिव्य ज्ञान से यह मालूम कर लिया था कि कुन्ती को अपने पति से कोई सतान नही होगी। इसी कारण उन्होने उसे ऐसा वर दिया। कुती उस समय बालिका ही थी। उत्सुकतावश उसे यह जानने की प्रबल इच्छा हुई कि जो मत्र मिला है उसका प्रयोग करके क्यों न देखा जाय ?

आकाश में भगवान् सूर्य अपनी प्रकाशमान किरणे फैला रहे थे। कुती ने उन्हीका ध्यान करके मंत्र पढा। तुरन्त ही क्या देखती है कि आकाश मे बादल छा गये। वह आश्चर्य के साथ यह दृश्य देख ही रही थी कि स्वयं भगवान् सूर्य एक सुन्दर युवक के रूप मे उसके सामने आकर खडे हुए। उनकी कान्ति में ऐसा आकर्षण था कि उसका मन उनकी ओर खिचा जा रहा था। इस अद्भुत् घटना को देखकर कुती चकित रह गई और घबराहट के साथ पूछा—"भगवन्! आप कौन है ?

सूर्य ने कहा—"प्रिये! मै आदित्य हू। तुमने मेरा आह्वान किया इसलिए तुम्हे पुत्र-दान करने आया हू।" कुती भय से कापती हुई बोली—"भगवन्! मै अभी कन्या हू। पिता के अधीन हू। कौतूहल वश दुर्वासा मुनि के दिये हुए मत्र का प्रयोग कर बैठी। मुझ नादान लडकी का अपराध क्षमा कर दे।"

परन्तु मन्त्र के अधीन होने के कारण सूर्य वापस न जा सके। उन्होने लोकनिंदा से डरती हुई बालिका कुती को समझाया और धीरज बंधाकर बोले—"राजकन्ये! डरो मत। मै तुम्हे वर देता हू कि तुम्हें किसी प्रकार कलंक न लगेगा। मुझसे पुत्र पाने के बाद भी तुम कुआरी ही रहोगी।"

इस प्रकार समस्त संसार को प्रकाश तथा जीवन देनेवाले सूर्य के सयोग से कुमारी कुती ने सूर्य के ही समान तेजस्वी एवं सुन्दर बालक को जन्म दिया। जन्मजात कवच और कुडलो से शोभित वही बालक आगे चलकर शस्त्रधारियो मे श्रेष्ठ कर्ण के नाम से विख्यात हुआ। बालक के जन्मते ही सूर्य के वरदान से कुती फिर कुमारी हो गई।

पुत्र होजाने के बाद अब कुती को लोक-निन्दा का डर हुआ। बहुत सोचने-विचारने के बाद उसने बच्चे को छोड देना ही उचित समझा। बच्चे को एक सन्दूक मे बडी सावधानी के साथ बद करके उसे गगा की धारा मे बहा दिया। वह पेटी नदी मे तैरती हुई आगे निकल गई। बहुत आगे जाकर अधिरथ नाम के एक सारथी की नजर उस पर पडी। उसने पेटी निकाली और खोलकर देखा तो उसमे एक सुन्दर बच्चा सोया मिला। अधिरथ निसन्तान था। बालक पाकर वह बडा प्रसन्न हुआ। घर जाकर उसने उसे अपनी स्त्री को दे दिया। सूर्य-पुत्र कर्ण इस तरह एक सारथी के घर पलने लगा।

इधर कुती विवाह के योग्य हुई। राजा कुतीभोज ने उसका स्वयवर रचा। कुती की अनुपम सुन्दरता और मधुर गुणो का यश दूरतक फैला हुआ था। उससे विवाह करने की इच्छा से देश-विदेश के अनेक राजकुमार स्वयंवर में आये। हस्तिनापुर के राजा पाण्डु भी स्वयवर मे शरीक हुए थे। राजकुमारी कुंती हाथ मे वरमाला लिये मडप मे आई तो उसकी निगाह एक राजकुमार पर पडी जो अपने तेज से दूसरे सारे राजकुमारो के तेज को फीका कर रहा था। कुती ने उसीके गले में वरमाला डाल दी। वह राजकुमार भारतश्रेष्ठ महाराज पाडु थे। महाराज पाडु का कुंती से ब्याह हो गया और वे कुती-सहित हस्तिनापुर लौट आये।

उन दिनो राजवंशों में एक से अधिक ब्याह करने की प्रथा प्रचलित थी। ऐसे ब्याह भोग-विलास के लिए नही, बल्कि वश-परम्परा को चालू रखने की इच्छा से किये जाते थे। इसी रिवाज के अनुसार पितामह भीष्म की सलाह से महाराज पाडु ने मद्रराज की कन्या माद्री से भी ब्याह कर लिया।

: ६ :

पाण्डु का देहावसान

एक दिन महाराजा पांडु बन मे शिकार खेलने गये। वही जगल में हरिन के रूप मे एक ऋषि-दपति भी किल्लोल कर रहे थे। पाडु ने अपने तीर से हरिन को मार गिराया। उनको यह पता नही था कि ये ऋषि-दपति हैं। ऋषि ने मरते-मरते पाडु को शाप दिया, "पापी, अपनी पत्नी के साथ क्रीडा करते हुए ही तुम्हारी भी मृत्यु हो जायगी।" ऋषि के शाप से पांडु को बड़ा दु.ख हुआ। साथ ही वे अपनी भूल से बडे खिन्न होकर नगर को लौटे और पितामह भीष्म तथा विदुर को राज्य का भार सौपकर अपनी पत्नियो के साथ बन मे चले गये और वहां व्रती ब्रह्मचारी का-सा जीवन व्यतीत करने लगे। कुती ने देखा कि महाराज को पुत्र-लालसा तो है; लेकिन ऋषि के शाप-वश वे पुत्रोत्पत्ति कर नही सकते। अतः उसने बचपन मे दुर्वासा ऋषि से पाये वरदानो का पाडु से जिक्र किया। तब पाडु ने कुती से उन मत्रो का प्रयोग करने को कहा।

उनके अनुरोध से कुन्ती और माद्री ने महर्षि दुर्वासा के दिये हुए मत्र का प्रयोग करके देवताओ के अनुग्रह से पांचो पाडवो को जन्म दिया। वन में ही पाचो का जन्म हुआ और वही तपस्वियों के सग पलने लगे। अपनी दोनो स्त्रियो तथा बेटों के साथ महाराजा पांडु कई बरस बन मे रहे।

वसन्त ऋतु थी। लताएं रंग-बिरगे फूलो से लदी थी। चिडिया चहक रही थी। सारा बन आनन्द मे डूबा हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। महराजा पांडु माद्री के साथ प्रकृति की इस उद्गारमय सुषमा को निहार रहे थे। हठात् उनके मत में ऋतु के प्रभाव से काम-वासना सजग

हो उठी। वे माद्री के साथ क्रीडा करने को आतुर हो उठे। माद्री ने बहुत रोका; परन्तु पाडु ने न माना। कामवश बुद्धि खो बैठे और ऋषि के शाप का असर हो गया। तत्काल उनकी मृत्यु हो गई।

माद्री के दुःख का पार न रहा। पति की मृत्यु का वही कारण बनी, यह सोचकर पाडु के साथ ही वह जलती हुई चिता पर लेट गई और प्राण-त्याग .कर दिया।

इस दुर्घटना से कुन्ती और पाचों पांडवों के शोक की सीमा न रही। ऐसा प्रतीत हुआ कि यह दुःख उनसे सहा न जायगा। पर वन के ऋषि-मुनियों ने बहुत समझा-बुझाकर उनको शान्त किया और उन्हें हस्तिनापुर ले जाकर पितामह भीष्म के हवाले किया। युधिष्ठिर की उम्र उस समय सोलह वर्ष की थी।

हस्तिनापुर के लोगो ने जब ऋषियों से सुना कि वन में पाडु की मृत्यु हो गई तो उनके शोक की सीमा न रही। भीष्म, विदुर आदि बन्धुजनों ने यथा-विधि पाडु का श्राद्ध-कर्म किया। सारे राज्य के लोगों ने ऐसा शोक मनाया मानो उनका कोई सगा मर गया हो।

पोते की मृत्यु पर शोक करती हुई सत्यवती को समझाते हुए व्यासजी बोले--"अतीत सुखकर ही रहा। भविष्य में बड़े दुख तथा संकट की संभावना ह। पृथ्वी की जवानी बीत चुकी है। अब वह समय आनेवाला है जो छल-प्रपच एवं पापों से भरा होगा। भरतवंश पर बड़ी विपत्ति पडने वाली है। तुम्हारे लिए अच्छा यही होगा कि अपने वंश की दुर्गति को देखो ही नही और वन मे जाकर तपस्या करो।

व्यासजी की बात मानकर सत्यवती अपनी दोनो विधवा पुत्र-वधुओं--अम्बिका और अम्बालिका को साथ लेकर वन मे चली गई। तीनों वृद्धाए कुछ दिनो तपस्या करती रही और बाद मे स्वर्ग सिधार गईं, मानो अपने कुल मे जो छल-प्रपच तथा अन्याय होनेवाले थे उन्हें न देखना ही उन्होने उचित समझा।

: १० :

भीम

पाचो पाडव तथा धृतराष्ट्र के सौ बेटे हस्तिनापुर में साथ-साथ रहने लगे। खेल-कूद, हसी-मजाक सबमे वे साथ ही रहते। शरीर-बल मे पाण्डु का पुत्र भीम सबसे बढकर था। खेलो मे वह दुर्योधन और उसके भाइयो को खूब तग किया करता; खूब उनको मारता-पीटता और बाल पकडकर खीचता। कभी आठ-दस बच्चो को लेकर पानी में डुबकी मार लेता और बड़ी देरतक उनको पानी के अन्दर ही दबाये रखता; यहांतक कि बेचारो का दम घुटने लग जाता। कौरव कभी पेड पर चढ़-चढकर फल खाते या खेलते तो भीम पेड़ को जोर से लात मारकर हिला देता और वे बालक पेड़ से ऐसे गिर पड़ते जैसे पके हुए फल। भीम के ऐसे खेलो से बच्चे बहुत तंग आ जाते और उनका सारा शरीर छोटे-मोटे घावों से भरा रहता। यद्यपि भीम मन में किसी से बैर नही रखता था और बचपन के जोश के कारण ही ऐसा करता था, फिर भी दुर्योधन तथा उनके भाइयों के मन में भीम के प्रति द्वेषभाव बढने लगा।

इधर सभी बालक उचित समय आने पर कृपाचार्य से अस्त्र-विद्या के साथ-साथ अन्य विद्याएं भी सीखने लगे। विद्या सीखने मे भी पांडव कौरवों से आगे ही रहते। इससे कौरव और खीजने लगे। दुर्योधन पाण्डवों को हर प्रकार नीचा दिखाने का प्रयत्न करता; और भीम से तो उसकी जरा भी नही पटती थी।

एक बार सब कौरवों ने आपस में सलाह करके यह निश्चय किया कि भीम को गंगा में डुबोकर मार डाला जाय और उसके मरने पर

युधिष्ठिर-अर्जुन आदि को कैद करके बंदी बना लिया जाय। दुर्योधन ने सोचा था कि ऐसा करने से सारे राज्य पर उनका अधिकार हो जायगा।

एक दिन दुर्योधन ने धूमधाम से जल-क्रीडा का प्रबन्ध किया और पांचो पाण्डवो को उसके लिए न्योता दिया। बडी देर तक खेलने व तैरने के बाद सबने भोजन किया और अपने-अपने डेरो में जाकर सो रहे। दुर्योधन ने छल से भीम के भोजन मे विष मिलवा दिया था। सब लोग खूब खेले-तैरे थे सो थक-थकाकर सो गये। भीम को विष के कारण गहरा नशा आया। वह डेरे पर भी न पहुंचने पाया और नशे मे चूर होकर गगा किनारे रेती मे ही पड़ गया। ऐसी ही हालत मे दुर्योधन ने, उसके हाथ-पैर लताओ से बाधकर गगा मे डुबो दिया।

लताओ से जकड़ा हुआ भीम का शरीर गगा की धारा में बहता हुआ दूर निकल गया। पानी मे ही कुछ विषैले सापो ने उसे काट लिया। सापो के विष के प्रभाव से भीम के शरीर से भोजन के विष का प्रभाव दूर हो गया और वह जल्दी ही होश मे आ गया। इस प्रकार विष के शमन हो जाने से भीम का शारीरिक बल और बढ़ गया।

इधर दुर्योधन मन-ही-मन यह सोचकर खुश हो रहा था कि भीम का तो काम ही तमाम हो गया होगा। जब युधिष्ठिर वगैरा जगे और भीम को न पाया तो उधर-उधर पूछताछ की। दुर्योधन ने उनको झूठ-मूठ समझा दिया कि वह तो कभी का नगर की ओर चला गया है। युधिष्ठिर ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया और चारो भाई अपने महलो में वापस आ गये। लेकिन वहा युधिष्ठर ने देखा कि भीम का कही पता नही। तब वह चिन्तित हो गए। कुन्ती के पास जाकर पूछा—"मां! आपने भीम को कही देखा? वह तो खेलकर हमसे पहले ही आ गया था। यहा से कही और तो नही गया?"

यह सुनकर कुन्ती भी घबरा गई। तब चारो भाइयो ने मिलकर वह सारा जंगल, जहां जल-क्रीड़ा की थी, छान डाला। पर भीम का कही पता नही चला। अंत में निराश हो दुःखी-हृदय से वे अपने महल को लौट आये।

इतने ही मे क्या देखते है कि भीम झूमता-झामता चला आ रहा है। पाडवो और कुन्ती के आनन्द का ठिकाना न रहा। युधिष्ठिर, कुंती आदि ने भीम को गले से लगा लिया।

पर यह सब हाल देख कुन्ती को बड़ी चिन्ता हुई। उसने विदुर को बुला भेजा और अकेले में उनसे बोली—"दुष्ट दुर्योधन जरूर कोई-न-कोई चाल चल रहा है। राज्य के लोभ से वह भीम को मार डालना चाहता है। मुझे इसकी बडी चिंता हो रही है।"

राजनीति-कुशल विदुर कुन्ती को समझाते हुए बोले—"तुम्हारा कहना सही है। पर कुशल इसीमे है कि इस बात को अपने मन में ही रखना। प्रकट रूप से दुर्योधन की निन्दा कदापि न करना; नही तो इससे उसका द्वेष और बढेगा। तुम्हारे पुत्रों का कोई कुछ नही बिगाड़ सकता। वे चिरजीवी होगे इसमें कोई सन्देह नही। तुम निश्चित रहो।"

इस घटना से भीम बहुत उत्तेजित हो गया था। उसे समझाते हुए और साथ-ही-साथ सावधान करते हुए युधिष्ठिर ने कहा—"भाई भीम, अभी समय नही आया है। तुम्हें अपने आपको सभालना होगा। इस समय तो हम पाचों भाइयों को यही करना है कि किसी प्रकार एक-दूसरे की रक्षा करते हुए बचे रहे।"

भीम के वापस आ जाने पर दुर्योधन को बडा आश्चर्य हुआ। उसका हृदय और जलने लगा। द्वेष और ईर्ष्या उसको खाये जाने लगी। लबी सासे लेकर वह रह गया। ईर्ष्या की आग मे जलते रहने के कारण उसका शरीर धीरे-धीरे सूखने लगा।

: ११ :

कर्ण

पाडवों ने पहले कृपाचार्य से और बाद में द्रोणाचार्य से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई। उनको जब विद्या में काफी निपुणता प्राप्त हो गई तो एक भारी समारोह किया गया जिसमें सबने अपने-अपने कौशल का

प्रदर्शन किया। सारे नगरवासी इस समारोह को देखने आये थे। तरह-तरह के खेल हुए । और हरेक राजकुमार यही चाहता था कि वही सबसे बढकर निकले। आपस में लाग-डाट बडे जोर की थी। पर तीर चलाने मे पांडु-पुत्र अर्जुन का कोई सानी न था। अर्जुन ने धनुष-विद्या में कमाल का खेल दिखाया। उसकी अद्भुत चतुरता को देख सभी दर्शक और राजवंश के सभी उपस्थित लोग दग रह गए। यह देख दुर्योधन का मन ईर्ष्या से जलने लगा।

अभी खेल हो ही रहा था कि इतने में रग-भूमि के द्वार पर किसी के खम ठोकते हुए आने का शब्द सुनाई दिया। दर्शको और खिलाड़ी राजकुमारों का ध्यान उधर चला गया और वे उत्सुकता से उधर देखने लगे; तो क्या देखते हैं कि एक रोबीला और तेजस्वी युवक मस्तानी चाल से रंगभूमि में आकर अर्जुन के सामने खड़ा हो गया।

यह युवक और कोई नही, अधिरथ द्वारा पोषित कुन्ती-पुत्र कर्ण ही था। लेकिन उसके कुन्ती-पुत्र होने की बात किसीको मालूम न थी।

रंगभूमि में आते ही उसने अर्जुन को ललकारा—"अर्जुन ! जो कुछ करतब तुमने यहा दिखाये हैं उससे भी बढकर कौशल मैं दिखा सकता हू। क्या तुम इसके लिए तैयार हो ?"

इस चुनौती को सुनकर दर्शक-मडली में बडी खलबली मच गई। पर ईर्ष्या की आग से जलनेवाले दुर्योधन को बड़ी राहत मिली। वह बडा प्रसन्न हुआ। उसने बड़े तापक से कर्ण का स्वागत किया और उसे छाती से लगा कर बोला—

"कहो कर्ण, कैसे आये ? बताओ, हम तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं ?"

कर्ण बोला—"राजन् ! मै अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध और आपसे मित्रता करना चाहता हूं।"

कर्ण की चुनौती को सुनकर अर्जुन को बड़ा तैश आया। वह बोला—"कर्ण ! सभा में जो बिना बुलाये आते हैं और जो बिना किसीसे पूछे बोलने लगते हैं वे निन्दा के योग्य होते हैं।"

यह सुन कर्ण ने कहा--"अर्जुन, यह उत्सव केवल तुम्हारे ही लिए नही मनाया जा रहा है। सभी प्रजाजन इसमें भाग लेने का अधिकार रखते है। क्षत्रियों का धर्म बल का अनुयायी है। व्यर्थ डीगे मारने से फायदा क्या ? चलो, तीरों से बाते कर लें !"

जब कर्ण ने अर्जुन को यों चुनौती दी तो दर्शक लोगो ने तालिया बजाकर कोलाहल मचाया। उनके दो दल बन गए। एक दल अर्जुन की दाद देने लगा और दूसरा कर्ण की। इसी प्रकार वहा इकट्ठी स्त्रियो के भी दो दल बन गये। इससे मालूम होता है कि संसार मे 'पार्टीबाजी' की यह प्रथा मुद्दत से चली आती है।

कुन्ती ने कर्ण को देखते ही पहचान लिया और भय और लज्जा के मारे मूर्छित-सी हो गई। उसकी यह हालत देखकर विदुर ने दासियो को बुलाकर उसे चेत करवाया और मीठे शब्दो में आश्वासन दिया और समझाया। कुंती किकर्त्तव्य-विमूढ़-सी हो गई।

इसी बीच कृपाचार्य ने उठकर कर्ण से कहा--"अज्ञात वीर ! महाराज पाण्डु का पुत्र और कुरुवंश का वीर अर्जुन तुम्हारे साथ द्वन्द्व करने के लिए तैयार है। पर तुम पहले अपना परिचय तो दो ! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, किस राज-कुल को तुम विभूषित करते हो ? क्योकि द्वन्द्व-युद्ध बराबर वालो में ही होता है। कुल तथा कुलाचार का परिचय पाये बगैर राजकुमार कभी द्वन्द्व करने को तैयार नही होते।

कृपाचार्य की यह बात सुनकर कर्ण का सिर लज्जा से इस प्रकार झुक गया जैसे वर्षा के जल मे भीगा हुआ कमल। कर्ण लज्जा के कारण श्री-विहीन हो गया।

कर्ण को इस तरह लज्जित देखकर दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और बोला--"अगर बराबरी की ही बात है तो मै आज ही कर्ण को अगदेश का राजा बनाता हूं।" यह कहकर दुर्योधन ने तुरन्त पितामह भीष्म एवं पिता धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर वही रगभूमि मे ही राज्याभिषेक की सामग्री मगाई और कर्ण का राज्याभिषेक करवाया और उसे अंगदेश का राजा घोषित कर दिया।

इतने में बूढा सारथी अधिरथ जिसने कर्ण को पाला था, लाठी टेकता हुआ और भय के मारे कांपता हुआ सभा में प्रविष्ट हुआ। कर्ण, जो अभी अभी अंगदेश का नरेश बना दिया गया था, उसको देखते ही धनुष नीचे रखकर उठ खडा हुआ और पिता मानकर बडे आदर के साथ उसके आगे सिर नवाया। बूढे ने भी 'बेटा' कहकर उसे गले लगा लिया और अभिषेक-जल से भीगे हुए कर्ण के सिर पर आनन्द के आसू बहाकर उसे और भिगो दिया।

यह देखकर भीम खूब कहकहा मारकर हंस पड़ा और बोला—"सारथी के बेटे, धनुष छोड़कर हाथ में चाबुक लो, चाबुक! वही तुम्हें शोभा देगा। तुम भला कबसे अर्जुन के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने के योग्य हो गये?"

यह सब देख सभा में खलबली मच गई। इस समय सूरज भी डूब रहा था। इस कारण सभा विसर्जित हो गई। मशाल और दीपको की रोशनी मे दर्शक वृन्द तरह-तरह से शोर मचाते हुए चले गए। अपनी-अपनी पसन्द के अनुसार कुछ लोग अर्जुन की, कुछ कर्ण की और कुछ दुर्योधन की जय बोलते जाते थे।

इस घटना के बहुत काल बाद एक बार देवराज इन्द्र बूढे ब्राह्मण के वेश में अग-नरेश कर्ण के पास आये और उसके जन्मजात कवच और कुण्डल की भिक्षा मागी। देवराज इन्द्र को डर था कि युद्ध मे कर्ण की शक्ति से कही उनके पुत्र अर्जुन पर विपत्ति न आ जाय। इस कारण कर्ण की ताकत कम करने की इच्छा से उन्होंने दानवीर कर्ण से यह भिक्षा मागी थी।

कर्ण को उसके पिता सूर्यदेव ने पहले से सचेत कर दिया था कि उसे धोखा देने के लिए इन्द्र ऐसी चाल चलने वाले है; परन्तु कर्ण इतना दानी था कि किसी के कुछ मागने पर वह नाही कर ही नही सकता था। इस कारण यह जानते हुए भी कि भिखारी के वेश में इन्द्र मुझसे धोखा कर रहे है, जन्मजात कवच और कुण्डल निकाल कर ब्राह्मण को दे दिये।

इस अद्भुत दानवीरता को देखकर देवराज इन्द्र चकित रह गए। कर्ण की प्रशसा करते हुए बोले—"कर्ण, तुमने आज वह काम

किया है जो और किसीके बूते का नहीं था। तुमसे मै बहुत प्रसन्न हूं। तुम जो भी वरदान चाहो, मागो।"

कर्ण ने देवराज से कहा—"आप प्रसन्न हैं तो शत्रुओं का सहार करने वाला अपना 'शक्ति' नामक शस्त्र मुझे प्रदान करें।"

बडी प्रसन्नता के साथ अपना वह शस्त्र कर्ण को देते हुए देवराज ने कहा—"युद्ध में तुम जिस किसी को लक्ष्य करके इसका प्रयोग करोगे वह अवश्य मारा जायगा। परन्तु एक ही बार तुम इसका प्रयोग कर सकोगे। तुम्हारे शत्रु को मारने के बाद यह मेरे पास आ जायगा।" इतना कहकर इन्द्र चले गए।

एक बार कर्ण को परशुरामजी से ब्रह्मास्त्र का मंत्र सीखने की इच्छा हुई। उसे यह पता था कि परशुरामजी ब्राह्मणो को छोडकर और किसीको शस्त्र-विद्या नही सिखाते। इसलिए वह ब्राह्मण के वेश में परशुरामजी के पास गया और प्रार्थना की कि उसे शिष्य स्वीकार करने की कृपा करें। परशुरामजी ने उसे ब्राह्मण समझकर शिष्य बना लिया। इस प्रकार छल से कर्ण ने ब्रह्मास्त्र चलाना सीख लिया।

एक दिन परशुराम कर्ण की जाघ पर सिर रखकर सो रहे थे। इतने मे एक काला भौरा कर्ण की जाघ के नीचे घुस गया और काटने लगा। कीडे के काटने से कर्ण को बहुत पीडा हुई और जांघ से लहू की धारा बहने लगी; पर कर्ण ने जाघ को जरा भी हिलाया-डुलाया नही—इस भय से कि कही गुरुदेव की नीद न खुल जाय। जब खून से परशुराम की देह भीगने लगी तो उनकी नीद खुली। उन्होने देखा कि कर्ण की जाघ से जोरो से खून बह रहा है। यह देख परशुराम बोले—"बेटा, सच बताओ तुम कौन हो? इतनी शारीरिक पीड़ा सहते हुए स्थिर रहना ब्राह्मण के बूते का नही है। केवल क्षत्रिय ही यह पीड़ा सह सकता है।"

कर्ण असली बात न छिपा सका। उसने स्वीकार कर लिया कि वह ब्राह्मण नही, बल्कि सूत-पुत्र है।

यह जानकर परशुराम को बडा क्रोध आया। क्षत्रियो के तो वे दुश्मन थे। अतः उन्होने उसी घड़ी कर्ण को शाप देते हुए कहा—"चूंकि

तुमने अपने गुरु को ही धोखा दिया इसलिए जो ब्रह्मास्त्रविद्या तुमने मुझसे सीखी है, वह अन्त समय मे तुम्हारे काम न आयेगी। ऐन वक्त पर तुम उसे भूल जाओगे और रणक्षेत्र मे तुम्हारे रथ का पहिया पृथ्वी में धंस जायगा।"

परशुराम का यह शाप झूठा न हुआ। जीवन-भर कर्ण को उनकी सिखाई हुई ब्रह्मास्त्र विद्या याद रही, पर कुरुक्षेत्र के मैदान मे अर्जुन से युद्ध करते समय कर्ण को वह याद न रही।

दुर्योधन के घनिष्ट मित्र कर्ण ने अन्त समय तक कौरवो का साथ न छोडा। कुरुक्षेत्र के युद्ध मे भीष्म तथा आचार्य द्रोण के आहत हो जाने के बाद दुर्योधन ने कर्ण को ही कौरव सेना का सेनापति बनाया था। कर्ण ने दो दिन तक अद्भुत कुशलता के साथ युद्ध का संचालन किया। आखिर जब शाप-वश उसके रथ का पहिया जमीन मे धंस गया और धनुष-बाण रखकर जमीन मे धसा पहिया निकालने का वह प्रयत्न करने लगा तभी अर्जुन ने उस महारथी पर प्रहार किया। माता कुन्ती ने जब यह सुना तो उनके दुख का पार न रहा।

: १२ :

द्रोणाचार्य

आचार्य द्रोण महर्षि भारद्वाज के पुत्र थे। उन्होने पहले अपने पिता के पास वेद-वेदान्तो का अध्ययन किया और बाद मे उनसे धनुर्विद्या भी सीख ली। पाचाल-नरेश का पुत्र द्रुपद भी द्रोण के साथ ही भारद्वाज-आश्रम में शिक्षा पा रहा था। दोनों मे गहरी मित्रता थी। कभी-कभी राजकुमार द्रुपद उत्साह मे आकर द्रोण से यहांतक कह देता था कि पांचाल देश का राजा बन जाने पर आधा राज्य तुम्हे दे दूगा।

शिक्षा समाप्त होने पर द्रोणाचार्य ने कृपाचार्य की बहन से ब्याह कर लिया। उससे उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होने अश्वत्थामा रखा। द्रोण अपनी पत्नी और पुत्र को बड़ा प्रेम करते थे।

द्रोण बड़े गरीब थे। वह चाहते थे कि किसी तरह धन प्राप्त किया जाय और स्त्री-पुत्र के साथ सुख से रहा जाय। उन्हें खबर लगी कि परशुराम अपनी सारी सम्पत्ति गरीब ब्राह्मणों को बांट रहे हैं तो भागे-भागे उनके पास गये; लेकिन उनके पहुंचने तक परशुराम अपनी सारी सम्पत्ति वितरण कर चुके थे और वन-गमन की तैयारी कर रहे थे।

द्रोण को देखकर वे बोले—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपका स्वागत है। पर मेरे पास जो कुछ था वह मै बाट चुका। अब यह मेरा शरीर और मेरी धनुर्विद्या ही बाकी बची है। बताइये, मै आपके लिए क्या करूं।"

तब द्रोण ने उनसे सारे अस्त्रो का प्रयोग, उपसंहार तथा रहस्य सिखाने की प्रार्थना की। परशुराम ने यह स्वीकार कर लिया और द्रोण को धनुर्विद्या की पूरी शिक्षा दे दी।

कुछ समय बाद राजकुमार द्रुपद के पिता का देहावसान हो गया और द्रुपद राजगद्दी पर बैठा। द्रोणाचार्य को जब द्रुपद के पाचाल देश की राजगद्दी पर बैठने की खबर लगी तो यह सुनकर वे बडे प्रसन्न हुए और राजा द्रुपद से मिलने पांचाल देश को चल पडे। उन्हे द्रुपद की, गुरु के आश्रम मे लडकपन मे की गई बातचीत याद थी। सोचा, यदि आधा राज्य न भी देगा तो भी कम-मे-कम कुछ धन तो जरूर ही देगा।

यह आशा लेकर द्रोणाचार्य राजा द्रुपद के पास पहुंचे और बोले—"मित्र द्रुपद, मुझे पहचानते हो न? मै हू तुम्हारा लडकपन का मित्र द्रोण।"

ऐश्वर्य के मद मे भूले हुए राजा द्रुपद को द्रोणाचार्य का आना बुरा लगा और द्रोण का अपने साथ मित्र का-सा व्यवहार करना तो और भी अखरा। वह द्रोण पर गुस्से हो गया और बोला—"ब्राह्मण, तुम्हारा यह व्यवहार सज्जनोचित नही। मझे मित्र कहकर पुकारने का तुम्हे साहस कैसे हुआ? सिंहासन पर बैठे हुए एक राजा के साथ एक दरिद्र प्रजाजन की मित्रता कभी हुई है? तुम्हारी बुद्धि कितनी कच्ची है! लडकपन मे लाचारी के कारण हम दोनों को जो साथ रहना पड़ा, उसके आधार पर तुम द्रुपद से मित्रता का दावा करने लगे! दरिद्र

की धनी के साथ, मूर्ख की विद्वान् के साथ और कायर की वीर के साथ मित्रता कही हो सकती है ? मित्रता बराबरी की हैसियतवालों में ही होती है । जो किसी राज्य का स्वामी न हो, वह राजा का मित्र कभी हो नही सकता ।" द्रुपद की इन कठोर गर्वोक्तियो को सुनकर द्रोणाचार्य बडे लज्जित हुए और उन्हे क्रोध भी बहुत आया ।

उन्होने निश्चय किया कि इस अभिमानी राजा को सबक सिखाकर और बचपन में जो मित्रता की बात हुई थी उसे पूरा करके चैन लेगे । वे हस्तिनापुर पहुचे और वहा अपनी पत्नी के भाई (अपने साले) कृपाचार्य के यहा गुप्त-रूप से रहने लगे ।

एक रोज हस्तिनापुर के राजकुमार नगर के बाहर कही गेद खेल रहे थे कि इतने मे उनकी गेद एक अधे कुए मे जा गिरी । युधिष्ठिर उसको निकालने का प्रयत्न करने लगे तो उनकी अगूठी भी कुए में गिर पड़ी । सभी राजकुमार कुए के चारो ओर खडे हो गये और पानी के अन्दर चमकती हुई अगूठी को झाक-झाककर देखने लगे ; पर उसे निकालने का उपाय उनको नही सूझता था ।

एक कृष्णवर्ण का ब्राह्मण मुस्कराता हुआ यह सब चुपचाप देख रहा था । राजकुमारो को उसका पता नही था । राजकुमारो को अचरज में डालता हुआ वह बोला—"राजकुमारो ! तुम क्षत्रिय हो, भरतवश के दीपक हो । जरा-सी धनुर्विद्या जानने वाले जो काम कर सकते है वह भी तुम लोगो से न हो सका । बोलो, मै गेद निकाल दू तो तुम मुझे क्या दोगे ?"

"ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! आप गेद निकाल देगे तो कृपाचार्य के घर आपकी बढिया दावत करेगे ।" युधिष्ठिर ने हसते हुए कहा ।

तब द्रोणाचार्य ने पास मे पडी हुई एक सीक उठा ली और मत्र पढ करके उसे पानी मे फेका । सीक गेद को ऐसे जाकर लगी जैसे तीर । और फिर इस तरह लगातार कई सीके मंत्र पढ-पढ़कर वे कुएं मे डालते गये । सींके एक दूसरे के सिर से चिपकती गईं । जब आखिरी सीक का सिरा कुए के बाहर तक पहुचा तो द्रोणाचार्य ने उसे पकडकर खीच लिया और गेंद निकल आई ।

सब राजकुमार आश्चर्य से यह करतब देख रहे थे। जब गेंद निकल आई तो वे सब मारे खुशी के उछल पड़े। उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्होने ब्राह्मण से विनती की कि युधिष्ठिर की अंगूठी भी निकाल दीजिए। द्रोण ने तुरन्त धनुष चढाया और कुए में तीर मारा। पल भर में बाण अगूठी को अपनी नोक में लिये ऊपर आ गया। द्रोणाचार्य ने अंगूठी युधिष्ठिर को दे दी।

यह चमत्कार देखकर राजकुमारो को और भी ज्यादा अचरज हुआ। उन्होने द्रोण के आगे आदरपूर्वक सिर नवाया और हाथ जोडकर पूछा—"महाराज! हमारा प्रणाम स्वीकार कर लीजिए। हमें अपना परिचय दीजिए कि आप कौन है? हम आपकी क्या सेवा कर सकते है। हमें आज्ञा कीजिए।"

द्रोण ने कहा—"राजकुमारो! यह सारी घटना सुनाकर पितामह भीष्म से ही मेरा परिचय प्राप्त कर ले।"

राजकुमारो ने जाकर पितामह भीष्म को सारी बात कह सुनाई तो भीष्म ताड गए कि हो-न-हो वे सुप्रसिद्ध आचार्य द्रोण ही होगे। यह सोच उन्होंने निश्चय कर लिया कि आगे राजकुमारों की अस्त्र-शिक्षा द्रोणाचार्य के ही हाथों पूरी कराई जाय। और तब बडे सम्मान से उन्होने द्रोण का स्वागत किया और राजकुमारो को आदेश दिया कि आज से वे धनुर्विद्या गुरु द्रोण से ही सीखा करे।

कुछ समय बाद जब राजकुमारो की शिक्षा पूरी हो गई तो द्रोणाचार्य ने उनसे गुरु-दक्षिणा के रूप मे पांचाल-राज द्रुपद को कैद कर लाने के लिए कहा। उनकी आज्ञानुसार पहले दुर्योधन और कर्ण ने द्रुपद के राज्य पर धावा किया, पर पराक्रमी द्रुपद के आगे वे न ठहर सके। हार कर वापस आ गये। तब द्रोण ने अर्जुन को भेजा। अर्जुन ने पांचालराज की सेना को तहस-नहस कर दिया और राजा द्रुपद को उनके मत्री सहित कैद करके आचार्य के सामने ला खडा किया।

द्रोणाचार्य ने मुस्कराते हुए द्रुपद से कहा—"हे वीर! डरो नही। किसी प्रकार की विपत्ति की आशका न करो। लड़कपन में तुम्हारी-हमारी मित्रता थी। साथ-साथ खेले-कूदे, उठे-बैठे। बाद मे जब तुम

राजा बन गये तो ऐश्वर्य के मद में आकर तुम मुझे भूल गये और मेरा अपमान किया। तुमने कहा था कि राजा के साथ राजा ही मित्रता कर सकता है। इसी कारण मुझे युद्ध करके तुम्हारा राज्य छीनना पड़ा। परन्तु मै तो तुम्हारे साथ मित्रता ही करना चाहता हू, इसलिए आधा राज्य तुम्हे वापस लौटा देता हू; क्योकि मेरे मित्र बनने के लिए भी तो तुम्हें राज्य चाहिए न! मित्रता तो बराबरी की हैसियत वालो में ही हो सकती है।"

द्रोणाचार्य ने इसको अपने अपमान का काफी बदला समझा और उन्होंने द्रुपद को बडे सम्मान के साथ विदा किया।

इस प्रकार राजा द्रुपद का गर्व तो चूर हो गया; लेकिन बदले से घृणा दूर नही होती। किसी के अभिमान को ठेस लगने पर जो पीडा होती है वह सहन करना बडा कठिन होता है। द्रोण से बदला लेने की भावना द्रुपद के जीवन का लक्ष्य बन गई। उसने कई कठोर व्रत और तप इस कामना से रखे कि मेरे एक ऐसा पुत्र हो जो द्रोण को मार सके और एक ऐसी कन्या हो जो अर्जुन से ब्याही जा सके। आखिर उनकी कामना पूरी हुई। उनके धृष्टद्युम्न नामक एक पुत्र हुआ और द्रौपदी नाम की एक कन्या। आगे चलकर कुरुक्षेत्र की रण-भूमि मे अजेय द्रोणाचार्य इसी धृष्टद्युम्न के हाथों मारे गये थे।

: १३ :

लाख का घर

भीमसेन का शरीर-बल और अर्जुन की युद्ध-कुशलता देख-देखकर दुर्योधन की जलन दिन-पर-दिन बढती ही गई। वह ऐसे उपाय सोचने लगा कि जिसमे पाण्डवो का निश्चित नाश हो सके। इस कुमन्त्रणा मे उसका मामा शकुनी और कर्ण सलाहकार बने हुए थे।

बूढे धृतराष्ट्र बुद्धिमान थे। अपने भतीजों से उनको स्नेह भी काफी था, परन्तु अपने पुत्रों से उतना ही अधिक उनको मोह था। दृढ

निश्चय की उनमें कमी थी। किसी बात पर वे स्थिर नही रह सकते थे। अपने बेटे पर अंकुश रखने की शक्ति उनमे न थी। इस कारण यह जानते हुए भी कि दुर्योधन कुराह चल रहा है, उन्होंने उसका ही साथ दिया। दुर्योधन पाण्डवो के विनाश की कोई-न-कोई चाल चलता ही रहता था। पर उधर विदुर गुप्त रूप से पाण्डवों की सहायता करते रहते थे जिससे पांडव समय पर चेत जायं, सुरक्षित रह सके।

इधर पाण्डवो की लोकप्रियता दिनो-दिन बढती ही जाती थी। चौराहों पर, सभा-समाजो मे, जहां कही भी लोग इकट्ठे होते, पाण्डवो के गुणो की प्रशसा ही सुनने मे आती। लोग कहते कि राजगद्दी पर बैठने के योग्य तो युधिष्ठिर ही हैं। वे कहते—

"धृतराष्ट्र तो जन्म के अधे थे। इस कारण उनके छोटे भाई पांडु ही सिहासन पर बैठे थे। उनकी अकाल मृत्यु हो जाने और पाण्डवो के बालक होने के कारण कुछ समय के लिए धृतराष्ट्र ने राजकाज सम्हाला था। अब जब युधिष्ठिर बडे हो गये है तो फिर आगे धृतराष्ट्र के राज्य को अपने अधीन रखने का क्या अधिकार है! पितामह भीष्म का तो कर्तव्य है कि वे धृतराष्ट्र से राज्य का भार युधिष्ठिर को दिला दे। युधिष्ठिर ही सारी प्रजा के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार कर सकेंगे।"

ज्यों-ज्यो पाण्डवो की यह लोकप्रियता दुर्योधन के देखने में आती, ईर्ष्या से वह और भी अधिक कुढने लगता।

एक रोज धृतराष्ट्र को अकेले में पाकर दुर्योधन बोला—"पिताजी, पुरवासी लोग तरह तरह की बाते करते है—आपके बारे मे भी और स्वय पितामह के बारे मे भी। वैसे लोग अब पितामह को सम्मान की निगाह से कम ही देखते है। लोग तो हलचल मचा रहे है कि युधिष्ठिर को जल्दी ही राज-सिंहासन पर बिठा दिया जाय। इस कारण हमपर तो ऐसा लगता है कि कोई बडी विपत्ति आनेवाली है। जन्म से दिखाई न देने के कारण आप बडे होते हुए भी राज्य से वंचित ही रह गये। राज्य-सत्ता आपके छोटे भाई के हाथ में चली गई। अब यदि युधिष्ठिर को राजा बना दिया गया तो फिर सात पीढियो तक हम राज्य की आशा नही कर सकेंगे। युधिष्ठिर के बाद उसीका बेटा राजा बनेगा।

फिर हम तो कही के न रहेंगे। हो सकता है कि हमें भीख मागने तक को मजबूर होना पडे। ऐसे जीवन से तो नरक अच्छा! पिताजी, हमसे तो यह अपमान न सहा जायगा।"

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्र सोच में पड गये। बोले—"बेटा, तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन युधिष्ठिर के विरुद्ध कुछ करना भी तो कठिन है। युधिष्ठिर धर्मानुसार चलता है, सबसे समान स्नेह करता है, अपने पिता के समान ही गुणवान् है। इस कारण प्रजाजन भी उसे चाहते हैं। उसकी सहायता करने वालो की भी इसीसे कमी नही है। हमारे जितने भी मन्त्री है उन सबका पाडु ने उपकार किया था। सेना-नायकों, सैनिको और उनके बाल-बच्चो की इतनी सहायता की थी कि अभी तक सब उसका आभार मानते है। जो भी पाडु के गुणो से परिचित है वे अवश्य ही युधिष्ठिर का साथ देगे। इस कारण पाडवों पर विजय पाना हमारे लिए सम्भव नही। उलटे यदि हम धर्म के विरुद्ध कुछ कर बैठे तो नगरवासी सब हमारे विरुद्ध हो जायेगे और हमे और हमारे भाई-बन्धुओ को उखाड फेकेगे। लोग इतनी दूर न गये तो भी राज्य छोड कर तो हमे जरूर ही चला जाना पडेगा। लोक-निन्दा और अपयश के पात्र होंगे सो अलग।"

यह सुन दुर्योधन बोला—"पिताजी, आप व्यर्थ ही परेशान हो रहे है। चिन्ता की तो बात ही कोई नही है। मौका पडने पर पितामह भीष्म किसीके पक्ष मे न रहेगे। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा मेरे मित्र है—वे मेरा ही साथ देगे। आचार्य अपने बेटे को छोडकर विपक्ष मे नही जायगे। विदुर चाचा हमारा साथ भले ही न दें; पर हमारा विरोध करने की शक्ति तो उनमें भी नही है। इसलिए पिताजी, मेरा कहा मानिये। आपको और कुछ नही करना है, सिर्फ पाडवो को किसी-न-किसी बहाने वारणावत के मेले मे भेज दीजिए। इतनी-सी बात से, मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि हमारा कुछ भी बिगाड़ नही होगा। यहा तो पाडवो की बढ़ती देखकर मेरा जी जल रहा है। यह दुःख मेरे लिए असह्य हो उठा है। मेरी नीद हराम हो गई है। अगर ऐसी ही परिस्थिति रही तो फिर मै अधिक दिन जी नही सकूगा। आप

शीघ्र ही इनको वारणावत भेज देने की स्वीकृति दें ताकि यहां हम अपनी ताकत बढा सके।"

●

इस बीच अपने पिता पर और अधिक प्रभाव डालने के इरादे से दुर्योधन ने कुछ कूटनीतिज्ञो को अपने पक्ष मे मिला लिया। बारी-बारी से वे बूढे धृतराष्ट्र के पास जाने और पाडवो के विरुद्ध उन्हे उभारने लगे। इनमे कर्णिक नाम का ब्राह्मण मुख्य था, जो शकुनि का मत्री था। उसने धृतराष्ट्र को राजनीति की चालो का भेद बताते हुए अनेक उदाहरणो एव प्रमाणो से अपनी दलीलो की पुष्टि की। अन्त में बोला—"राजन्! जो ऐश्वर्यवान् है, वही ससार मे श्रेष्ठ माना जाता है। यह बात ठीक है कि पाडव आपके भतीजे है; परन्तु वे बड़े शक्ति-सम्पन्न भी है। इस कारण अभी से चौकन्ने हो जाइए। आप पाडु-पुत्रो से अपनी रक्षा कर लीजिए, वरना पीछे पछताइयेगा।"

धृतराष्ट्र ध्यान से सुन रहा था। कर्णिक बोलता गया—"मैंने जो कुछ कहा, उसके लिए मुझसे नाराज न होइयेगा। राजनीति के जानकार लोगो का मत है कि राजा को हमेशा अपने बल का प्रदर्शन करते रहना चाहिए। किसीको इतना-सा भी मौका न देना चाहिए कि वह राजा की ताकत को जरा भी ठेस पहुचा सके। राज-काज की बातें हमेशा गुप्त ही रखनी चाहिए। किसी भी कार्य को शुरू करने पर उसे अच्छी तरह पूरा किये बिना बीच मे ही न छोडना चाहिए। शत्रु की ताकत थोड़ी ही क्यो न हो, तत्काल ही उसका नाश कर देना चाहिए। कभी-कभी छोटी-सी चिनगारी सारे जगल को जला देती है। इस कारण शत्रु को कमजोर समझकर लापरवाह नही रहना चाहिए। वश मे आये शत्रु का तुरन्त वध कर देना चाहिए। उसपर दया न करनी चाहिए। इसलिए राजन्! पाडु के पुत्रो से आप अपना बचाव कर लीजिए। वे बडे ताकतवर है।"

कर्णिक की बातो पर धृतराष्ट्र विचार कर ही रहे थे कि दुर्योधन ने आकर कहा—"पिताजी, मैंने राजकीय कर्मचारियो को प्रलोभनो एव धन से सन्तुष्ट कर लिया है। मुझे सन्देह नही कि वे हमारी ही सहायता

करेंगे। सब मंत्रियों को तो मैंने अपनी तरफ कर लिया है। आप अगर किसी तरह पाडवो को समझाकर वारणावत भेज दें तो फिर नगर और राज्य हमारे ही हाथ में रहेंगे। प्रजाजन तो हमारे पक्ष मे आ ही जायेंगे। जब राज्य पर हमारा शासन पक्का हो जाय तब फिर पांडव बड़ी खुशी से लौट सकते है। फिर हमें उनसे कोई खतरा नही रहेगा।"

दुर्योधन और उसके साथी धृतराष्ट्र को रात-दिन इसी तरह पाडवो के विरुद्ध कुछ-न-कुछ कहते सुनाते रहते और उसपर अपना प्रभाव डालते रहते थे। आखिर धृतराष्ट्र कमजोर पड़े और उनको लाचार होकर अपने बेटे की सलाह माननी पडी। पाडवों को वारणावत भेजने की तैयारियां होने लगी। दुर्योधन के पृठ-पोषको ने वारणावत की सुन्दरता और खूबियो के बारे में पाडवों को बहुत ललचाया। कहा कि वरणावत मे एक भारी मेला होनेवाला है जिसकी शोभा देखते ही बनेगी। उनकी बातें सुन-सुनकर खुद पाडवो को भी वारणावत जाने की उत्सुकता हुई, यहांतक कि उन्होंने स्वय आकर धृतराष्ट्र से वहां जाने की अनुमति मांगी।

धृतराष्ट्र स्नेह का दिखावा करते हुए मीठे स्वर मे बोले—"ठीक है, तुम्हारी इच्छा है तो जरूर हो आओ। वारणावत के लोग भी तुम्हें देखने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। उनकी भी इच्छा पूरी हो जायगी।"

धृतराष्ट्र की अनुमति पाकर पाडव बडे खुश हुए और भीष्म आदि से विदा लेकर माता कुन्ती के साथ वारणावत के लिए रवाना हो गये।

पाडवो के चले जाने की खबर पाकर दुर्योधन की खुशी की सीमा न रही। वह अपने दोनों साथियो, कर्ण एवं शकुनि के साथ बैठकर पाडवो तथा कुन्ती का काम तमाम करने का उपाय सोचने लगा। उसने अपने मंत्री पुरोचन को बुलाकर गुप्त रूप से कुछ सलाह की, और एक योजना बनाई। पुरोचन ने यह सारा काम पूर्ण सफलता के साथ पूरा करने का वचन दिया और तुरन्त वारणावत के लिए रवाना हो गया।

एक शीघ्रगामी रथ पर बैठकर पुरोचन पांडवों से बहुत पहले वारणावत जा पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने पांडवों के ठहरने के लिए एक बड़ा और खूबसूरत महल बनवाया। सन, घी, मोम, तेल, लाख, चरबी आदि जल्दी आग पकड़ने वाली चीजों को मिट्टी में मिलाकर उसने यह सुन्दर भवन बनवाया। दीवारों पर जो रंग लगा था वह भी जल्दी भड़कने वाली चीजों का लगा था। जहां-तहां कमरों में भी ऐसी ही चीजें गुप्त रूप से भरवा दीं कि जिनको जल्दी ही आग लग सके। पर इतनी खूबी से यह सब प्रबन्ध किया गया था कि देखनेवालों को इन बातों का तनिक भी पता नहीं लग सकता था। भवन में ऐसे-ऐसे आसन और पलंग बिछे थे कि देखकर जी ललचा जाता था। इस प्रकार बड़ी खुशी से पुरोचन पांडवों के लिए वारणावत में ठहरने के लिए भवन बना रहा था। इस बीच अगर पांडव वहां जल्दी पहुंच गये तो कुछ समय ठहरने के लिए एक और जगह का प्रबन्ध पुरोचन ने कर रखा था।

दुर्योधन की यह योजना थी कि कुछ दिनों तक पांडवों को लाख के भवन में आराम से रहने दिया जाय। जब वे पूर्ण रूप से निःशंक हो जायें तब रात में, जबकि वे सो रहे हों, भवन में आग लगा दी जाय जिससे पांडव तो जलकर भस्म हो जायें और कौरवों पर कोई दोष भी न लगा सके। सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे, ऐसी यह योजना कुशलतापूर्वक दुर्योधन ने बनाई थी।

: १४ :

पाण्डवों की रक्षा

पांचों पांडव माता कुन्ती के साथ वारणावत के लिए चल पड़े। जाने से पहले बड़ों को यथोचित आदर-सहित प्रणाम किया और समवयस्कों से वे प्रेम से मिले और बिदा ली। उनके हस्तिनापुर छोड़कर वारणावत जाने की खबर पाकर नगर के लोग उनके साथ हो लिये। बहुत दूर जाने के बाद

युधिष्ठिर का कहा मानकर, नगरवासियो को लौट जाना पड़ा। विदुर ने उस समय युधिष्ठिर को साकेतिक भाषा में चेतावनी देते हुए कहा—

"राजनीति कुशल शत्रु की चाल को जो समझ लेता है वही विपत्ति को पार कर सकता है। एक ऐसा तेज हथियार भी है जो किसी धातु का नही बना है। ऐसे हथियार से अपना बचाव करने का उपाय जो जान लेता है वह शत्रु से मारा नही जा सकता। जो चीज ठडक दूर करती और जगलों का नाश करती है, वह बिल के अन्दर रहने वाले चूहे को नहीं छू सकती। सेही जैसे जानवर सुरग खोदकर जगली आग से अपना बचाव कर लेते हैं। बुद्धिमान लोग नक्षत्रों से दिशाये पहिचान लेते हैं।"

दुर्योधन के षड्यंत्र और उससे बचने का उपाय विदुर ने युधिष्ठिर को इस तरह गूढ भाषा मे बतला दिया कि जिसमे दूसरे लोग न समझ सके। युधिष्ठिर ने भी 'समझ लिया' कह कर बिदा ली। रास्ते में कुती के पूछने पर युधिष्ठिर ने मा और भाइयो को, जो कुछ विदुर ने कहा था, सब बता दिया। दुर्योधन की बुरी नीयत के बारे मे जानकर सबके मन उदास हो गये। बडे आनन्द के साथ वारणावत के लिए चले थे; लेकिन यह सब सुनकर सबके मन मे चिन्ता छा गई।

वारणावत के लोग पाडवो के आगमन की खबर पाकर बडे खुश हुए और उनके वहा पहुचने पर उन्होने बडे ठाट से उनका स्वागत किया। जबतक लाख का भवन बनकर तैयार हुआ, पाडव दूसरे घरो मे रहे जहां पुरोचन ने पहले से उनके ठहरने का प्रबन्ध कर रखा था।

लाख का भवन बनकर तैयार हो गया तो पुरोचन उन्हें उस मे ले गया। उसका नाम 'शिवम्' रखा गया। शिवम् का मतलब होता है कल्याण करने वाला। जिस भवन को नाशकारी योजना से प्रेरित होकर दुर्योधन ने बनवाया, उसका नाम पुरोचन ने 'शिवम्' रखा !

भवन में प्रवेश करते ही युधिष्ठिर ने उसे खूब ध्यान से देखा। विदुर की बातें उन्हे याद थी। ध्यान से देखने पर युधिष्ठिर को पता चल

गया कि यह घर जल्दी आग लगनेवाली चीजों से बना हुआ है। युधिष्ठिर ने भीम को भी यह भेद बता दिया; पर साथ ही उसे सावधान करते हुए कहा—"यद्यपि हमें यह साफ मालूम होगया है कि यह स्थान खतरनाक है तो भी हमें विचलित न होना चाहिए। पुरोचन को इस बात का जरा भी पता न लगे कि उसके षडयंत्र का भेद हमपर खुल गया है। मौका पाकर हमे यहा से निकल भागना होगा। पर अभी जल्दी मे ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे शत्रु के मन में जरा भी सदेह पैदा होने की सभावना हो।"

युधिष्ठिर की इस सलाह को भीमसेन सहित सब भाइयों ने तथा कुती ने मान लिया और उसी लाख के भवन में रहने लगे। इतने में विदुर का भेजा हुआ एक सुरग बनानेवाला कारीगर वारणावत नगर में जा पहुचा। उसने एक दिन पाडवों को अकेले में पाकर उन्हे अपना परिचय देते हुए कहा—"आप लोगो की भलाई के लिए हस्तिनापुर से रवाना होते समय विदुर ने युधिष्ठिर को साकेतिक भाषा मे जो कुछ उपदेश दिया था वह बात मैं जानता हूं। यही मेरे सच्चे मित्र होने का सबूत है। आप मुझपर भरोसा रक्खे। मै आप लोगों की रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए आया हू।"

इसके बाद वह कारीगर महल मे पहुंच गया और गुप्त रूप से कुछ दिनो मे ही उसने एक सुरग बना दी। इस रास्ते पाडव महल के अन्दर से नीचे-ही-नीचे महल की चहारदीवारी और गहरी खाई को लाघकर और बचकर बेखटके बाहर निकल सकते थे।

यह काम इतने गुप्त रूप और इतनी खूबी से हुआ कि पुरोचन को अन्त तक इस बात की खबर न होने पाई।

पुरोचन ने लाख के भवन के द्वार पर ही अपने रहने के लिए स्थान बनवा लिया था। इस कारण पाडवो को भी सारी रात हथियार लिये चौकन्ने रहना पडता था। कभी-कभी वे शिकार खेलने के बहाने आस-पास के जगलो मे घूम-फिर आते और बन के रास्तो को अच्छी तरह देख लेते। इस तरह पड़ौस के प्रदेश और जंगली रास्तो का उन्होंने खासा परिचय प्राप्त कर लिया। वे पुरोचन से ऐसे हिल-मिलकर व्यवहार

करते जैसे उसपर उन्हे कोई सदेह ही न हो, मानो वह उनका घनिष्ठ मित्र हो। सदा हसते-खेलते रहते। उनके व्यवहार को देखकर किसीको जरा भी सदेह नही हो सकता था कि उनके मन मे किसी बात की चिन्ता या आशका है।

उधर पुरोचन भी कोई जल्दी नही करना चाहता था। उसने सोचा कि ऐसे अवसर पर, इस ढंग से भवन को आग लगाई जाय कि कोई उसे दोषी न ठहरा सके। दोनो ही पक्ष अपने-अपने दाव खेल रहे थे। इसी तरह कोई एक बरस बीत गया।

एक दिन पुरोचन ने सोचा कि अब पाडवो का काम तमाम करने का समय आ गया। समझदार युधिष्ठिर उसके रग-ढग से ताड गये कि वह क्या सोच रहा है। उन्होने भी अपने भाइयों से कहा—"पुरोचन ने अब हमें मारने का निश्चय कर लिया मालूम होता है। यही समय है कि हमे भी अब यहा से भाग निकलना चाहिए।"

युधिष्ठिर की सलाह से माता कुती ने उसी रात को एक बड भोज का प्रबंध किया। नगर के सभी लोगो को भोजन कराया गया। बडी धूमधाम रही, मानो कोई बडा उत्सव हो। खूब खा-पीकर भवन के सब कर्मचारी गहरी नीद मे सो गये। नौकर-चाकर शराब के नशे मे चूर थे। पुरोचन भी सो गया।

आधी रात के समय भीमसेन ने भवन मे कई जगह आग लगा दी। फिर पाचो भाई और माता कुती के साथ सुरग के रास्ते अधेरे मे रास्ता टटोलते-टटोलते बाहर निकल आये। भवन से बाहर वे निकले ही थे कि आग ने सारे भवन को अपनी लपटो मे ले लिया। पुरोचन के रहने के मकान में भी आग लग गई।

आग देखकर सारे नगर के लोग वहा इकट्ठे हो गये और पाडवो के भवन को भयकर आग की भेट होते देखकर बड़ा हाहाकार मचाने लगे। कौरवो के अत्याचार से जनता क्षुब्ध हो उठी और तरह-तरह से कौरवो की निन्दा करने लगी। पाडवो को मारने के लिये पापी दुर्योधन और उसके साथी कैसे षडयंत्र रच रहे है, कैसी चालें चल रहे है, यह सोचकर लोग क्रोध में अनाप-शनाप और हाय तोबा मचाने लगे और

उनके देखते-देखते सारा भवन जलकर राख हो गया। पुरोचन का मकान और स्वय पुरोचन भी आग की भेंट हो गया।

वारणावत के लोगों ने तुरंत ही हस्तिनापुर में खबर पहुचा दी कि पाडव जिस भवन में ठहराये गये थे, वह जल कर राख हो गया और भवन में कोई भी जीता नही बचा।

यह खबर पाकर बूढे धृतराष्ट्र को शोक तो जरूर हुआ, परन्तु मन-ही-मन उनको आनन्द भी हो रहा था कि उनके बेटो के दुश्मन खतम हो गए। उनके मन की इस दोरुखी हालत का भगवान् व्यास ने बडी सुन्दरता से वर्णन किया है। वे लिखते हैं—"गरमी के दिनो मे जैसे गहरे तालाब का पानी सतह पर गरम रहता है, किन्तु गहराई मे ठडा रहता है, ठीक उसी तरह धृतराष्ट्र के मन मे शोक भी था और आनन्द भी।"

धृतराष्ट्र और उनके बेटो ने पाडवो की मृत्यु कर बडा शोक मनाया। सब गहने उतार दिए। एक मामूली कपडा पहने गगा किनारे गए और पाडवो तथा कुन्ती को तिलाजलि दी। फिर सब मिलकर बडे जोर-जोर से रोते और विलाप करते घर लौटे।

सब लोग जी भर रोये, परन्तु दार्शनिक विदुर ने जीना-मरना तो प्रारब्ध की बात होती है, यह विचार कर शोक को मन ही मे दबा लिया। अधिक शोक-प्रदर्शन न किया। इसके अलावा विदुर को यह पक्का विश्वास भी था कि पाडव लाख के भवन से बचकर निकल गये होगे। इस कारण, यद्यपि दिखावे के लिए दूसरो से मिलकर वे भी कुछ रोये, फिर भी मन मे यही अन्दाजा लगाते रहे कि अभी पाडव किस रास्ते और कितनी दूर गये होगे और कहा पहुचे होगे, इत्यादि। पितामह भीष्म तो मानो शोक के सागर मे मग्न थे। पर उनको भी विदुर ने धीरज बन्धाया और पाडवो के बचाव के लिए किये गए अपने सारे प्रबन्ध का हाल बताकर उन स्नेह-पूर्ण वृद्ध को चिता-मुक्त किया।

लाख के घर को जलता छोड़कर पाचो भाई माता कुन्ती के साथ बच निकले और जगल में पहुच गए। जगल मे पहुंचने पर भीमसेन ने

देखा कि लगातार रात भर जगे होने तथा चिन्ता और भय से पीड़ित होने के कारण चारों भाई बहुत थके हुए हैं। माता कुन्ती की तो दशा बड़ी ही दयनीय थी। बिचारी थककर चूर होगई थी। सो महाबली भीम ने माता को उठाकर अपने कन्धे पर बिठा लिया और नकुल एव सहदेव को कमर पर ले लिया। युधिष्ठिर और अर्जुन को दोनो हाथो से पकड लिया और फिर वह वायु-देव का पुत्र भीम उस जगली रास्ते में उन्मत्त हाथी के समान झाड-झखाड और पेड-पौधो को इधर-उधर हटाता व रौंदता हुआ तेजी से चलने लगा। जब वे सब गंगा के किनारे पहुचे तो वहा विदुर की भेजी हुई एक नाव तैयार खडी मिली। युधिष्ठिर ने मल्लाह से गूढ प्रश्न करके जांच लिया कि वह मित्र है और विश्वास करने योग्य है। नाव मे बैठकर रातोरात उन्होने गंगा पार किया और फिर अगले दिन शाम तक तेजी से चलते रहे कि किसी सुरक्षित स्थान पर पहुच जाय।

इतने मे सूरज डूब गया और रात हो चली। चारो तरफ अधेरा छा गया। वन-प्रदेश जगली जानवरो की भयानक आवाज से गूजने लगा। कुन्ती और पाडव एक तो थकावट के मारे चूर हो रहे थे, ऊपर से प्यास और नीद भी उन्हे सताने लगी। चक्कर-सा आने लगा। एक पग भी आगे बढना असभव हो गया। भीम के सिवाय और सब भाई वही जमीन पर बैठ गए। कुन्ती से तो बैठा भी नही गया। दीनभाव से बोली, "मै तो प्यास से मरी जा रही हू। अब मुझसे बिल्कुल नही चला जाता। धृतराष्ट्र के बेटे चाहे तो भले ही मुझे यहा से उठा ले जाए, मै तो यही पडी रहूगी।" यह कहकर कुन्ती वही जमीन पर गिरकर बेहोश हो गई। माता और भाइयो का यह हाल देखकर क्षोभ के मारे भीमसेन का हृदय गरम हो उठा। वह उस भयानक जगल मे बेधडक घुस पडा और इधर-उधर घूम-घामकर उसने एक जलाशय का पता लगा ही लिया। उसने कमल के पत्तो के दोनो मे पानी भर लिया और अपना दुपट्टा भिगोकर उसमे भी पानी लाकर माता व भाइयो की प्यास बुझाई। पानी पीकर चारो भाई और माता कुन्ती ऐसे सोये कि उन्हें अपनी सुध-बुध तक न रही।

अकेला भीमसेन मन-ही-मन कुछ सोचता हुआ चिंतित भाव से बैठा रहा। उसके निर्दोष मन में यह विचार उठा—"देखो, इस जंगल में कितने ही पेड़-पौधे हैं। वे सब एक दूसरे की रक्षा करते हुए कितने मजे से लहलहा रहे हैं! जब पेड-पौधे तक हिल-मिल कर प्रेम के साथ रह सकते है तो दुरात्मा धृतराष्ट्र और दुर्योधन मनुष्य होकर हमसे इतना वैर-भाव क्यों रखते है?"

पाचो भाई माता कुन्ती को साथ लिये अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते और बडी मुसीबतें झेलते हुए उस जगली रास्ते में आगे बढते ही चले गये। वे कभी माता को उठाकर तेज चलते, कभी थके-मांदे बैठ जाते। कभी एक दूसरे से होड लगाकर रास्ता पार करते।

चलते-चलते रास्ते मे एक दिन महर्षि व्यास से उनकी भेंट हुई। उनको सबने दण्डवत प्रणाम किया। महर्षि ने उन्हे धीरज बंधाया और सदुपदेशो से उनको सात्वना दी। कुन्ती जब रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाने लगी तो व्यासजी ने उन्हे समझाते हुए कहा—"कोई भी ऐसा मनुष्य नही जो हमेशा धर्म ही के काम करता रहे, ऐसा भी कोई नही जो पाप-ही-पाप करता हो। संसार मे हरेक मनुष्य पाप भी करता है और धर्म-कर्म भी। अतः जब किसी पर कोई विपत्ति पडे तो उसे अपने ही किये का फल मानकर सह लेना चाहिए। अपने-अपने कर्म का फल हरेक को भोगना ही पडता है, यह समझकर दुखी न हो। धीरज धरकर हिम्मत से सब सह लो।"

कुन्ती को इस प्रकार समझाने के बाद व्यासजी ने पाण्डवो को सलाह दी कि वे ब्राह्मण ब्रह्मचारियो का वेश धरकर एकचक्रा नगरी में जाकर रहे। उनकी सलाह के अनुसार पाण्डवो ने मृगचर्म, वल्कल आदि धारण कर लिये और ब्राह्मणो के वेश मे एकचक्रा नगरी जाकर एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे।

: १५ :

बकासुर-वध

माता कुन्ती के साथ पाचो पाडव एकचक्रा नगरी मे भिक्षा मागकर अपनी गुजर करके दिन बिताने लगे। वे ब्राह्मणो के घरो मे भिक्षा माग लाते और जो-कुछ मिलता उसे माता के सामने लाकर रख देते। भिक्षा के लिए जब पाचो भाई निकल जाते तो कुन्ती का जी बडा बेचैन हो उठता। वह बडी चिन्ता से उनकी बाट जोहती रहती। उनके लौटने मे जरा भी देर हो जाती कि कुन्ती के मन मे तरह-तरह की आशकाए उठने लगती।

पाचो भाई भिक्षा मे जितना भोजन लाते, कुन्ती उसके दो हिस्से कर देती। एक हिस्सा भीमसेन को दे देती और बाकी आधे मे से पाच हिस्से करके चारो बेटे और खुद खा लेती थी। तिसपर भी भीमसेन की भूख मिटती न थी। वह तो भूखा ही रह जाया करता था।

भीमसेन वायुदेव का अशावतार था। इसलिए उसमे जितनी अमानुषिक ताकत थी उतनी ही अमानुषिक भूख भी थी। यही कारण था कि उसको लोग वृकोदर भी कहते थे। वृकोदर का मतलब है भेडिये का-सा पेट वाला। भेडिये का पेट देखने मे छोटा होने पर भी मुश्किल से भरता है। भीमसेन के पेट का भी यही हाल था। एकचक्रा नगरी मे भिक्षा मागने से जो थोडा-बहुत अन्न मिल जाता था उससे बिचारे भीम को भला क्या सन्तोष हो सकता था! हमेशा ही भूखा रहने के कारण वह दिन-पर-दिन दुबला होने लगा और उसका शरीर पीला पडने लगा।

भीमसेन का यह हाल देखकर कुन्ती और युधिष्ठिर बडे चिन्तित रहने लगे।

जब थोडे-से भोजन से पेट न भरने लगा तो भीमसेन ने कुछ दिनो से एक कुम्हार से दोस्ती कर ली थी। उसे मिट्टी वगैरा खोदने में मदद देकर खुश कर लिया। कुम्हार भीम से बडा खुश हुआ और एक बड़ी भारी हाडी उसको बनाकर दे दी। भीम उसी हाडी को लेकर भिक्षा के लिए निकलता। उसका भीम-काय शरीर और उसकी वह विलक्षण हांडी देखकर बच्चे तो हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाते।

एक दिन चारो भाई भिक्षा के लिए गये। अकेला भीमसेन माता कुन्ती के साथ घर पर रहा। इतने मे ब्राह्मण के घर के भीतर से बिलख-बिलखकर रोने की आवाज आई। ऐसा मालूम होता था मानो कोई बड़ी शोकप्रद घटना घट गई हो। कुन्ती का जो भर आया। वह इस दुख का कारण जानने की इच्छा से घर के भीतर गई। अन्दर जाकर देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी आखो मे आसू भरे सिसकियां लेते हुए एक-दूसरे से बातें कर रहे है।

ब्राह्मण बडे दुःखी हृदय से अपनी पत्नी से कह रहा था—"अभागिनी, कितनी ही बार मैंने तुझे समझाया कि इस अन्धेर नगरी को छोड़कर कही और चले जाय, पर तुमने न माना। कहती रही कि यही पैदा हुई, यही पली तो यही रहूगी। मा-बाप तथा भाई-बन्धुओ का स्वर्गवास हो जाने पर भी यही हठ करती रही कि यह मेरे बाप-दादे का गाव है, यही रहूगी। बोलो, अब क्या कहती हो ?

"फिर तुम मेरे धर्म-कर्म की सगिनी हो, मेरी सन्तान की मा और मेरी पत्नी हो। मेरे लिए भी तुम मा-समान हो और मित्र भी हो। मेरा जीवन-सर्वस्व तुम्ही हो। कैसे तुम्हे मृत्यु के मुह में भेकजर अकेले जिऊ ?

"और अपनी बेटी की भी बलि कैसे चढा दू ? यह तो ईश्वर की दी हुई धरोहर है, जिसे सुयोग्य वर को ब्याह देना मेरा कर्त्तव्य है। परमात्मा ने हमारे वश को चलाये रखने के लिए यह कन्या दी है। इसे मौत के मुह मे डालना घोर पाप होगा।

"और पुत्र जो मुझे और हमारे पित्तरो को तिलाजलि देने तथा श्राद्ध-कर्म करने का अधिकारी है, उसको कैसे काल-कवलित होने दूं ?

हाय ! तुमने मेरा कहा न माना ! उसीका फल अब भुगतना पड रहा है। और यदि मैं शरीर त्यागता हू तो फिर इन अनाथ बच्चों का भरण-पोषण कौन करेगा ? हा दैव ! मैं अब क्या करू ? और कुछ करने से तो अच्छा उपाय यह है कि सभी एक-साथ मृत्यु को गले लगा ले। यही श्रेयस्कर होगा।" कहते-कहते ब्राह्मण सिसक-सिसक कर रो पडा।

ब्राह्मण की पत्नी भरे हुए स्वर मे बोली— "प्राणनाथ ! पति को पत्नी से जो प्राप्त होना चाहिए, वह मुझसे आपको प्राप्त हो गया। जिस उद्देश्य के लिए पुरुष स्त्री से व्याह करता है वह मैंने आपके लिए पूरा कर दिया है। मेरे गर्भ से आपके एक पुत्री और एक पुत्र उत्पन्न हो चुके है। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। मेरे न होने पर भी आप अकेले ही बच्चो को पाल-पोस सकते है, किन्तु आपके बिना मुझसे वह नही हो सकेगा। इसके अलावा दुष्टो से भरे हुए इस ससार में किसी अनाथ स्त्री का जीना भी मुश्किल है। जैसे चील-कौए बाहर फेके हुए मास के टुकडो को उठा ले जाने की ताक मे मडराते रहते है वैसे ही दुष्ट लोग विधवा स्त्री को हडप ले जाने की ताक मे लगे रहते हैं। घी मे भीगे हुए कपडे पर जैसे कुत्ते टूट पडते है और चारो तरफ से उसे खीचने लगते है वैसे ही पति के मरने पर पत्नी को बदमाश लोग फसा लेते है और वह स्त्री उनके चक्कर मे पडकर ठोकरे खाती फिरती है। आप न रहे तो इन अनाथ बच्चो की देख-भाल भी अकेले मुझसे नही हो सकेगी। आपके बिना ये दोनो बच्चे वैसे ही तडप-तडपकर प्राण दे देंगे, जैसे सरोवर का पानी सूख जाने पर मछलिया। इसलिए नाथ, मुझे ही राक्षस के पास जाने दीजिए। पति के जीते-जी पत्नी का स्वर्गवास हो जाय, इससे बढकर भाग्य की बात और क्या हो सकती है। शास्त्र भी तो यही कहते है। सो आप मुझे आज्ञा दे। मेरे बच्चो की रक्षा करे। मैं जीवन का सुख भोग चुकी। एक साध्वी नारी का जो धर्म है उसका नियम से पालन करती रही, आपकी सेवा-शुश्रूषा मे कोई कसर न रक्खी तो यह निश्चित है कि मुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। मुझे मरने का कोई दु:ख नही है। मेरी मृत्यु के बाद आप चाहे तो दूसरी पत्नी ला सकते है। अब मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे ताकि मैं राक्षस का भोजन बनू।"

पत्नी की ये व्यथाभरी बातें सुनकर ब्राह्मण से न रहा गया। उसने स्त्री को छाती से लगा लिया और असहाय-सा होकर दीन स्वर मे आसू बहाने लगा। अपनी पत्नी को प्यार करते हुए वह बोला— "प्रिये, ऐसी बातें न करो। मुझसे सुना नही जाता। तुम्हारी जैसी बुद्धिमती पत्नी को छोडना मेरे लिए महापाप होगा। समझदार पति का पहला कर्त्तव्य अपनी पत्नी की रक्षा करना है। पति को चाहिए कि कभी स्त्री का साथ न छोडे। तब फिर मुझसे बडा दुरात्मा और पापी कौन होगा, जो तुम्हे राक्षस की बलि चढा दे और खुद जीता रहे।"

माता-पिता को इस तरह बाते करते देख ब्राह्मण की बेटी से न रहा गया। उसने करुण स्वर में कहा— "पिताजी, आप मेरी भी तो बात सुन ले। उसके बाद फिर जो आपको उचित लगे, करें। अच्छा तो यह है कि राक्षस के पास आप मुझे भेज दे। मुझे भेजने से आपको कोई नुकसान नही पहुचेगा और आप सब बच जायगे। जैसे नाव के सहारे नदी पार की जाती है वैसे ही मेरे सहारे इस आफत को पार कर लीजिए। पिताजी, यदि आप मृत्यु के मुह मे पड़ जायगे तो फिर मेरा नन्हा-सा भाई तडप-तडपकर जान दे देगा। आप मर जायगे तो फिर मेरा भी कोई सहारा न रह जायगा और मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। मेरी समझ से मै इस योग्य हू कि इस सारे कुल को मुसीबत से छुटकारा दे सकती हू। कुल के बचाव की दृष्टि से अपनी बलि चढाने से मेरा जीवन भी सार्थक होगा। और नही तो कम-से-कम मेरी ही भलाई के विचार से भी आपको मुझी को राक्षस के पास भेजना होगा।"

बेटी की बाते सुनकर माता-पिता दोनो के आसू उमड आये। दोनो न बेटी को प्यार से गले लगा लिया और बार-बार उसका माथा चूमते हुए वे रोने लगे। लडकी भी रो पडी। सबको इस तरह रोते देखकर ब्राह्मण का नन्हा-सा लडका अपनी बड़ी-बडी आखो से माता-पिता और बहन को देखते हुए उन्हे समझाने लगा। बारी-बारी से उनके पास जाता और अपनी तोतली बोली में—"पापा, रोओ मत," "मा, रोओ मत," "दीदी, रोओ मत!" कहता हुआ बारी-बारी से उनकी गोद मे जा बैठता। जब इसपर भी बडे लोगो का रोना बन्द न हुआ तो लडका

उठा और पास मे पड़ी हुई एक सूखी लकडी हाथ में लेकर घुमाता हुआ बोला--"उस राक्षस को तो मैं ही इस लकडी से इस तरह जोर से मार डालूगा।" बच्चे की तोतली बोली और वीरता का अभिनय देखकर उस संकट-भरी घडी मे भी सबको हंसी आ गई और थोडे क्षण के लिए वे अपना दु:ख भूल गये ।

कुन्ती खडे-खडे यह सब देख रही थी। अपनी बात कहने का उसने यही ठीक मौका देखा। वह बोली--"हे ब्राह्मण देवता, क्या आप कृपा करके मुझे बता सकते है कि आप लोगो के इस असमय दु:ख का कारण क्या है? मुझसे बन पडा तो मै आपको संकट से छुडाने का प्रयत्न कर सकूगी।"

ब्राह्मण ने कहा--"देवी! आप इस बारे मे क्या कर सकेगी? फिर भी बताने मे तो कोई हर्ज है नही! सुनिये--इस नगरी के नजदीक एक गुफा है जिसमे बक नामक एक बडा अत्याचारी राक्षस रहा करता है। पिछले तेरह वर्ष से इस नगरी के लोगो पर वह बडे जुल्म ढा रहा है। इस देश का राजा एक क्षत्रिय है जो वेत्रकीय नाम के महल मे रहता है। लेकिन वह इतना निकम्मा है कि प्रजा को राक्षस के अत्याचार से बचा नही रहा है। इससे बकासुर नगर के लोगो को जहा देखता, मारकर खा जाता था। क्या स्त्रिया, क्या बूढे, क्या बच्चे, कोई भी इस राक्षस के अत्याचार से न बच सके। इस हत्याकाड से घबराकर नगर के लोगो ने मिलकर उससे बडी अनुनय-विनय की कि कोई-न-कोई नियम बना ले। लोगो ने कहा--"इस तरह मनमानी हत्या करना तुम्हारे भी हक मे ठीक नही है। मास, अन्न, दही, मदिरा आदि तरह-तरह की खाने-पीने की चीजे जितनी तुम चाहो उतनी हाडियो मे भरकर व बैल-गाडियो मे रखकर हम तुम्हारी गुफा मे प्रति सप्ताह भेज दिया करेगे। गाडी हाकने वाला आदमी व गाडी खीचने वाले दो बैल भी तुम्हारे ही खाने के लिए होगे। इनको छोडकर औरो को तग न करने की कृपा करो।" बकासुर ने लोगो की यह बात मान ली और तबसे इस समझौते के अनुसार यह नियम बना हुआ है कि लोग बारी-बारी से एक-एक आदमी और खाने की चीजे हर सप्ताह उसे पहुचा दिया करते है और उसके बदले

मे यह बलशाली राक्षस बाहरी शत्रुओं और हिंस्र जन्तुओं से इस देश की रक्षा करता है ।

"जिस किसी ने भी इस मुसीबत से देश को छुडाने का प्रयत्न किया, उसको तथा उसके बाल-बच्चों तक को इस राक्षस ने तत्काल ही मारकर खा लिया। इस कारण किसी की हिम्मत भी नही पडती है कि इसके विरुद्ध कुछ करे। देवी, हमारे ऊपर जो राजा बन बैठा है उसमें तो इतनी भी शक्ति नही कि इस राक्षस के पजे से हमे छुडाये। जिस देश का राजा शक्ति-सम्पन्न न हो उस देश की प्रजा के सन्तान ही न होनी चाहिए। सुखी एव शिष्ट गृहस्थ जीवन नयशील व शक्तिशाली राजा के अधीन ही सभव है। परन्तु जब खुद राजा ही कमजोर हो—देश की रक्षा करने योग्य न हो—तो न ब्याह करना चाहिए, न धन ही कमाना चाहिए। हमारी कष्टकथा यह है कि इस सप्ताह मे उस राक्षस के खाने के लिए आदमी और भोजन भेजने की हमारी बारी है। किसी गरीब आदमी को खरीद कर भेजना चाहू तो उसके लिए मेरे पास इतना धन भी नही है। स्त्री-बच्चो को अकेले भेजना मुझसे नही हो सकता। अब तो मैंने यही सोचा है कि सबको साथ लेकर ही राक्षस के पास चला जाऊगा। हम सब एक ही साथ उस पापी के पेट मे चले जाय यही अच्छा होगा। आपने पूछा तो आपको बता दिया। इस कष्ट को दूर करना तो आपके बस मे नही है, देवी।"

ब्राह्मण की बात का कोई उत्तर देने से पहले कुन्ती ने भीमसेन से कुछ सलाह की। उसने लौटकर कहा— "विप्रवर, आप इस बात की चिन्ता छोड दे। मेरे पाच बेटे है, उनमे से एक आज राक्षस के पास भोजन लेकर चला जायगा।"

सुनकर ब्राह्मण चौक पडा और बोला—"आप भी कैसी बात कहती है ? आप हमारे अतिथि है। हमारे घर मे आश्रय लिये हुए है। आपके बेटे को मृत्यु के मुह मे मै भेजू, यह कहा का न्याय है ? मुझसे यह हो ही नही सकता।"

ब्राह्मण को समझाते हुए कुन्ती बोली— "द्विजवर ! घबराइये नही। जिस बेटे को मै राक्षस के पास भेजने वाली हू वह कोई ऐसा-वैसा

नही है। वह ऐसे मंत्र सीखा हुआ है कि जिसके बल से इस अत्याचारी राक्षस का भोजन बनने के बजाय वह उसका काम-तमाम करके लौट आवेगा। कई बलिष्ठ राक्षसो को उसके हाथो मारे जाते मै स्वय देख चुकी हू। इसलिए आप किसी बात की चिन्ता न करे। हा, इस बात का ध्यान रखे कि किसीको इस बात की कानो-कान खबर न हो। क्योकि यदि यह बात फैल गई तो फिर मेरे बेटे की विद्या आगे काम न देगी।"

कुन्ती को डर था कि यदि यह बात फैल गई तो दुर्योधन और उनके साथियो को पता लग जायगा कि पाडव एकचक्रा नगरी मे छिपे हुए है। इसीसे उसने ब्राह्मण से इस बात को गुप्त रखने का आग्रह किया था।

कुन्ती ने जब भीमसेन को बताया कि उसे बकासुर के पास भोजन-सामग्री लेकर जाना होगा, तो वह फूला न समाया। उसके अग-अग मे बिजली-सी दौड गई। जब पाचो भाई भिक्षा मागकर घर लौटे तो युधिष्ठिर ने देखा कि भीमसेन के मुख पर असाधारण आनन्द की झलक है। युधिष्ठिर ने तुरन्त ही ताड लिया कि भीमसेन को कोई बडा काम करने का मौका मिला है। माता कुन्ती से उन्होने पूछा--"मा, आज भीमसेन बडा प्रसन्न दिखाई दे रहा है? क्या बात है? कोई भारी काम करने की तो उसने नही ठानी है?"

कुन्ती ने जब सारी बात बताई, तो युधिष्ठिर खीज उठे। बोले--"यह तुम कैसा दुस्साहस करने चली हो मा! भीमसेन ही के बल-बूते पर तो जरा निश्चिन्त हो पाये है। दुष्टो ने छल-प्रपच रचकर हमारा जो राज्य छीन लिया है उसे भी तो हम इसीके शौर्य और बल से वापस लेने की आशा कर रहे है। अगर भीमसेन न होता तो लाख के भवन की जलती आग से हम भला बच सकते थे? ऐसे भीम को--ऐसे अपने पुत्र को-- गवाने की आपको भी खूब सूझी! लगातार दु.ख झेलने के कारण कही बुद्धि तो नही खो बैठी हो मा!" युधिष्ठिर की इन कडी बातो का उत्तर देते हुए कुन्ती बोली-- "बेटा युधिष्ठिर! इन ब्राह्मण के घर मे हमने कई दिन आराम से बिताये। जब इनपर बिपता पडी है, तो मनुष्य होने के नाते हमें उसका बदला चुकाना ही चाहिए। मै बेटा भीम

की शक्ति और बल से अच्छी तरह परिचित हू। तुम इस बात की चिन्ता मत करो। जो हमे वारणावत से यहां तक उठा लाया, जिसने हिडिंब का वध किया, उस भीम के बारे मे मुझे न तो कोई डर है न चिंता। भीम को बकासुर के पास भेजना हमारा कर्त्तव्य है।"

इसके बाद नियम के अनुसार नगर के लोग मांस, मदिरा, अन्न, दही आदि खाने-पीने की चीजे गाडी मे रखकर ले आये। गाडी में दो काले बैल जुते हुए थे। भीमसेन उछलकर गाडी में बैठ गया। शहर के लोग भी बाजे बजाते कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे चले। एक निश्चित स्थान पर लोग रुक गये और अकेला भीमसेन गाडी दौडाता हुआ आगे गया।

गुफा के नजदीक पहुच कर भीमसेन ने देखा कि रास्ते मे जहा-नहा हड्डिया पडी हुई है। खून के चिन्ह, मनुष्यो के व जानवरो के बाल व खाल इधर-उधर पडे हुए है। कही टूटे हुए हाथ-पांव तो कही धड पडे हुए है। चारो तरफ बडी बदबू आ रही है। ऊपर गिद्ध और चीले मडरा रही है।

इस बीभत्स दृश्य की तनिक भी परवाह न करते हुए भीमसेन ने गाडी वही खडी कर दी और मन-ही मन कहा— ऐसा स्वादिष्ट भोजन फिर थोडे ही मिलेगा। राक्षस के साथ लडने के बाद खाना ठीक नही रहेगा; क्योकि मार-धाड मे ये सभी चीजे बिखर कर नष्ट हो जायेगी और किसी काम की भी न रहेगी। फिर इसके अलावा यह भी बात है कि राक्षस को मारने पर छूत लग जायगी और ऐसी हालत मे तो खा भी न सकूगा, इसलिए यही ठीक है कि इन चीजो को अभी खतम कर जाऊं।"

उधर राक्षस मारे भूख के तड़प रहा था। जब बहुत देर हो गई तो बडे क्रोध के साथ गुफा के बाहर आया। देखता क्या है कि एक मोटा-सा मनुष्य बडे आराम से बैठा भोजन कर रहा है। यह देखकर बकासुर की आखे क्रोध से एकदम लाल हो उठी। इतने मे भीमसेन की भी निगाह उसपर पडी। उसने हसते हुए उसका नाम लेकर पुकारा। भीमसेन की यह ढिठाई देखकर राक्षस गुस्से मे भर गया और तेजी से भीमसेन पर झपटा। उसका शरीर बडा लम्बा-चौडा था। सिर के

तथा मूछो के बाल आग की ज्वाला की तरह लाल थे। मुह इतना चौडा था कि वह उसके एक कान से लेकर दूसरे कान तक फैला हुआ था। स्वरूप इतना भयानक कि देखते ही रोगटे खडे हो जाते थे।

भीमसेन ने बकासुर को अपनी ओर आते देखा तो उसकी तरफ पीठ फेर ली और उसकी कुछ भी परवाह न करके खाने मे ही लगा रहा। राक्षस ने भीमसेन के पास आकर उसकी पीठ पर जोर का घूसा मारा; परन्तु भीमसेन को मानो कुछ हुआ ही नही। वह सामने पडी चीजो को खाने मे ही लगा रहा। खाली हाथो काम न बनते देखकर राक्षस ने एक बडा-सा पेड जड से उखाड लिया और उसे भीमसेन पर दे मारा। पर भीमसेन ने बाये हाथ पर उसे रोक लिया और दाहिने हाथ से अपना खाना जारी रखा। जब मास तथा अन्न खतम हो गया, तो घडा भर दही पीकर उसने मुह पोछ लिया और तब मुडकर राक्षस को देखा। भीम का इस प्रकार निबटना था कि दोनों मे भयानक मुठभेड हो गई। भीमसेन ने बकासुर को ठोकरे मारकर गिरा दिया और कहा— "दुष्ट, राक्षम ! जरा विश्राम तो कर ले।"

थोडी देर सस्ताकर कहा— "अच्छा ! अब उठो फिर !" बकासुर उठकर भीम के साथ लडने लगा। फिर भीमसेन ने उसको और ठोकरे लगाकर फिर गिरा दिया। इस तरह बार-बार पछाड खाने पर भी राक्षस उठकर भिड जाता। आखिर भीम ने उसे मुह के बल गिरा दिया और उसकी पीठ पर घुटनो की मार देकर उसकी रीढ तोड डाली।

राक्षस पीडा के मारे चीख उठा और उसके प्राण-पखेरू उड गये। उसके मुह से खून की धारा बह निकली।

भीमसेन उसकी लाश को घसीट लाया और नगर के फाटक पर ले जाकर पटक दी, फिर घर जाकर स्नान किया और मा को आकर सारा हाल बताया। माता कुन्ती आनन्द और गर्व के मारे फूली न समाई।

: १६ :

द्रौपदी-स्वयंवर

जिस समय पाडव एकचक्रा नगरी मे ब्राह्मणो के भेस मे जीवन बिता रहे थे, उन्ही दिनो पाचाल-नरेश की कन्या द्रौपदी के स्वयवर की तैयारिया होने लगी। एकचक्रा नगरी के रहनेवाले ब्राह्मण यह खबर पाकर बडे प्रसन्न हुए और स्वयवर का तमाशा देखने तथा दान वगैरा पाने की इच्छा से पाचाल देश जाने की तेयारी करने लगे। पाडवो को भी इच्छा हुई कि जाकर स्वयवर मे सम्मिलित हो, पर माता कुन्ती से अनुमति मागते उन्हे जरा सकोच हुआ।

लेकिन कुती भी दुनियादारी की बातो मे कच्ची नही थी। बेटो के रग-ढग से उसने भाप लिया कि वे द्रौपदी के स्वयंवर में पाचाल देश जाना चाहते है। उसने युधिष्ठिर से कहा— "बेटा! इस नगरी मे अब हम काफी रह चुके। यहा के वनो, उपवनो तथा दूसरे दृश्यो का भी हम काफी आनन्द ले चुके। एक ही जगह रहने और एक ही दृश्य को देखते रहने से मन ऊब जाता है। तिसपर यहा भिक्षान्न भी दिन-पर-दिन कम मिलने लगा है। किसी और जगह चले जाय तो अच्छा होगा। सुनती हू पाचाल देश की भूमि बडी उपजाऊ है। तो फिर वही क्यो न चले?"

नेकी और पूछ-पूछ! पाण्डवो ने माता की बात एक स्वर से मान ली और वे पाचाल देश के लिए चल पडे।

एकचक्रा नगरी के ब्राह्मणो के झुण्ड पाचाल देश के लिए रवाना हुए। पाण्डव भी उनके साथ ही हो लिये। कई दिन चलने के बाद वे राजा द्रुपद की सुन्दर राजधानी मे पहुचे। नगर की सैर करने और गज-

भवनो को देख लेने के बाद पाचो भाई माता कुती के साथ किसी कुम्हार की झोंपडी में आ टिके। पाचाल देश मे भी पाण्डव ब्राह्मण-वृत्ति ही धारण किये रहे। इस कारण कोई उनको पहचान न सका।

यद्यपि द्रोणाचार्य के साथ राजा द्रुपद का समझौता हो चुका था, फिर भी द्रोणाचार्य की शत्रुता का विचार करके द्रुपद सदा चिन्तित रहा करते थे। अत अपनी शक्ति बढाने तथा द्रोण की शक्ति कम करने के खयाल से पाचाल-नरेश की इच्छा थी कि द्रौपदी का ब्याह धनुष के धनी अर्जुन के साथ हो जाय। पर जब उन्होने सुना कि पाचो पाण्डव वारणावत के लाख के भवन मे जलकर मर गये तो राजा द्रुपद के शोक की सीमा न रही। परन्तु शीघ्र ही यह भी उनके सुनने मे आया कि उनके जीते रहने की भी सभावना हो सकती है तो राजा द्रुपद की सोई आशा फिर जाग उठी। सोचा, स्वयवर रच दू तो शायद पाण्डव किसी तरह आकर उसमे सम्मिलित हो जाय।

स्वयवर के लिए बडे सुन्दर मडप का निर्माण हुआ। उसके चारो तरफ राजकुमारी के रहने के लिए सजाये हुए कई भवन बने थे। जी लुभाने वाले खेल-तमाशो एव प्रदर्शनो का भी प्रबन्ध किया गया था। दो सप्ताह तक बडी धूमधाम के साथ उत्सव मनाया गया।

स्वयंवर-मण्डप मे एक बृहदाकार धनुष रक्खा हुआ था जिसकी डोरी फौलादी तारो की बनी थी। ऊपर काफी ऊचाई पर एक सोने की मछली टगी हुई थी। उसके नीचे एक चमकदार यन्त्र बडे वेग के साथ घूम रहा था। राजा द्रुपद ने घोषणा की थी कि "जो राजकुमार उस भारी धनुष को तानकर डोरी चढायेगा और ऊपर घूमते हुए गोल यन्त्र के मध्य मे से तीर चलाकर ऊपर टगे हुए निशाने को गिरा देगा उसीको द्रौपदी वरमाला पहनायेगी।"

इस स्वयवर के लिए दूर-दूर से अनेक क्षत्रिय वीर आये हुए थे। मण्डप मे सैकडो राजा इकट्ठे हुए थे जिनमे धृतराष्ट्र के सौ बेटे, अगनरेश कर्ण, श्रीकृष्ण, शिशुपाल, जरासन्ध आदि भी शामिल थे। दर्शकों की भी भारी भीड थी। सभा मे सागर की लहरो के सदृश गभीर आवाज हो रही थी। बाजे बज रहे थे, शंख आदि के मगल-सूचक निनाद से

दिशाए गूज रही थी। राजकुमार धृष्टद्युमन घोडे पर सवार होकर आगे आया। उसके पीछे हाथी पर सवार द्रौपदी आई। उसने मगल-स्नान करके अपने केश अगर के सुगन्धित धुए से सुखा रखे थे। वह रेशमी साड़ी पहने थी। स्वाभाविक सौदर्य ही मानो उसका भूषण प्रतीत होता था। हाथ में फूलो का हार लिये राजकन्या हाथी पर से उतरी और सभा मे पदार्पण किया। एकत्रित राजकुमार उसकी छवि निहार कर आनन्द-मुग्ध हो गए। कनखियो से उन्हे देखती हुई द्रुपद-राज-कन्या सभा के बीच मे से होकर मण्डप मे जा पहुची।

ब्राह्मणो ने ऊंचे स्वर से मत्र पढकर अग्नि मे आहुति दी और "स्वस्ति" वचन कहकर आशीर्वाद दिये। धीरे-धीरे बाजो का स्वर मन्द हो चला। राजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी बहन का हाथ पकडकर मण्डप के बीच मे ले गया और गभीर स्वर मे घोषणा करते हुए बोला—"मडप मे उपस्थित सब वीर सुने, यह धनुष है, ये बाण है, वह निशाना है। जो भी रूपवान, बली एव कुलीन व्यक्ति घूमते हुए यन्त्र के बीच मे से पाच बाण चलाकर निशाना गिरा देगा, मेरी बहन उसको ही अपनी वरमाला पहनायेगी; यह सत्य है।"

यह घोषणा करने के बाद धृष्टद्युम्न बारी-बारी से उपस्थित राज-कुमारो के नाम एव कुल का परिचय अपनी बहन को देने लगा।

इसके बाद एक-एक करके राजकुमार उठते और धनुष पर डोरी चढाते व हारते और अपमानित होकर लौट आते। कितने ही सुप्रसिद्ध वीरो को इस तरह मुह की खानी पडी।

इस प्रकार शिशुपाल, जरासन्ध, शल्य, दुर्योधन-जैसे पराक्रमी राज-कुमार तक असफल हो गये।

जब कर्ण की बारी आई तो सभा मे एक लहर दौड गई। सब-ने सोचा, अंग-नरेश जरूर सफल हो जायगे। कर्ण ने धनुष उठाकर खड़ा कर दिया और तानकर प्रत्यंचा भी चढानी शुरू की और अभी डोरी के चढ़ाने मे बाल-भर की कसर रह गई थी कि इतने में धनुष का डण्डा हाथ से छूट गया और उछल कर जोर से उसके मुह पर लगा। अपनी चोट सहलाता हुआ कर्ण अपनी जगह पर जा बैठा।

इतने मे उपस्थित ब्राह्मणो के बीच मे से एक तरुण ब्रह्मचारी उठ खडा हुआ। ब्राह्मण वेष-धारी अर्जुन को यो खडा होते देखकर सभा में बडी हलचल मच गई। लोगो मे तरह-तरह की चर्चा होने लगी और सभा में दो पक्ष हो गये। उपस्थित ब्राह्मणो मे भी दो दल बन गये। स्वयवर के एक दल ने इस ब्रह्मचारी का खूब स्वागत किया और नारे लगाये। दूसरे ने उसका विरोध किया।

बहुत से ब्राह्मणो ने चिल्लाकर कहा कि जिस प्रयत्न मे कर्ण और शल्य जैसे महारथी हार मान चुके है उसमे इस ब्राह्मण ब्रह्मचारी का हारना सारे विप्रकुल के लिए अपमान की बात हो जायगी। अत इसे यह दु साहस नही करना चाहिए। ब्राह्मणो ने बडे जोश के साथ इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"इस युवक मे ऐसा उत्साह, ऐसा साहस झलक रहा है कि जिससे आशा होती है कि जरूर ही यह जीतेगा। जो काम क्षत्रियो से न हो सका, वह शायद इस ब्राह्मण के हाथो हो जाय। ब्राह्मण मे शारीरिक बल भले ही कम हो, तपोबल तो है ही! अत इसके इस प्रयत्न करने मे कौन-सी आपत्ति हो सकती है?" आदि अनेक चर्चाओ के बाद ब्राह्मण-समूह भी अर्जुन के प्रतियोगिता मे भाग लेने के पक्ष मे हो गया और सब ब्राह्मणो ने एक स्वर से तथास्तु कहकर अर्जुन को आशीर्वाद दे दिया।

इधर अर्जुन धनुष के समीप जाकर खडा हो गया और राजकुमार धृष्टद्युम्न से पूछा—"कुमार, क्या ब्राह्मण भी इस प्रतियोगिता मे भाग लेकर लक्ष्य-बेध कर सकते है?"

धृष्टद्युम्न ने उत्तर दिया—"द्विजोत्तम, जो कोई भी इस धनुष पर प्रत्यचा चढ़ाकर शर्त के अनुसार लक्ष्य-बेध करेगा, वह चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय, वैश्य हो चाहे शूद्र, मेरी बहन उसकी पत्नी हो जायेगी। मै यह वचन दे चुका हू। उसे न तोड़ूगा।"

तब अर्जुन ने भगवान् नारायण का ध्यान करके धनुष हाथ मे लिया और उसपर डोरी चढा दी। उसने धनुष पर तीर चढाया और आश्चर्य-चकित लोगो को मुस्कराते हुए देखा। लोग मत्र-मुग्ध से उसे देख रहे थे। उसने और देरी न करके तुरन्त एक के बाद एक पाच बाण उस घूमते हुए चक्र मे मारे और निशाना टूटकर नीचे गिर पडा।

सभा में कोलाहल मच गया; बाजे बज उठे। उपस्थित हजारों ब्राह्मणो ने अपने-अपने अंगोछे ऊपर फेंककर आनन्द का प्रदर्शन किया। ब्राह्मण तो ऐसे खुश हुए मानो द्रौपदी को उन सबो ने ही पा लिया हो।

उस समय राजकुमारी द्रौपदी की शोभा कुछ अनूठी हो गई। आगे बढी और सकुचाते हुए लेकिन प्रसन्नता-पूर्वक ब्राह्मण-वेष में खडे अर्जुन को वरमाला पहना दी।

माता को यह शुभ-समाचार सुनाने के लिए युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव तीनो भाई मण्डप से उठकर चले गए। परन्तु भीम नही गया। उसे भय था कि निराश राजकुमार कही अर्जुन को कुछ कर न बैठें।

और भीमसेन का अनुमान ठीक ही निकला। राजकुमारो ने बडी हलचल मचा दी। उन्होने शोर मचाया— "ब्राह्मणो के लिए स्वयवर की रीति नही होती। यदि इस कन्या को कोई भी राजकुमार पसन्द न था तो उसे चाहिये था कि वह कुंवारी ही रह जाती और चिता पर चढ जाती, बनिस्बत इसके कि वह एक ब्राह्मण की पत्नी बने। यह कैसे हो सकता है? यह तो स्वयवर की प्रथा पर कुठाराघात करना है। कम-से-कम धर्म की रक्षा के लिए हमे चाहिये कि इस अनुचित ब्याह को न होने दे।"

राजकुमारो का जोश बढता गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि भारी विप्लव मच जायगा। यह हाल देखकर भीमसेन चुपके से बाहर गया, एक पेड को जड से उखाडकर ऐसे झंझोडा कि उसके सारे पत्ते झड गये। फिर उसे मामूली लाठी की तरह कन्धे पर रखकर अर्जुन की बगल मे आकर खडा हो गया। अर्जुन ब्राह्मण के वेष में मृग-छाला ओढे खडा था। द्रौपदी उसके मृगचर्म का सिरा पकडे हुए चुपचाप खडी रही।

श्रीकृष्ण, बलराम और राजा लोग विप्लव मचाने वाले राजकुमारो को समझाने लगे। वे समझाते रहे और इस बीच भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लेकर कुम्हार की कुटिया की ओर चल दिये।

जब भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लेकर सभा से जाने लगे तो द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न चुपके से उनके पीछे हो लिया। कुम्हार की कुटिया मे जो देखा उससे धृष्टद्युम्न के आश्चर्य की सीमा न रही। वह

तुरन्त लौट आया और अपने पिता से कहा— "पिताजी, मुझे तो ऐसा विश्वास होता है कि हो-न-हो, ये लोग पाण्डव ही है ! बहन द्रौपदी उस युवक की मृगछाला पकड़े बेखटके जाने लगी तो मै भी उनके पीछे हो लिया। वे एक कुम्हार की झोपडी मे जा पहुचे। वहा अग्नि-शिखा की भाति एक तेजस्वी देवी बैठी थी। जो बातें हुई उनसे मेरा विश्वास हो गया कि वह कुती देवी ही होनी चाहिए।"

राजा द्रुपद के बुलावा भेजने पर पाचो भाई माता कुती और द्रौपदी को साथ लिये राज-भवन मे पहुचे। युधिष्ठिर ने राजा द्रुपद को अपना सही परिचय दे दिया। यह जानकर कि ये पाण्डव है, राजा द्रुपद फूले न समाये। "महाबली अर्जुन मेरी बेटी के पति हो गये है तो फिर अब द्रोणाचार्य की शत्रुता की मुझे चिन्ता नही रही !" यह विचार कर उन्होने सन्तोष की सास ली।

किन्तु जब युधिष्ठिर ने बताया कि पाचो भाई एक-साथ द्रौपदी से ब्याह करने का निश्चय कर चुके है तो पाचाल-राज को बडा अचरज हुआ और घृणा भी। पाण्डवो के निश्चय का विरोध करते हुए वे बोले— "यह कैसा अन्याय है ! यह विचार किसी भी समय धर्म नही माना गया। ससार की प्रचलित रीति के विरुद्ध है। ऐसा अनुचित विचार आपके मन मे उठा ही कैसे ?"

इसका समाधान करते हुए युधिष्ठिर ने कहा— "राजन् ! क्षमा करे। हममे यह बात तय हुई है कि जो-कुछ प्राप्त हो, सब बाटकर समान रूप से भोगे। भारी विपदा के समय हमने यह निश्चय किया था। हमारी माता का भी यही कहना था। अब हम इससे विमुख नही हो सकते।"

राजा द्रुपद ने अपने को स्थिति के अनुकूल करते हुए कहा—"यदि आप, कुती देवी, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी आदि सब इस बात को उचित समझे, तो फिर ऐसा ही हो।" और फिर सबकी सम्मति से द्रौपदी के साथ पाचो पाण्डवो का ब्याह हो गया।

: १७ :

इन्द्रप्रस्थ

द्रौपदी के स्वयवर मे जो कुछ हुआ, उसकी खबर जब हस्तिनापुर पहुची तो धर्मात्मा विदुर बडे खुश हुए। धृतराष्ट्र के पास दौड़े गये और बोले—"धृतराष्ट्र, हमारा कुल शक्ति-सम्पन्न हो गया है। राजा द्रुपद की पुत्री हमारी बहू बन गई है। हमारे भाग्य जाग गये। आज बडा सुदिन है।"

धृतराष्ट्र ने अपने बेटे के प्रति अन्ध-प्रेम के कारण विदुर की बात का गलत अर्थ समझा। दुर्योधन भी तो स्वयवर मे गया था न! सो उन्होने समझा कि दुर्योधन ने द्रौपदी को स्वयवर मे प्राप्त किया। बोले—"अहो-भाग्य! अहोभाग्य!! विदुर अभी जाकर बहू द्रौपदी को ले आओ, और पाचालराज की बेटी का खूब धूमधाम से स्वागत करने का प्रबन्ध करो। चलो, जल्दी करो।"

तब विदुर असली बात उन्हे बताते हुए बोले—"भाग्यशाली पाण्डव अभी जीवित हं। राजा द्रुपद की कन्या को स्वयवर मे अर्जुन ने प्राप्त किया है। पाचो भाइयो ने विधिपूर्वक द्रौपदी के साथ ब्याह कर लिया है और देवी कुन्ती के साथ वे सब द्रुपद के यहा कुशल से है।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र सहम से गये। उनका उत्साह ठंडा पड़ गया। पर उसे प्रकट न करके हर्ष का बहाना करते हुए बोले—"भाई विदुर! तुम्हारी बातो से मुझे असीम आनन्द हो रहा है,। क्या सचमुच मेरे प्यारे भाई पाण्डु के पुत्र जीवित है? वे कुशल से तो है? मै कितना शोक मना रहा था, कितना व्याकुल हो रहा था उनकी मृत्यु के समाचार से! तुम्हारे इस समाचार ने मेरे तप्त हृदय मे मानो अमृत बरसा दिया।

आनन्द से मै फूला नही समाता। राजा द्रुपद की बेटी हमारी बहू बन गई है, यह बडा ही अच्छा हुआ। हमारे अहोभाग्य !"

उधर दुर्योधन को जब मालूम हुआ कि पाण्डवो ने लाख के घर की भीषण आग से किसी तरह बचकर और एक बरस तक कही छिपे रहने के बाद अब पराक्रमी पाचालराज की कन्या से ब्याह कर लिया है और पहले से भी अधिक शक्तिशाली बन गये है तो उनके प्रति उसके मन मे ईर्षा की आग और अधिक प्रबल हो उठी। दबा हुआ वैर फिर से जाग उठा।

दुर्योधन और दु शासन ने शकुनि को अपना दुखडा सुनाया–– "मामा, अब क्या करे ? निकम्मे पुरोचन ने हमे कही का न रक्खा ! हमारी चाल बेकार गई। सचमुच ही हमारे वैरी पाण्डव चतुरता मे हमसे कही बढे-चढे निकले। दैव भी उन्ही का साथ दे रहा है। मृत्यु तो उनके पास तक नही फटकती। और अब तो द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न और शिखण्डी भी उनके साथी बन गये। मामा, हमे तो अब डर लगने लगा है। आप कोई-न-कोई कारगर उपाय बताइए।"

उसके बाद कर्ण और दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास गये और एकान्त मे उनसे दुर्योधन ने कहा, "पिताजी, चाचा से आपने कैसे कहा कि हमारे भाग्य खुल गये है ! कही शत्रु की बढती से भी किसी के भाग्य खुलते है ? पाण्डव तो हमारे शत्रु है। उनकी बढती हमारे नाश ही का कारण बनेगी। हमने कितने ही उपाय किये फिर भी उनका कुछ बिगाड न सके। हमारे सब प्रयत्न उलट कर हमपर ही आफतें ढाने लगे है, यह क्या आप नही देखते है ? अब चाहे जो हो, हमे चाहिये कि हम अभी पाण्डवो को नष्ट कर दे, नही तो फिर हमारी ही तबाही होगी। इसमे कोई सन्देह ही नही है। अत जल्दी ही हम ऐसा कोई उपाय करे जिससे हम सदा के लिए निश्चिन्त हो सके।"

धृतराष्ट्र ने कहा–– "बेटा, तुम बिलकुल ठीक कहते हो। भैया विदुर से मैंने जो कहा था, उसका तुम खयाल न करना। बात यह है कि विदुर को हमारे मन की बात मालूम न होनी चाहिए। इसलिए मैंने उससे ऐसी बाते की। तुम्ही बताओ, अब क्या करना चाहिए ?"

दुर्योधन ने कहा—"मुझे तो चिन्ता के कारण आगा-पीछा कुछ भी नहीं सूझता। मेरी बुद्धि ठिकाने नही है। कभी कुछ सोचता हूं, कभी कुछ। फिर जो भी सूझता है, आपको बताता हूं, सुनिए। पाण्डव पाचो भाई एक मा के बेटे नहीं है। इस बात का लाभ उठाकर माद्री तथा कुन्ती के बेटों में किसी तरह फूट डाली जा सके—एक दूसरे के विरुद्ध उभाडा जा सके—तो हमारा काम बन सकता है। एक उपाय तो यह है। इसके अलावा राजा द्रुपद को भी धनादि देकर अपने पक्ष मे कर लेने का प्रयत्न किया जा सकता है। द्रुपद में और पाण्डवो में केवल यही सबध है न, कि उनकी बेटी से इन्होने ब्याह कर लिया है? पर यह नही कहा जा सकता कि केवल इसी एक बात के लिए राजा द्रुपद हमारी मित्रता अस्वीकार कर देगे। धन में वह शक्ति है कि जिससे असम्भव भी सम्भव बन जाता है।"

दुर्योधन की इस बात को कर्ण ने हसी मे ही उडा दिया। बोला—"ऐसा सोचना तो बेकार की बाते हैं।"

दुर्योधन ने कहा—"तो फिर हमे कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे पाण्डव यहा आयें ही नही, क्योकि यदि वे इधर आये तो जरूर राज्य पर भी अपना अधिकार जमाना चाहेंगे। अच्छा यही है कि यह होने ही न दिया जाय। इसके लिए कुछ चतुर ब्राह्मणो को सिखा-पढाकर पाचाल देश में भेजा जा सकता है कि वहा जाकर वे तरह-तरह की अफवाहें उडाये। पाण्डवों के पास हमारे आदमी एक-एक करके भिन्न-भिन्न रूप से जाये और उनसे कहे कि हस्तिनापुर जाने पर उनपर विपत्ति आने की सम्भावना है। इस तरह पाण्डवो के मन मे भय पैदा किया जाए तो वे यहा लौटना नही चाहेंगे।"

दुर्योधन की इस युक्ति को भी कर्ण ने ठुकरा दिया।

फिर दुर्योधन ने कहा—"अगर यह न हो सके तो फिर द्रौपदी द्वारा ही पाचो भाइयो में फूट पैदा कराई जा सकती है। प्रचलित रीति और मानव-स्वभाव के विरुद्ध एक स्त्री से पाच आदमियो ने एक साथ ब्याह कर लिया है। इसका निभना बडा कठिन काम है। इससे हमारा काम और भी आसान हो सकता है। काम-शास्त्र के निपुण लोगो की सहायता

से पाण्डवो के मन मे एक-दूसरे पर तरह-तरह के सन्देह उत्पन्न किए जा सकते है। मेरा विश्वास है कि इसमे हमारा काम अवश्य बन जाएगा। कुछ सुन्दर युवतियो के द्वारा कुन्ती के बेटो का मन भी फेर लिया जा सकता है। जिससे उनके चाल-चलन पर स्वय द्रौपदी को शका हो जाए। अगर ऐसा हो जाय तो स्वय द्रौपदी का मन उनकी तरफ से हट जायगा। यदि किसी एक पाण्डव के प्रति द्रौपदी का मन मैला हो जाए तो उस पाण्डव को चुपके मे हस्तिनापुर ले आया जाए और फिर जो कुछ कराना हो उसके द्वारा कराया जाय।

इसपर कर्ण को हसी आ गई। उसने कहा—"दुर्योधन! तुम्हे उलटी ही सूझा करती है। चाल चलने और प्रपच रचने से पाण्डवो को जीतने की आशा व्यर्थ है। जब वे यहा पर थे तब उन्हे अनुभव ही क्या था? तब तो वे उतने ही नि सहाय थे जितने पख उगने मे पहले पछी के बच्चे होते हैं। जब उस नि सहाय अवस्था मे भी तुम उनको अपनी चाल मे न फसा सके तो अब वह बात कैसे हो सकती है? अब एक साल बाहर रहने और दुनिया देख लेने से उन्हे काफी अनुभव प्राप्त हो चुका है। एक शक्ति-सपन्न राजा के यहा उन्होंने शरण ली है। तिसपर उनके प्रति तुम्हारा वैर-भाव उनसे छिपा नही। इसीलिए छल-प्रपच से अब काम नही बनेगा। आपस मे फूट डालकर उनको हराना भी सभव नही। राजा द्रुपद धन के प्रलोभन मे पडने वाले व्यक्ति नही है। लालच दिखाकर उनको अपने पक्ष मे करने का विचार बेकार है। पाडवो का साथ वे कभी नही छोड़ेगे। राजकुमारी द्रौपदी के मन मे पाण्डवो के प्रति घृणा पैदा हो ही नही सकती। ऐसे विचार की ओर ध्यान देना भी ठीक नही। हमारे पास तो केवल एक ही उपाय रह गया है और वह यह कि पाडवो की ताकत और अधिक बढने से पहले उनपर धावा बोल दिया जाए और युद्ध करके उनको कुचल डाला जाए। अगर हम हिचकिचाते रहे तो और कितने ही राजा उनके साथी बन जाएगे। यादव सेना के साथ महाराजा कृष्ण के पाचाल राज्य मे पहुचने से पहले ही हमे पाडवो पर चढाई कर देनी चाहिए, हमे अचानक द्रुपद के राज्य पर टूट पडना चाहिए। तभी जाकर हम

पाडवो की शक्ति मिटा सकेगे, अन्यथा नही। मैदान मे जौहर दिखलाना, अपने बाहु-बल से काम लेना, यही क्षत्रियोचित उपाय है। कुचक्र रचने मे काम नही बनेगा।"

कर्ण की तथा अपने बेटो की परस्पर-विरोधी बाते सुनकर धृतराष्ट्र इस बारे मे कोई निश्चय नही कर सके। वे पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण को बुलाकर उनसे सलाह-मशविरा करने लगे।

पाडु-पुत्रो के जीवित रहने की खबर पाकर पितामह भीष्म के मन मे भी आनन्द की लहरे उठ रही थी। धृतराष्ट्र ने उनसे पूछा—"पितामह, खबर मिली है कि पाडु के पुत्र जीवित है और पांचाल-राज के यहा कुशल मे है। अब उनका क्या किया जाय ?"

धर्मात्मा एव नीतिशास्त्र के ज्ञाता भीष्म ने कहा—"बेटा! वीर पाडवो के साथ सधि करके आधा राज्य उन्हे दे देना ही उचित है। मारे देश के प्रजा-जन यही चाहते है और खानदान की इज्जत रखने का भी यही उपाय है। लाख के भवन के जल जाने के बारे मे नगर के लोग तरह-तरह की बाते कर रहे है। सब लोग तुम्हीको दोषी ठहरा रहे है। यदि अब भी पाडवो को वापस बुला लो और उन्हे आधा राज्य दे दो तो कुल का कलक मिटा सकोगे। मेरी तो यही सलाह है।"

आचार्य द्रोण ने भी यही सलाह दी। उन्होने कहा—"राजन्! अभी कुशल राजदूतो को पाचाल देश में भेज दीजिए कि सधि की शर्ते तय कर आए। फिर पाडवो को यहा बुलाकर बडे भाई युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करके आधा राज्य उन्हे दे दीजिए। मुझे भी यही उच्चित लगता है।"

अगनरेश कर्ण भी इस अवसर पर धृतराष्ट्र के दरबार मे उपस्थित था। पाण्डवो को आधा राज्य देने की सलाह उसे जरा भी अच्छी न लगी। दुर्योधन के प्रति कर्ण के हृदय मे अपार स्नेह था। इस कारण द्रोणाचार्य की सलाह सुनकर उसके क्रोध की सीमा न रही। धृतराष्ट्र से बोला—"राजन्! मुझे यह देखकर बडा आश्चर्य हो रहा है कि आपके धन से धनी और आपके सम्मान से प्रतिष्ठित हुए आचार्य द्रोण आपको ऐसी कुमन्त्रणा देने लगे है! राजन्! शासको का कर्त्तव्य है कि

मन्त्रणा देने वालो की नीयत को पहले परख ले तब फिर उनकी मन्त्रणा पर ध्यान दे। केवल शब्दो को ही महत्व न देना चाहिए।"

कर्ण की इन बातों से द्रोणाचार्य कुपित हो उठे। गरजकर बोले—"दुष्ट कर्ण! तुम राजा को गलत रास्ता बता रहे हो। तुमने शिष्टता से बातें करना भी नही सीखा। यह निश्चित है कि यदि राजा धृतराष्ट्र मेरी तथा पितामह भीष्म की सलाह न मानें और तुम जैसो की सलाह पर चलें तो फिर कौरवो का नाश ही होकर रहेगा।"

इसके बाद धृतराष्ट्र ने धर्मात्मा विदुर से सलाह ली। विदुर ने कहा—"हमारे कुल के नायक भीष्म तथा आचार्य द्रोण ने जो बताया वही श्रेयस्कर है। वे बडे बुद्धिमान है। सदा हमारी भलाई करते आए हैं। सो उनकी बातो के अनुसार ही कार्य होना चाहिए। जैसे दुर्योधन आदि आपके बेटे है वैसे ही पाडव भी है। उनकी बुराई सोचने की सलाह जो भी दे, उसे अपने कुल का शत्रु समझिएगा। कम-से-कम अपनी भलाई के लिए भी आपको पाडवो से न्यायोचित व्यवहार करना चाहिए। पाचाल-नरेश द्रुपद, उनके दोनों शक्तिमान पुत्र, यदुवश के राजा कृष्ण और उनके साथी आदि सब पाडवो के पक्ष मे हैं। इस हालत मे पाडवो को युद्ध में हराना सभव भी नही हो सकता। कर्ण की सलाह किसी काम की नही, उसपर ध्यान न देना ही ठीक है। यो ही हमपर यह दोष लगा हुआ है कि पाडवों को लाख के भवन मे ठहरा कर उनको मरवा डालने का हमने प्रयत्न किया। इस धब्बे को पहले धो डालना ही ठीक होगा। यह जानकर कि पाडव अभी जीवित है, हमारी सारी प्रजा आनन्द मना रही है और पाडवों के दर्शन के लिए बडी उत्सुक हो रही है। दुर्योधन की बात न सुनिए। कर्ण और शकुनि अभी कल के बच्चे हैं। राजनीति से अनभिज्ञ ह। उनकी युक्तिया कभी कारगर न हो सकेंगी। इसलिए राजन्, भीष्म के ही आदेशानुसार काम कीजिए।"

अन्त मे धृतराष्ट्र ने पाण्डु के पुत्रो को आधा राज्य देकर सन्धि कर लेने का निश्चय किया और पाण्डवो को द्रौपदी तथा कुन्ती सहित सादर लिवा लाने के लिए विदुर को पांचाल देश भेजा।

विदुर भांति-भांति के रत्न और अमूल्य उपहार साथ लेकर रथ पर सवार हो पाचाल देश को रवाना हो गए।

पाचाल देश मे पहुच कर विदुर ने राजा द्रुपद को अमूल्य उपहार भेट करके उनका सम्मान किया और राजा धृतराष्ट्र की तरफ से अनुरोध किया कि पाण्डवो को द्रौपदी सहित हस्तिनापुर जाने की अनुमति दें।

विदुर का अनुरोध सुनकर राजा द्रुपद के मन मे शका हुई। उनको धृतराष्ट्र पर विश्वास न आया। सिर्फ इतना कह दिया कि पाण्डवो की जैसी इच्छा हो वही करना ठीक होगा।

तब विदुर ने माता कुन्ती के पास जाकर दण्डवत की और अपने आने का कारण उसे सुनाया। कुन्ती के भी मन में शका हुई कि कही पुत्रो पर कुछ आफत न आ जाए। चिन्तित भाव से बोली-- "विचित्रवीर्य के पुत्र विदुर! तुम्हीने मेरे बेटों की रक्षा की थी। इन्हे अपने ही बच्चे समझना। तुम्हारे ही भरोसे इन्हे छोडती हू और तुम जो कहोगे वही करूगी।"

विदुर ने उन्हे बहुत समझाया और धीरज देते हुए कहा--"देवी, आप निश्चिन्त रहे। आपके बेटो का कोई कुछ नही बिगाड सकेगा। वे ससार में बडा यश कमायेगे और विशाल राज्य के स्वामी बनेंगे। आप सब बेखटके हस्तिनापुर चलिए।" आखिर द्रुपद राजा ने भी अनुमति दे दी और विदुर के साथ कुन्ती और द्रौपदी समेत पाण्डव हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गए।

उधर हस्तिनापुर मे पाण्डवो के स्वागत की बडी धूम-धाम से तैयारिया होने लगी। गलियो मे पानी छिडका गया था और रग-बिरगे फूल बिछाये गए थे। सारा नगर सजाया गया था। जब पाचो पाण्डव कुन्ती और द्रौपदी के साथ नगर मे प्रविष्ट हुए तो लोगो के आनन्द का पार न था।

जैसा कि पहले ही निश्चय हो चुका था, युधिष्ठिर का यथा-विधि राज्याभिषेक हुआ और आधा राज्य पाण्डवो के अधीन किया गया। राज्याभिषेक के उपरान्त युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने कहा-- "बेटा युधिष्ठिर! भैया पाडु ने इस राज्य को अपने बाहु-बल से बहुत

विस्तृत किया था। मेरी कामना यही है कि उन्हीके समान तुम यशस्वी बनो और सुख से रहो। तुम्हारे पिता पाडु मेरा कहा कभी नहीं टालते थे —प्रेम-भाव से उसे मानते थे। तुमसे भी मुझे वही आशा है। मेरे अपने बेटे बडे दुरात्मा है। एक साथ रहने से सभव है तुम दोनो के बीच वैर बढे। इस कारण मेरी सलाह है कि तुम खाडवप्रस्थ को अपनी राजधानी बना लेना और वही से राज करना। इससे तुममे और मेरे बेटो मे शत्रुता होने की सभावना न रहेगी। खांडवप्रस्थ वह नगरी है जो पुरु, नहुष, ययाति जैसे हमारे प्रतापी पूर्वजो की राजधानी रही है। हमारे वश की पुरानी राजधानी खाडवप्रस्थ को फिर से बसाने का यश और श्रेय तुम्हीको प्राप्त हो!"

धृतराष्ट्र के मीठे बचन मानकर पाडवो ने खाडवप्रस्थ के भग्नावशेषो पर जो कि उस समय तक निर्जन वन ही बन चुका था, निपुण शिल्पकारो से एक नये नगर का निर्माण कराया। सुन्दर भवनो, अभेद्य दुर्गो आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया। इन्द्रप्रस्थ की शान एव सुन्दरता ऐसी थी कि सारा ससार उसकी प्रशसा करते न थकता था। अपनी इस राजधानी मे द्रौपदी और माता कुन्ती के साथ पाचो पाडव तेईस बरस तक सुखपूर्वक जीवन बिताते हुए न्यायपूर्वक राज करते रहे।

: १८ :

सारंग के बच्चे

पशु-पक्षियों मे भी मनुष्य जैसे व्यवहार का आरोप करना पौराणिक आख्यायिकाओ की एक खूबी है। पुराणो के पशुपक्षी भी मनुष्य की-सी बोली बोलते है और लौकिक न्याय एव दार्शनिक सिद्धात तक के उपदेश देने लगते है, परन्तु साथ ही हर प्राणी के अपने स्वभाव की भी झांकी उनमे स्थान-स्थान पर पाई जाती है।

स्वाभाविकता एव कल्पना का यह सुन्दर सम्मिश्रण पौराणिक साहित्य की एक खास विशेषता है।

रामायण मे हनुमान को बडा बुद्धिमान तथा नीतिकुशल चित्रित किया गया है ।। बडे बुद्धिमान तथा नीतिकुशल के रूप मे वर्णित उन्ही हनुमान ने रावण के निवास मे एक सुन्दर स्त्री को सीता देवी समझ लिया तो असीम आनन्द के कारण बन्दरो की तरह उछल-कूद मचाने लगे ! आखिर थे भी वे बन्दर ही । रामायण में यह एक ऐसा प्रसग है कि जिसका आनन्द रामायण के सभी सहृदय पाठक लेते नही थकते ।

खाडवप्रस्थ के खडहरो पर पाडवो ने नये-नये नगर तथा गाव बसाए और अपने राज्य की नीव डाली । परन्तु पाडवों के समय तक पुरु वश की पुरानी राजधानी खाडवप्रस्थ भयानक वन में परिवर्तित हो चुकी थी । हिस्र जन्तुओ तथा पक्षियो ने उसे अपना निवास-स्थान बना लिया था । कितने ही दुष्ट एव डाकू उस वन को अपना अड्डा बनाए हुए थे और निर्दोष लोगो को पीडा पहुचाते रहते थे । कृष्ण और अर्जुन ने यह हाल देखा तो निश्चय किया कि इस जगल को जला डाले और फिर नए नगर बनवावे ।

इस वन के एक पेड पर जरिता नामक एक सारग चिडिया अपने चार बच्चो के साथ रहती थी । बच्चे अभी इतने नन्हे-से थे कि उनके पर तक नही उगे थे । जरिता और उसके बच्चो को इस तरह छोड-कर उसका नर किसी दूसरी सारग चिडिया के साथ रमता फिरता था । बिचारी जरिता अपने बच्चो के लिए कही से चारा लाकर देती और उनको पालती-पोसती थी । इतने मे एक दिन श्रीकृष्ण एव अर्जुन की आज्ञानुसार जगल मे आग लगा दी गई । आग की प्रचड ज्वाला मे सारा जगल भस्म होने लगा । जगल के जानवर इधर-उधर भागने लगे । सारे वन मे तबाही मच गई ।

इस भीषण आग को देखकर जरिता घबरा उठी और आसू बहाती हुई विलाप करने लगी—"हाय, अब मैं क्या करू ? भयकर आग सारे ससार को जलाती हुई निकट आ रही है । आग की गरमी हर घडी समीप होती जा रही है । अभी थोडी ही देर मे यह हमे भी जला डालेगी ! वह देखो ! एक के बाद एक पेड गिरते जा रहे है । उनके गिरने की आवाज सुनकर जगली जानवर घबराकर इधर-उधर भाग रहे

है। हाय, मेरे नि:सहाय बच्चो! न तुम्हारे पर है, न पैर ही! अभी तुम भी आग की भेंट हो जाओगे! हा दैव! मैं क्या करूं? तुम्हारे निर्दय पिता हम सबको छोड़कर चले गए है। तुम्हे साथ लेकर उडने की भी तो शक्ति मुझमें नही है। अब मै तुम्हे कैसे बचाऊं?"

मां का यह करुण विलाप सुनकर बच्चे बोले—"मा, दु खी न होओ! हमारे ऊपर तुम्हारा जो प्रेम है वह तुम्हारे शोक का कारण न बने। हम यहा मर भी जाए तो भी कुछ बिगड़ नही जाएगा। हम सद्‌गति को प्राप्त होगे। किन्तु तुम भी हमारे सग आग की भेट हो जाओगी तो हमारे वश का अन्त ही हो जाएगा। इसलिए तुम यहां से बचकर कही दूर चली जाओ। यदि हम मर जाए तो भी तुम्हारे और सन्तान हो सकती है। इसलिए मा, तुम सोच-विचार कर वही करो जिससे कुल की भलाई हो।"

बच्चो के यो कहने पर भी उन्हे छोड जाने को मा का जी नही मानता था। उसने कह दिया—"मै भी यही तुम्हारे माथ अग्नि की बलि चढ जाऊंगी।"

●

मन्दपाल नाम के एक दृढव्रती ऋषि आजीवन विशुद्ध ब्रह्मचारी रहकर स्वर्ग सिधारे। जब वे स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे तो द्वारपालो ने रोका और उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि जिन्होने अपने पीछे एक भी सन्तान न छोडी हो उनके लिए स्वर्ग का द्वार नही खुलता। इसपर ऋषि ने सारग की योनि मे जन्म लिया और जरिता नाम की सारग से सहवास किया। जरिता जब चार अण्डे दे चुकी थी, तब ऋषि ने उसे छोड दिया और लपिता नाम की एक और सारंग के साथ रहने लग गए।

समय पाकर जरिता के चारो अण्डे फूटे और उनमें से चार बच्चे निकले। ऋषि के बच्चे होने के कारण उनमे स्वाभाविक विवेक था। यही कारण था कि उन्होने अविचलित होकर अपनी मा को यो धीरज बधाया।

मा ने अपने बच्चो से कहा—"बच्चो! इस पेड के नजदीक एक चूहे का बिल है। मैं तुम्हें उठाकर बिल के द्वार पर छोडती हू। तुम धीरे से बिल के भीतर घुसकर अदर छिप जाना जिससे आग की गरमी

न लगे। मैं बिल का द्वार मिट्टी से बन्द कर दूगी और जब आग बुझ जाएगी तो मिट्टी हटा दूगी और तुम्हें बाहर निकाल लूगी।"

किन्तु बच्चो ने न माना। वे बोले—"बिल के अन्दर जाएगे तो वहां चूहा हमें खा लेगा। चूहे से खाया जाना अपमानजनक है। ऐसी मृत्यु से तो यही अच्छा है कि हम आग मे ही जलकर मरें।"

"अरे, इस बिल में चूहा नही है। थोडी देर हुई मैंने देखा था कि उसे एक चील उठा ले गई।" मा ने बच्चों को समझाते हुए कहा।

बच्चों ने फिर भी नही माना। कहा—"एक चूहे को चील उठा ले गई तो विपद थोडे ही दूर हो गई। कितने ही और चूहे बिल के अन्दर रहते होगे। मा! तुम जल्दी चली जाओ। आग की लपटे नजदीक आ रही है। कुछ ही क्षण मे आग इस पेड को घेर लेगी। इससे पहले तुम अपने प्राण बचा लो। बिल के अन्दर छिपना हमसे नही हो सकेगा। और हमारी खातिर तुम भी क्यो व्यर्थ जान गवाती हो? आखिर हमारा तुम्हारा नाता ही क्या है? हमने तुम्हारी कभी कुछ भलाई भी **की है?** कुछ नही। उलटे हम तो तुम्हे कष्ट ही पहुचाते रहे, सो तुम हमें छोड कर चली जाओ। अभी तुम्हारी जवानी नही बीती है। तुम्हे अभी और सुख भोगना है। यदि हम आग की भेट हो गए तो निश्चय ही हमे स्वर्ग प्राप्त होगा। यदि बच गए तो आग के बुझ जाने पर तुम फिर पास आ सकती हो। इसलिए अब तुम चली जाओ।"

बच्चो के यो आग्रह करने पर मा उडकर चली गई।

थोडी देर मे बच्चो वाले पेड पर भी आग लग गई; पर बच्चे तनिक भी विचलित न हुए। बेखटके विपत्ति की प्रतीक्षा करते आपस म बातचीत करते रहे।

जेठे ने कहा—"समझदार व्यक्ति आनेवाली विपत्ति को पहले ही से ताड लेता है और इस कारण विपत्ति पर घबराता नही।"

छोटे बच्चो ने कहा—"तुम बडे साहसी और बुद्धिमान हो। तुम्हारे जैसे धीर विरले ही मिलते है।"

फिर सब बच्चे प्रसन्न मुख से अग्नि की स्तुति करने लगे, मानो वेदों का अध्ययन किये हुये ब्राह्मण ब्रह्मचारी हों—"हे अग्निदेवता,

हमारी मा चली गई है। पिता को तो हम जानते ही नही । जबसे हम अण्डा तोड़ कर बाहर निकले थे तभी से पिताजी के दर्शन नही हुए । धुएं की ध्वजा फहरानेवाले आदिदेव ! अभी तो हमारे पर भी नही उगे है। हम अनाथ बच्चो के तुम्ही रक्षक हो ! तुम्हारी ही हम शरण लेते है। हमारा कोई नही है। हमारी रक्षा करो।"

और आश्चर्य की बात हुई कि पेड पर जो आग लगी तो उसने उन बच्चो को छुआ तक नहीं। सारा वन-प्रदेश जलकर राख का ढेर बन गया। पर बच्चो का कुछ न बिगडा। उनके प्राण बच गए।

जब आग बुझ गई तो जरिता बडे उद्विग्न-भाव से पेड पर भागी आई। वहा क्या देखती है कि बच्चे कुशलपूर्वक आपस मे बातें कर रहे हैं। उसके आश्चर्य और आनन्द का पार न रहा। एक-एक बच्चे को गले लगाया और बार-बार उनको चूमकर प्यार करती रही।

उधर सारग पछी व्यथित हृदय से अपनी नई प्रेमिका लपिता के पास बैठा चीख-चीखकर कह रहा था--"मेरे बच्चे अग्नि की भेंट हुए होगे! हाय, मेरे बच्चे जल गए होगे।"

इसपर लपिता आग-बबूला हो उठी। बोली--"अच्छा, यह बात है! मै तो पहले से ही जानती थी कि मेरी बनिस्बत मेरी सौत की और उसके बच्चो की चिता आपको अधिक है। तुम उसके पास जाना चाहते हो। पर आप ही ने तो कहा था कि जरिता के बच्चो को आग नही जला सकती। आपने तो बताया था कि अग्नि-देवता ने आपको ऐसा वरदान दिया है। तो फिर अब चीखते-चिल्लाते क्यो हो? साफ-साफ क्यो नही बता देते कि मुझे तुमसे घृणा हो गई है? यदि जरिता के पास जाने की इच्छा है तो झूठ-मूठ बच्चो का रोना क्यो रो रहे हो? सच्ची बात बता दो और खुशी से चले जाओ। अविश्वसनीय पति के धोखे मे आई हुई कितनी ही अबलाओ की भाति मै भी दुखिया जगल मे फिरती रहती! जाओ, शौक से चले जाओ।"

"तुम्हारा विचार ठीक है।" सारग-रूपी मन्दपाल मुनि ने कहा। "सन्तान ही की इच्छा से मैने पछी का जन्म लिया है। मुझे सचमुच

अपने बच्चो की चिन्ता सता रही है। मै बस वहा जाकर उनको देखकर जल्दी ही लौट आऊंगा।"

अपनी नई पत्नी को यो समझा कर सारग-रूपी मन्दपाल अपनी पहली पत्नी जरिता के पास उड गए।

जरिता ने अपने पति की तरफ आख तक उठाकर नही देखा। अपने बच्चो के बच जाने की खुशी मे वह फूली न समा रही थी। कुछ देर बाद पति से बडी उदासीनता के साथ पूछा—"कैसे आना हुआ ?"

मन्दपाल ने और नजदीक आकर स्नेह से पूछा—"बच्चे कुशल तो है ? इनमे बडा कौन है ?"

जरिता ने कहा—"कोई बडा हो या कोई छोटा, आपको इससे मतलब ? मुझे नि सहाय छोडकर जिसके पीछे गए थे उसीके पास चले जाओ और मौज उडाओ।"

मन्दपाल ने कहा—"मैने अक्सर देखा है, बच्चो की मा होने पर कोई भी स्त्री अपने पति की परवाह नही करती। यही कारण है कि निर्दोष वसिष्ठ का भी उनकी पत्नी अरुन्धती ने बडा अनादर किया था।"

: १६ :

जरासंध

इन्द्रप्रस्थ मे प्रतापी पाण्डव न्यायपूर्वक प्रजा-पालन कर रहे थे। युधिष्ठिर के भाइयो तथा साथियो की इच्छा हुई कि अब राजसूय-यज्ञ करके सम्राट्-पद प्राप्त किया जाए। इससे प्रतीत होता है, साम्राज्य की लालसा उन दिनो भी काफी थी।

इस बारे मे सलाह करने के लिए युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सदेसा भेजा। जब श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि युधिष्ठिर उनसे मिलना चाहते है तो तत्काल ही वे द्वारिका से चल पडे और इन्द्रप्रस्थ पहुचे।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—"मित्रो का कहना है कि मै राजसूय-यज्ञ करके सम्राट्-पद प्राप्त करू। परन्तु राजसूय-यज्ञ तो वही कर सकता है जो सारे संसार के नरेशो का पूज्य हो, और उनके द्वारा सम्मानित हो। आप ही इस विषय मे मुझे सही सलाह दे सकते है; क्योकि आप ऐसे व्यक्ति नही है जो मुझपर अपने स्नेह के कारण मेरी कमियों पर ध्यान न दे और गुणो ही को बढा-चढा कर बताये। न ऐसे ही लोगो मे से है जो स्वार्थ साधने की इच्छा से, और इस विचार से कि सुनने वाले को प्रिय लगनेवाली ही सलाह दी जाय चाहे वह सच्चाई के विरुद्ध हो। मुझे विश्वास है कि आप ऐसा नही करेंगे।"

युधिष्टिर की बात शाति के साथ सुनकर श्रीकृष्ण बोले—"मगध देश के राजा जरासन्ध ने सब राजाओ को जीत कर उन्हे अपने अधीन कर रखा है। क्षत्रिय राजाओ पर जरासध की धाक जमी हुई है। सभी उसका लोहा मान चुके है और उसके नाम से डरते है, यहा तक कि शिशुपाल जैसे शक्ति-सम्पन्न राजा भी उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके है और उसकी छत्रच्छाया मे रहना पसन्द करते है। अत जरासध के रहते हुए और कौन सम्राट्-पद प्राप्त कर सकता है? जब महाराजा उग्रसेन के नासमझ लडके कस ने जरासध की बेटी से व्याह कर लिया था और उसका साथी बन चुका था तब मैने और मेरे बन्धुओ ने जरासध के विरुद्ध युद्ध किया था। तीन बरस तक हम उसकी सेनाओ के साथ लगातार लडते रहे पर आखिर हार गए। जरासध के भय से हमे मथुरा छोडकर दूर पश्चिम मे द्वारिका जाकर शहर और दुर्ग बनाकर रहना पडा था। आपके साम्राज्याधीश होने मे दुर्योधन और कर्ण को आपत्ति न भी हो, फिर भी जरासन्ध से इसकी आशा रखना बेकार है। बगैर युद्ध के जरासन्ध इस बात को मान ही नही सकता। जरासन्घ ने आज तक पराजय का नाम तक नही जाना। ऐसे अजेय और पराक्रमी राजा जरासन्ध के जीतेजी आप राजसूय-यज्ञ कर नही सकेंगे। किसी-न-किसी उपाय से पहले उसका वध करना होगा, उसने जो राजे-महाराजे बन्दीगृह मे डाल रक्खे है उनको छुडाना होगा। जब यह हो जायगा तभी राजसूय-यज्ञ करना आपके लिए साध्य होगा।"

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर शान्ति-प्रिय राजा युधिष्ठिर बोले—"आपका कहना बिलकुल सही है। मेरे जैसे और कितने ही राजा है जो अपने-अपने राज्य में बड़े प्रतापी माने जाते है। जो पद प्राप्त नहीं हो सकता उसकी इच्छा करना बेकार है। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह उचित नही कि सम्राट् के सम्मानित पद की आकांक्षा रक्खे। परमात्मा की बनाई हुई यह पृथ्वी काफी विशाल है, धन-धान्य की अटूट खान है। इस विशाल संसार में कितने ही राजाओ के लिए जगह है। कितने ही नरेश अपने-अपने राज्य का शासन करते हुए इसमें सन्तुष्ट रह सकते है। आकाक्षा वह आग है जो कभी बुझती नहीं। इसलिए मेरी भलाई इसीमे दीखती है कि साम्राज्याधीश बनने का विचार छोड दू और जो-कुछ ईश्वर ने दिया है उसीको लेकर सन्तुष्ट रहू। भीमसेन आदि बन्धु तो चाहते हैं कि मै सम्राट् बन जाऊं; परन्तु जब पराक्रमी जरासन्ध से स्वयं आप इतने डरे हुए है तो फिर हम चीज ही क्या है ?"

धर्मराज युधिष्ठिर की यह विनयशीलता भीमसेन को अच्छी न लगी। उसने कहा—"प्रयत्नशीलता राजा लोगो का खास गुण मानी जाती है। जो अपनी शक्ति को आप ही नही जानते उनके पौरुष को धिक्कार है। हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना मुझे जरा भी अच्छा नही लगता। जो सुस्ती को झाड दे और राजनैतिक चालो को कुशलता से काम में लाये वह अपने से अधिक ताकतवर राजा को भी हरा सकता है। युक्ति के साथ प्रयत्न करते रहने से जीत अवश्य प्राप्त होगी। मेरा शारीरिक बल, श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता और अर्जुन का शौर्य एक साथ मिल जाने पर कौन-सा ऐसा काम है जो हम नही कर सकते ? यदि हम तीनो एक साथ चल पडे तो जरासन्ध की शक्ति को चूर करके लौटेंगे। आप इस बात की शंका न करे।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—"इसमे शक नही कि अत्याचारी जरासन्ध को मारना ही ठीक होगा। उसने बिना किसी अपराध के अनेक राजाओ को जेलखाने मे डाल रक्खा है। उसका यह भी इरादा मालूम होता है कि जब पूरे एक सौ राजा पकडे जा चुकेंगे तो बलि-पशुओं के स्थान पर उन राजाओं का वध करके यज्ञ का अनुष्ठान

करेगा। ऐसे अत्याचारी को मारना ही न्यायोचित हैं। यदि भीम और अर्जुन सहमत हो तो हम तीनो एक साथ जाकर उस अन्यायी का वध करके जेल मे पड़े हुए निर्दोष राजाओ को छुड़ा सकेगे। यह बात मुझे पसन्द है।"

परन्तु युधिष्ठिर को यह बात ठीक न लगी। उन्होंने कहा—"मुझे भय है कि साम्राज्याधीश बनने के फेर मे पड़कर अपनी आंखो के तारे जैसे भीमसेन और अर्जुन को कही गंवा न बैठूं ! जिस कार्य मे उनके प्राणों पर बन आने की संभावना है उसके लिए उन्हे भेजने को मेरा मन नही मानता। मै तो कहूंगा कि इस विचार को छोड देना ही अच्छा होगा।"

यह सुनकर वीर अर्जुन बोल उठा—"यदि हम यशस्वी भरतवंश की सतान होकर भी कोई साहस का काम न करे और साधारण लोगो की भाति जीवन व्यतीत करके संसार से कूच कर जाएं, तो धिक्कार है हमे और हमारे जीवन को। हजार गुणो से विभूषित होने पर भी जो क्षत्रिय प्रयत्नशील नही होता, पराक्रमी नही होता और किसी काम को करने से हिचकिचाता रहता है, कीर्त्ति उससे मुह मोड़कर चली जाती है। जीत उसीकी होती है जो उत्साही हो। जो काम करने योग्य है, उसमे जी-जान से जो लग जाता है उसीकी जय होती है। सब साधनो के होने पर भी जिसमे जोश न हो, हौसला न हो, संभव है उसे हार खानी पडे। अक्सर वे ही लोग हार खाते है जो अपनी शक्ति को आप नही जानते और जिनमे उत्साह और प्रयत्नशीलता का अभाव होता है। जिस काम को करने की हममे सामर्थ्य है, भाई युधिष्ठिर क्यो समझते है कि उसे हम न कर सकेगे ?

"अभी हम उस अवस्था मे थोडे ही पहुचे हे जो गेरुवा वस्त्र पहन-कर जगल मे चले जायं और नि.स्पृहता का व्रत रक्खे ? अभी तो अपने कुल और जाति की परपरा के अनुरूप हमारे लिए यही उचित होगा कि हम क्षत्रियोचित साहस से काम ले।"

श्रीकृष्ण अर्जुन की इन जोशीली बातों से मुग्ध हो गये। बोले—"धन्य हो अर्जुन ! भरतवंश के वीर और कुती के लाल अर्जुन से

मुझे यही आशा थी। मृत्यु से डरना नासमझी की बात है। एक-न-एक दिन सबको मरना ही है। लडाई न करने से आज तक कोई भी मौत से नही बच सका है। नीतिशास्त्रो का कहना है कि ठीक-ठीक युक्ति से काम लेकर दूसरो को बस में कर लेना और विजय प्राप्त करना ही क्षत्रियोचित धर्म है।"

अन्त में सब इसी निश्चय पर पहुचे कि जरासन्ध का वध करना आवश्यक ही नही, बल्कि कर्त्तव्य है। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भी इस बात को मान लिया और भाइयो को इसके लिए अनुमति दे दी।

उपरोक्त सवाद से पता चलता है कि पुराने समय में भी आजकल के समान ही राजनेता लोग तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कसकर किसी प्रश्न के बारे मे निर्णय किया करते थे।

: २० :

जरासंध-वध

मगध देश का राजा बृहद्रथ अपनी शूरता के लिए बडा विख्यात था। उसके अधीन तीन अक्षौहिणी सेना थी। उचित समय पर यशस्वी राजा बृहद्रथ ने काशिराज की जुडवा बेटियो से ब्याह किया। राजा बृहद्रथ ने अपनी पत्नियो को वचन दिया था कि वह दोनो मे से किसी के साथ कोई पक्षपात नही करेगा।

विवाह हुए बहुत दिन बीत जाने पर भी राजा बृहद्रथ के कोई सतान नही हुई। वृद्धावस्था आ जाने और संतान की ओर से निराश हो जाने पर राजा बृहद्रथ अपने मत्रियो के हाथ में राज्य का कारभार सौप अपनी दोनो पत्नियो को साथ लेकर वन मे तपस्या करने चले गए।

एक दिन वन में महर्षि गौतम के वशज चण्डकौशिक मुनि से उनकी भेट हुई। राजा बृहद्रथ ने मुनिवर का विधिवत आदर-सत्कार किया और उनको अपनी व्यथा सुनाई। मुनि चण्डकौशिक को राजा के हाल पर दया आई। उन्होने राजा से पूछा—"आप मुझसे क्या चाहते है?"

बृहद्रथ ने करुणस्वर मे कहा—"मुनिवर ! मैं बड़ा ही अभागा हूं। पुत्र-भाग से वंचित हूं। राज्य छोडकर वन मे तपस्या करने आया हूं। इस हालत में मैं आपसे और क्या मांग सकता हूं ?"

राजा की बातो से चण्डकौशिक का मन पिघल गया। वे उसी क्षण एक आम के पेड़ के नीचे आसन जमाकर बैठ गये और ध्यान मे लीन हो गए। इतने में एक पका हुआ आम उनकी गोद में गिरा। महर्षि ने उसे लेकर राजा को देते हुए कहा—"राजन् ! यह लो, इससे तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा।"

राजा ने उस फल के दो टुकडे किये और दोनो पत्नियो को एक-एक टुकड़ा खिला दिया। फल खाने से दोनो पत्नियो के गर्भ रह गया। राजा बृहद्रथ बड़े प्रमुदित हुए। राज-महिषिया तो आनन्द के मारे फूली न समाईं। पर जब बच्चे पैदा हुए तो रानियो पर वज्र गिरा, क्योकि वे बच्चे पूरे नही थे, बल्कि आधे थे। एक-एक बच्चे के केवल एक हाथ, एक पैर, एक आख, एक कान तथा मुख का आधा हिस्सा ही था। उनको देखने पर मन मे एक साथ भय और घृणा होती थी; परन्तु दोनो टुकडो मे जान थी और वे हरकत भी करते थे।

इन मनहूस मास के पिण्डो को देखकर रानिया बड़ी ही व्याकुल हो उठीं और दाइयो को आज्ञा दी कि इन टुकडो को कपडों में लपेट-कर कही दूर फेंक आय। आज्ञा पाकर दाइया उन टुकडो को उठाकर कूडे-करकट के ढेर पर फेंक आईं।

इतने में नर-मास खानेवाली एक राक्षसी मास की तलाश में फिरती हुई उसी जगह आ पहुची जहा बच्चो के वे टुकड़े पडे थे। टुकडे देखे तो राक्षसी ने उनको खाने के लिए एक साथ हाथ में उठाया। उसका उठाना था कि दोनो टुकडे आपस मे जुड गए और एक सुन्दर बच्चा बन गए। राक्षसी ने जब यह चमत्कार देखा तो सोचा कि इस बच्चे को मारना ठीक न होगा। यह सोचकर वह एक सुन्दर युवती के रूप में राजा बृहद्रथ के पास गई और बच्चा उसे दे दिया। कहा—यह आप ही का बच्चा है।

बच्चा पाकर बृहद्रथ के आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने रनवास में जाकर रानियों के हाथ में बच्चा दे दिया और राज्य भर में पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य में बड़ा आनन्द मनाया।

जरासन्ध के जन्म की यह कथा है। मुनि चण्डकौशिक के वरदान के कारण जरासन्ध शरीर का इतना हट्टा-कट्टा और बली हुआ कि कोई उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। फिर भी एक कमी यह थी कि चूंकि उसका शरीर दो अलग-अलग टुकडों के जुडने से एक हुआ था, इसलिए दो हिस्सों में बंट भी सकता था।

इस मनोरजक कथा में यह सत्य छिपा हुआ है कि दो जुदे-जुदे भाग अगर आपस में जुड जाए तो भी कमजोर रहते हैं। उनके फट जाने की आशंका बनी रहती है।

जब जरासन्ध के साथ युद्ध करने और उसके वध करने का निश्चय हो गया तब श्रीकृष्ण बोले—"हंस, हिडिबक, कंस तथा दूसरे सहायकों के खत्म हो जाने के कारण अब जरासन्ध अकेला पड गया है। उसे मारने का यही अच्छा मौका है। पर सेना लेकर उसपर हमला करना बेकार है। उसे तो द्वन्द्व-युद्ध में—कुश्ती लडकर—ही मारना ठीक होगा।"

उन दिनो रिवाज यह था कि किसी क्षत्रिय को यदि कोई द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारता तो उसे उसकी चुनौती स्वीकार करनी पड़ती थी—फिर वह चाहे शस्त्र-युद्ध हो या कुश्ती। इसी रिवाज का लाभ उठाकर श्रीकृष्ण और पाण्डवो ने अपनी योजना बनाई।

श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने वल्कल पहन लिये, हाथ में कुशा ले ली और व्रती लोगों का-सा भेष धारण करके मगध देश के लिए रवाना हो गए। राह में सुन्दर नगरो एव गावों को पार करते हुए वे तीनो जरासन्ध की राजधानी मे पहुचे।

जरासन्ध को इधर कई अपशकुन हुए थे। इससे उसका मन बडा परेशान रहता था। पुरोहितो ने उसकी शान्ति कराई और उसके लिए उसने भी उपवास आदि व्रत रक्खा था। ऐसे समय श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन राज-भवन में दाखिल हुए। वे नि.शस्त्र थे और वल्कल पहने हुए

थे। जरासंध ने कुलीन अतिथि समझकर उनका बडे आदर के साथ स्वागत किया।

जरासंध के स्वागत का भीम और अर्जुन ने कोई जवाब नही दिया। वे दोनो मौन रहे। इसपर श्रीकृष्ण बोले--"मेरे दोनो साथियो ने मौन-व्रत लिया हुआ है, इस कारण अभी नही बोलेंगे। आधी रात के बाद व्रत खुलने पर बातचीत करेंगे।"

जरासंध ने इस बात पर विश्वास कर लिया और तीनो मेहमानो को यज्ञ-शाला मे ठहराकर महल मे चला गया।

कोई ब्राह्मण अतिथि जरासंध के यहा आता तो उनकी इच्छा तथा सुविधा के अनुसार बाते करना व उनका सत्कार करना जरासन्ध का नियम था। इसके अनुसार आधी रात के बाद जरासन्ध अतिथियो से मिलने गया, लेकिन अतिथियो के रग-ढंग देखकर मगध-नरेश के मन मे कुछ शका हुई। सोचा कि दाल में कुछ काला अवश्य है। जरा गौर से देखने पर जरासन्ध ने ब्राह्मण अतिथियो के हाथो पर ऐसा चिन्ह देखा जो धनुष की डोरी द्वारा रगड खाने से पड जाता है। और चिन्हो से भी उसे पता चल गया कि ये ब्राह्मण नही है।

राजा जरासन्ध ने कडक कर पूछा--"सच-सच बताओ, तुम लोग कौन हो? ब्राह्मण तो नही दिखाई देते।"

इसपर तीनो ने सही हाल बता दिया और कहा--"हम तुम्हारे शत्रु हैं। तुमसे अभी द्वन्द्व-युद्ध करना चाहते है। हम तीनों मे से किसी एक से, जिससे तुम्हारी इच्छा हो, लड सकते हो। हम सभी इसके लिए तैयार है।"

जरासन्ध को एकाएक यह सुनकर कुछ आश्चर्य तो हुआ, पर अपने भाव को दबाकर बोला--""तो यह बात है। खैर, कोई हर्ज भी नही है। पर, कृष्ण, तुम तो क्षत्रिय नही हो, ग्वाले हो और यह अर्जुन अभी बालक है। इसलिए तुम दोनो से तो मै लड़ूंगा नही। हा, भीमसेन के बल की बड़ी प्रशंसा सुनी है, सो उसीके साथ लडना चाहूंगा।" यह कहकर जरासन्ध लडने को प्रस्तुत हो गया।

भीमसेन को निःशस्त्र देखकर वीर जरासन्ध ने भी शस्त्र फेंक दिए और मल्ल-युद्ध के लिए उसे ललकारा।

भीमसेन और जरासन्ध में कुश्ती शुरू हो गई। दोनों वीर एक दूसरे को पकडते, मारते और उठाते हुए लड़ने लगे। इस प्रकार पल-भर भी विश्राम किए बगैर वे तेरह दिन और तेरह रात लगातार लड़ते रहे। चौदहवे दिन जरासन्ध थका और जरा देर को रुका। पर ठीक मौका देखकर श्रीकृष्ण ने भीम को इशारे से समझाया और भीमसेन ने फौरन जरासन्ध को उठाकर ऐसे जोर से चारो ओर घुमाया, जैसे चतुर लठैत लाठी को घुमाता है। फिर उसे जमीन पर जोर से पटक दिया और फुरती से उसके दोनों पैर पकड़कर उसके शरीर को चीर कर फेक दिया। जरासन्ध को मरा समझकर विजय के गर्व में भीमसेन सिह की भाति गरज उठा; किन्तु पलक मारते जरासध के चिरे हुए शरीर के टुकडे आपस में फिर जुड गए और जरासन्ध उठकर क्रोध करके भीमसेन से भिड गया।

यह देखकर भीमसेन निराश-सा होकर सोच मे पड़ गया कि ऐसे शत्रु का वध कैसे किया जाय? श्रीकृष्ण ने भीम को पस्त होता देख एक घास का तिनका उठाया और बीच में से चीरकर बाये हाथ से दाहिने हाथ की ओर और दाहिने हाथ से बाये हाथ की ओर फेक दिया। भीमसेन ने इशारे को समझ लिया और मौका पाते ही उसने दुबारा जरासन्ध का शरीर चीर डाला और दोनों हिस्सों को दाया-बांया करके फेंक दिया।

अबकी बार ये टुकडे जुड नही सके और जहां-के-तहां निर्जीव पडे रह गए। इस प्रकार अजेय जरासन्ध का अन्त हो गया।

श्रीकृष्ण और दोनो पाण्डवो ने उन सब राजाओं को छुड़ा दिया जिनको जरासन्ध ने बन्दीगृह मे डाल रक्खा था और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगध देश की राजगद्दी पर बिठाकर इन्द्रप्रस्थ लौट आए।

इसके बाद पाण्डवो ने विजय-यात्रा की और सारे देश को महाराजा युधिष्ठिर की अधीनता में ले आये।

महाराजा युधिष्ठिर ने बडी धूमधाम से राजसूय-यज्ञ किया और सम्राट् की उपाधि धारण की। इस अवसर पर जो सभा हुई थी उसमे

चेदिराज शिशुपाल का सभा में किये गए अशिष्ट व्यवहार के कारण श्रीकृष्ण ने वध कर दिया। यह प्रसंग अगले अध्याय में दिया गया है।

: २१ :

अग्रपूजा

किसी सभा की कार्रवाई पसंद न आने पर अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए सभा से कुछ लोगो के इकट्ठे उठकर चले जाने की प्रथा प्रजा-सत्ता-वाद की कोई नई उपज नही है; बल्कि वह मुद्दत से चली आ रही है। 'वाक आउट' की यह प्रथा हमारे देश मे पुराने जमाने से प्रचलित है, इस बात का सबूत महाभारत में मिलता है।

जिस समय पाण्डवो ने राजसूय-यज्ञ किया था, भारतवर्ष मे छोटे-बडे राजाओ की संख्या काफी थी। सारे भारत के राजा तथा प्रजा के लोग एक ही धर्म के अनुयायी थे, एक जैसी ही उन सबकी सस्कृति थी। कोई राजा किसी दूसरे राजा के राज्य या सत्ता पर प्राय. आक्रमण नही करता था। हा, कभी-कभी कोई शक्तिशाली एवं साहसी राजा सारे देश के नरेशों के पास अपना प्रतिनिधि भेज देता और राजाधिराज बनने (सम्राट् की उपाधि धारण करने) के लिए उनकी स्वीकृति प्राप्त करता। यह 'दिग्विजय' अक्सर बगैर किसी लड़ाई-झगड़े के पूर्ण हो जाया करती। जिस राजा को सम्राट् बनना होता वह राजसूय नाम का महायज्ञ करता। इस यज्ञ मे सभी राजा सम्मिलित होते और सम्राट् की सत्ता मानने की रस्म अदा करके अपने-अपने राज्य को लौट जाते। इसी प्रथा के अनुसार, जरासन्ध के वध के बाद पाण्डवो ने राजसूय-यज्ञ किया। इसमे भारत भर के राजा आये हुए थे।.

जब अभ्यागत नरेशो का आदर-सत्कार करने की बारी आई तो प्रश्न उठा कि अग्र-पूजा किसकी हो? सम्राट् युधिष्ठिर ने इस बारे मे पितामह भीष्म से सलाह ली। वृद्ध भीष्म ने कहा कि द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की पूजा पहले की जाय।

युधिष्ठिर को भी यह बात पसन्द आई। उन्होंने छोटे भाई सहदेव को आज्ञा दी कि भगवान् कृष्ण का पूजन करे। सहदेव ने विधिवत श्रीकृष्ण की पूजा की और गाय, अर्घ्य, मधुपर्क आदि श्रीकृष्ण को भेंट किये।

वासुदेव का इस प्रकार गौरवान्वित होना चेदि-नरेश शिशुपाल को अच्छा न लगा। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और ठहाका मारकर हंस पड़ा। सारी सभा की दृष्टि जब शिशुपाल की ओर गई तो वह ऊंचे स्वर मे व्यग्यभाव से बोलने लगा—

"यह अन्याय की बात है कि एक मामूली-से व्यक्ति को इस प्रकार गौरवान्वित किया जाता है। किंतु इसमें आश्चर्य की भी बात क्या है ? यहा के लोगो की बाते ही उल्टी होती है। जिसने सलाह मागी उसका जन्म भी तो उलटी रीति से ही हुआ था। और जिसने सलाह दी, वह भी नीचे की ओर जानेवाली का ही बेटा है !

"फिर जिसने आज्ञा मानकर पूजा की, उसके पिता का भी तो पता नही है ! ये हुए सत्कार करने वाले ! और जिसने इनकी पूजा स्वीकार की, उस, गाय चराने वालो के घर मे पले, अनाडी की कहानी किससे छिपी है ? इस उलटी कार्रवाई को जो सभासद चुपचाप देख रहे है, मै तो कहूगा, वे गूगे है। उनका इस सभा मे बैठे रहना अपनी सज्जनता पर बट्टा लगाना है।"

शिशुपाल की इस तीखी वक्तृता से कुछ सभासद प्रभावित हुए और शिशुपाल के साथ-साथ वे भी हस पडे। इससे उसका उत्साह बढ गया और वह युधिष्ठिर को लक्ष्य करके बोलने लगा—

"साम्राज्याधीश की आकांक्षा रखने वाले युधिष्ठिर ! सभा में इतने सारे बडे-बड़े राजाओ के होते हुए तुमने इस ग्वाले की अग्रपूजा कैसे की ? किसी को उचित गौरव न देना जितना बडा कसूर है, किसी को उसकी योग्यता से अधिक गौरव देना भी उतना ही भारी अपराध है ! नीतिशास्त्र मे निपुण होकर भी इतनी छोटी-सी बात तुम्हारी समझ मे नही आई ?"

युधिष्ठिर को चुप देखकर शिशुपाल का जोश और भी बढ गया। वह बोलता गया—

"इस सभा में कितने ही बड़े-बड़े व्यक्ति उपस्थित हैं। कितने ही प्रतापी राजा विराजमान हैं। इन सबका अनादर करके एक गंवार ग्वाले को, जिसे राज-कुल की हवा तक नही लगी है, राजोचित गौरव देते हुए तुम्हे शरम नही आई ? कृष्ण कहा का राजा है ? कृष्ण के राजा न होने की बात मैं इस आधार पर कर रहा हूं कि इसके पिता वसुदेव, राजा उग्रसेन के मत्री है; स्वयं राजा नही है। कही मत्री का बेटा भी राजाओ में शामिल किया जाता है ? यदि तुमको देवकी के बेटे का पक्षपात करना था तो उसके लिए और कोई अवसर ढूढ लेते। तुमने तो ऐसा करके महाराजा पाण्डु के नाम को बट्टा लगा दिया ! राजसभा-सचालन का ढग तक तुम नही जानते। तुम तो अभी बच्चे हो ! पर इस बुड्ढे भीष्म ने तुम लोगो को कुमत्रणा देकर तुमसे भारी कसूर करवा दिया। और फिर कम-से-कम उमर का भी तो खयाल करते ! तुम्हे मालूम है कि इसके पिता वसुदेव भी तो यही, इसी सभा मे मौजूद है। पिता के होते हुए बेटे को इस बात का अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है कि वह पूजा ग्रहण करे ? तुम्हारे आचार्य द्रोण भी तो यहा सभा में विराजमान है ! तुमने कही यह तो नही समझ लिया कि कृष्ण यज्ञ-क्रिया मे निपुण है ? तो यह समझो कि भगवान् व्यास भी तो यहा उपस्थित है, जो यज्ञ कराने वाले महात्माओ मे सर्वश्रेष्ठ है ! उनके रहते इस ग्वाले की पूजा तुमने कैसे की ? और यदि तुम यह पूजा अपने ही वंश के पितामह भीष्म की करते, तो भी कोई बात न थी। तुमने वह भी तो नही किया।

"तुम्हारे कुल-गुरु कृपाचार्य भी यहा विराजमान है ! उनका अनादर करके तुमने एक चरवाहे की पूजा क्या समझकर की होगी ! फिर अपने ब्रह्मतेज से सारी सभा को प्रकाशित करनेवाले वीर अश्वत्थामा यहा उपस्थित हैं। सभी शास्त्रो के पण्डित रण-कुशल अश्वत्थामा की परवाह न करके तुमने अग्रपूजा के लिए इस कायर कृष्ण को कैसे चुन लिया ?

"ये राजाधिराज दुर्योधन भी तो यहा विद्यमान है। फिर परशुराम के शिष्य कर्ण, जिन्होने महावीर जरासन्ध से अकेले लडकर विजय पाई थी, यहां विराजमान हैं। इन सब नर वीरो का अनादर करके एक

ग्वाले को इस भारी सभा का अग्रज चुनने का तुम्हे साहस कैसे हुआ ? केवल पक्षपात के कारण ही तुमने इन बातो की ओर ध्यान नहीं दिया और एक ऐसे आदमी की पूजा की जो न तो वयोवृद्ध हैं, न किसी देश का राजा है और न यज्ञ-विधि ही जानता है। अपने इस कार्य से तुमने यहां उपस्थित महापुरुषो एव महाराजाओ का भारी अपमान किया है। क्या हम सबका इस प्रकार अनादर करने के ही लिए तुमने यह सब आयोजन किया है ?"

युधिष्ठिर को यो आड़े हाथो लेने के बाद शिशुपाल सभा मे उपस्थित राजाओ की ओर देखकर बोला—

"उपस्थित राजागण ! हम युधिष्ठिर को राजाधिराज मानने को तैयार हुए ह, पर इसका यह मतलब नही कि हम उनकी कृपादृष्टि के अभिलाषी हैं। यह भी बात नही कि हम उनकी शक्ति से डर कर यहा इकटठे हुए हैं। युधिष्ठिर ने घोषणा की थी कि न्याय-दृष्टि से वह राज करेंगे। हमने इस बात पर विश्वास किया और उन्हे धर्मात्मा समझकर गौरवान्वित किया; परन्तु अब, जब कि उन्होंने हमारे देखते ही हमारा अपमान किया है, वह धर्मात्मा की उपाधि के योग्य कैसे रहे ? जिस दुरात्मा ने कुचक्र रचकर वीर जरासन्ध को मरवा डाला उसी पापी की युधिष्ठिर ने अग्र-पूजा की। इसके बाद भी उन्हें हम धर्मात्मा कैसे कह सकते हैं ? उनमे हमारा विश्वास नही रहा ।"

इसके बाद शिशुपाल श्रीकृष्ण की तरफ देखकर बोला—"कृष्ण, अगर पाण्डव स्वार्थ-प्रेरित होकर नियम के विरुद्ध तुम्हारी अग्रपूजा करने को प्रस्तुत हुए तो तुम्हारी भी बुद्धि पर क्या पत्थर पड गए थे जो तुमने यह अनुचित पूजा स्वीकार कर ली ! देवो के हिस्से का हविष्यान्न कही नीचे गिर जाय तो कुत्ता जैसे चोरी से उसे खा जाता है, वैसे ही तुमने भी यह गौरव स्वीकार कर लिया है। इसके लिए तुम सर्वथा अयोग्य हो। कृष्ण ! तुम भी कैसे अनाडी हो जो इतना भी नही समझते कि यह तुम्हारी इज्जत नही हो रही, बल्कि तुम्हारी हंसी उडाई जा रही है ! शायद तुम्हें यह घमण्ड हो रहा होगा कि तुम्हें बडा गौरव प्राप्त हो गया है; लेकिन मैं तुम्हें बताता हू कि जान-बूझकर

पाण्डव तुम्हें बुद्धू बना रहे है। जैसे अन्धे को सुन्दर वस्तुए दिखाई जाय, या किसी हिजड़े को तरुणी ब्याह दी जाए, वैसे ही केवल तुम्हारा उपहास करने के लिए किसी राज्य के अधीश न होने पर भी तुम्हारा यह राजोचित सत्कार किया जा रहा है। क्या तुम इतना भी नही समझ पाते हो ?"

इस तरह शब्द-बाणो की बौछार कर चुकने के बाद शिशुपाल दूसरे कुछ राजाओ को साथ लेकर सभा से निकल गया।

राजाधिराज युधिष्ठिर नाराज हुए राजाओ के पीछे दौड़े गये और मीठी-मीठी बातों से उन्हें समझाने लगे। महाभारत के इस प्रसंग से पता चलता है कि उन दिनो भी सभा-समाजों मे आजकल के से तौर-तरीके काम मे लाये जाते थे।

युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर भी शिशुपाल न माना। उसका हठ और घमण्ड बढ़ता ही गया। अन्त मे शिशुपाल और श्रीकृष्ण में घोर युद्ध छिड़ गया जिसमे शिशुपाल मारा गया। राजसूय-यज्ञ सपूर्ण हुआ और राजा युधिष्ठिर को राजाधिराज की पदवी प्राप्त हो गई।

: २२ :

शकुनि का प्रवेश

राजसूय-यज्ञ के समाप्त हो जाने पर आगन्तुक राजा एव बड़े लोग युधिष्ठिर से विदा लेकर चलने लगे। जब भगवान् व्यास विदा लेने आये तो धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उनका विधिवत् सत्कार किया। भगवान् व्यास विदा मागते हुए बोले--

"कुन्तीपुत्र ! साम्राज्याधीश का अलभ्य पद तुम्हे प्राप्त हो गया है। सारे कुरुवश को तुमने गौरवान्वित कर दिया है। मुझे अब विदा दो।"

अपने वश के पितामह एव आचार्य व्यास के चरण छूकर युधिष्ठिर ने पूछा--"आचार्य ! मेरा मन शकाओ से भरा हुआ है; आप ही उन्हे दूर कर सकते है। भविष्य-दृष्टा ब्राह्मण कहते है कि अनिष्ट की

सूचना देनेवाले कुछ भयकर उत्पात देखने में आये है। शिशुपाल के वध के साथ वे समाप्त हो जाते है या उनकी शुरूआत होती है ?"

युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर देते हुए व्यासजी बोले—

"वत्स ! तुमको तेरह बरस तक और बडे कष्ट झेलने होंगे। ये जो उत्पात देखने में आ रहे है वे क्षत्रिय-कुल के नाश की ही सूचना दे रहे हैं। शिशुपाल के वध के साथ इन कष्टों का अन्त नही हुआ। अभी तो और भी कितनी ही भारी-भारी दुर्घटनाएं होने को हैं। सैकड़ो राजा लोग मारे जायेगे और इस भारी विपदा के तुम्ही कारण बनोगे। तुम पाचो भाइयों और कौरवो के बीच वैर बढेगा जिसके कारण एक भारी युद्ध छिडेगा। इस युद्ध मे सारे क्षत्रिय कुल का सत्यानाश तक होने की संभावना है। किन्तु तुम इन बातों से उदास या चिन्तित न होना। धीरज धरना; क्योकि यह कालचक्र का फेर है, जिसे कोई टाल नही सकता। अपनी पाचो इन्द्रियों पर काबू रखना और सावधानी के साथ स्थिर रहते हुए राज करना। अच्छा, अब मुझे विदा दो।" यह कहकर व्यास भगवान् विदा हुए।

भगवान् व्यास के चले जाने के बाद सम्राट् युधिष्ठिर के मन मे उदासी छा गई। उन्होंने अपने भाइयो को सारा हाल कह सुनाया और बोले—"भाइयो! व्यासजी की बातो से मुझे जीवन से विराग हो रहा है। व्यासजी कह गए है कि मेरे कारण ही क्षत्रिय राजाओ का नाश होगा। यह जानने पर मेरे जीने से फायदा ही क्या ?"

यह सुनकर अर्जुन बोला—"राजा होकर आपको यह शोभा नही देता कि इस तरह घबरा जाय। हर बात की छान-बीन करके जिस समय जो उचित जान पडे वही करना आपका कर्त्तव्य है।"

युधिष्ठिर ने कहा—"भाइयो! परमात्मा हमारी रक्षा करे! युद्ध की संभावना ही मिटा देने के उद्देश्य से मै यह शपथ लेता हू कि आज से तेरह बरस तक मे अपने भाइयों या किसी और बन्धु को कभी बुरा-भला नही कहूंगा। सदा अपने भाई-बन्धुओं की इच्छा पर ही चलूगा। ऐसा कुछ नही करूंगा जिससे आपस में मनमुटाव होने का डर हो; क्योकि मनमुटाव ही के कारण झगड़े होते हैं।

"क्रोध ही तो लड़ाई-झगड़ो का मूल कारण होता है। इसलिए मन मे क्रोध को एकबारगी निकाल दूगा। दुर्योधन और दूसरे कौरवो की बात कभी न टालूगा। हमेशा उनकी इच्छानुसार काम करूंगा। जैसे व्यासजी ने सावधान किया है, क्रोध को कभी अपने ऊपर हावी न होने दूगा।"

युधिष्ठिर की बाते उनके भाइयो को भी ठीक जंची। वे भी इसी निश्चय पर पहुचे कि झगडे-फसाद का हमे कारण नही बनना चाहिए।

चौपड़ के खेल के लिए जब धृतराष्ट्र ने बुलावा भेजा था तो युधिष्ठिर ने अपनी इसी प्रतिज्ञा के कारण उसे मान लिया था। युधिष्ठिर ने तो यह शपथ इसलिए ली थी कि झगडा होने की संभावना ही दूर हो जाय। पर उनकी वही प्रतिज्ञा आखिर झगड़े का कारण बन गई। बुलावा न मानने से कही झगड़ा न हो जाय, इस भय से युधिष्ठिर चौपड खेले, किन्तु उसी पासे के खेल के कारण आपसी मनमुटाव की आग लग गई जो अन्त मे भारी युद्ध के रुप में परिणत हो गई और जिसने सारे क्षत्रिय-कुल को जलाकर भस्मसात कर डाला।

युधिष्टिर की यह प्रतिज्ञा इस बात का सुप्रसिद्ध उदाहरण है कि मनुष्य के मनसूबे, उसके उपाय तथा प्रयत्न, होनी के आगे किसी काम के नही होते। होनी होकर रहती है और मनुष्य के प्रयत्नो का उलटा ही नतीजा निकलता है।

उधर युधिष्ठिर चिन्तित हो रहे थे कि कही कोई लडाई-झगडा न हो जाय और इधर राजसूय-यज्ञ का ठाट-बाट तथा पाण्डवो की यश-समृद्धि का स्मरण ही दुर्योधन के मन को खाये जा रहा था। वह ईर्ष्या की जलन से बेचैन हो रहा था। युधिष्ठिर के सभा-मण्डप की कुशल कारीगरी ऐसी थी कि दुर्योधन देखकर मुग्ध हो गया। किवाड स्फटिक के बने हुए थे, इसलिए दुर्योधन को उनके न होने का भ्रम हो जाता था। राजसूय-यज्ञ के समय देश-विदेश के राजा महाराजाओ ने मण्डप में वह ऐश्वर्य ला उपस्थित किया, जो दुर्योधन ने कभी देखा न था। दुर्योधन ने यह भी देखा कि कितने ही देशों के राजा पाडवो के परम मित्र बने है। इस सबके स्मरण-मात्र से उसका दुःख और भी असह्य हो उठा। लबी सासे लेकर वह रह जाता। पाडवों के सौभाग्य की याद कर-

करके उसकी जलन बढ़ने लगती। अपने महल के कोने में इसी भांति चिन्तित और उदास वह एक रोज खड़ा था कि उसे यह भी पता न लगा कि उसका मामा शकुनि पास खड़ा है।

"बेटा! यों चिन्तित और उदास क्यो खडे हो? कौन-सा दु:ख तुमको सता रहा है?" शकुनि ने पूछा।

दुर्योधन लम्बी सांस लेते हुए बोला--"मामा, चारो भाइयों समेत युधिष्ठिर देवराज इन्द्र के समान ठाट-बाट से राज कर रहा है। इतने राजाओ के बीच शिशुपाल की हत्या हुई, फिर भी इकट्ठे राजाओं मे किसी की हिम्मत न पडी कि उसका विरोध करे। भय के कारण कापते हुए सब-के-सब बैठे देखते रहे। अपार धन और संपत्ति क्षत्रिय राजाओं ने युधिष्ठिर के चरणो मे सिर झुकाकर भेंट की। यह सब इन आखो मे देखने पर भी कैसे शोक न करू? मेरा तो अब जीना ही व्यर्थ मालूम होता है!"

शकुनि दुर्योधन को सात्वाना देता हुआ बोला--"बेटा दुर्योधन! इस तरह मन छोटा क्यो करते हो। आखिर पाण्डव तुम्हारे भाई ही तो है! उनके सौभाग्य पर तुम्हे जलन न होनी चाहिए। न्यायपूर्वक जो राज्य उनको प्राप्त हुआ, उसीका तो वे उपभोग कर रहे है। उनके भाग्य अच्छे है, इसीसे उनको यह ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। पाण्डवो ने किसी का कुछ बिगाड़ा नही। जिसपर उनका अधिकार था वही उन्हे मिला है। अपनी शक्ति से प्रयत्न करके यदि उन्होने अपना राज्य तथा सत्ता बढा ली है तो तुम जी छोटा क्यो करते हो? और फिर पाण्डवो की शक्ति और सौभाग्य से तुम्हारा बिगडता क्या है? तुम्हे कमी किस बात की है? तुम्हारे भाई-बन्द तुम्हारा कहा मानते हैं। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा कर्ण जैसे महावीर तुम्हारे पक्ष में है। यही नही, बल्कि मैं, भीष्म, कृपाचार्य, जयद्रथ, सोमदत्त हम सब तुम्हारे साथ है। इन साथियो की सहायता से तो तुम सारे संसार पर विजय पा सकते हो। फिर दु:ख क्यो करते हो?"

यह सुन दुर्योधन बोला--"जब ऐसी बात है तो मामाजी, हम इन्द्रप्रस्थ पर चढ़ाई ही क्यो न करदें? क्यों न पाण्डवो कोव हा से मार भगावें?"

"युद्ध की तो बात ही न करो। वह खतरनाक काम है। तुम पांडवों पर विजय पाना चाहते हो तो युद्ध के बजाय चतुराई से काम लो। मैं तुमको ऐसा उपाय बता सकता हू कि जिससे बगैर लडाई के ही युधिष्ठिर पर सहज में विजय पाई जा सके।" शकुनि ने कहा।

दुर्योधन की आखें आशा से चमक उठी। बडी उत्सुकता के साथ पूछा—"मामाजी! क्या आप सच कह रहे है? बगैर लडाई के पाण्डवो को जीता जा सकता है? आप ऐसा उपाय जानते है?"

शकुनि ने कहा—"दुर्योधन, युधिष्ठिर को चौसर के खेल का बडा शौक है। पर उसे खेलना आता नही है। हम उसे खेलने के लिए न्योता दे तो क्षत्रियोचित धर्म जानकर युधिष्ठिर अवश्य मान लेगा। तुम तो जानते ही हो कि मै मजा हुआ खिलाड़ी हू। तुम्हारी ओर से मै खेलूगा और युधिष्ठिर को हराकर उसका सारा राज्य और ऐश्वर्य बिना युद्ध के आसानी से छीनकर तुम्हारे हवाले कर दूगा।"

: २४ :

खेलने के लिए बुलावा

दुर्योधन और शकुनि धृतराष्ट्र के पास गये। शकुनि ने बात छेड़ी—

"राजन्! देखिये तो आपका बेटा दुर्योधन शोक और चिन्ता के कारण पीला-सा पड गया है? उसके शरीर का सारा खून ही सूख गया मालूम होता है। क्या आपको अपने बेटे की चिन्ता नही है? ऐसी क्या बात कि उसके इस दु:ख का कारण तक आप नही पूछते?"

अन्धे और बूढे धृतराष्ट्र को अपने बेटे पर अपार स्नेह था। शकुनि की बातो से वे सचमुच बड़े चिन्तित हो गये। अपने बेटे को उन्होने छाती से लगा लिया और बोले—"बेटा! मुझे तो कुछ सूझता ही नही कि तुम्हे किस बात का दु:ख हो सकता है। तुम्हारे पास ऐश्वर्य की कमी नहीं। सारा संसार तुम्हारी आज्ञा पर चल रहा है। सुख ऐसे भोगने को मिले हैं जो देवताओ को भी शायद ही नसीब होते हो। फिर तुम्हें

चिन्ता काहे की ? कृपाचार्य, बलराम (हलधर) और द्रोणाचार्य से वेद-वेदांग, अस्त्र-विद्या एवं दूसरे सब शास्त्र पूर्ण रूप से तुम सीखे हुए हो। मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। सारे राज्य के अधीश बने हो। इसपर भी तुम्हे दुःख क्यों हो रहा है ? बोलो।"

"पिताजी, मै अब राजा कहलाने योग्य कहा रहा ? एक साधारण मनुष्य की भाति खाता-पीता, पहनता-ओढ़ता हूं। भला यह भी कोई जीना है !" दुर्योधन इस तरह धृतराष्ट्र के सामने रोना रोने लगा। और उसने वे बातें कह सुनाई जो उसके मन को खाये जा रही थी। इन्द्रप्रस्थ की सुषमा, वहा की समृद्धि आदि का वर्णन करके उसने बताया कि उसके दुख का कारण पाण्डवो का यह उत्कर्ष और सपदा है। धृतराष्ट्र को उपदेश-सा देते हुए वह बोला—"सन्तोष क्षत्रियोचित धर्म नही है। डरने या दया करने से राजाओ का मान-सम्मान जाता रहता है, उनकी प्रतिष्ठा नही रहती। युधिष्ठिर की विशाल व धन-धान्य से भरपूर राज्यश्री को देखने के बाद मुझे ऐसा लगता है मानो हमारी संपत्ति और राज्य तो कुछ है ही नही। मेरा जी अब उससे नही भरता। पिताजी, मुझे ऐसा महसूस होता है कि पाडवो की उन्नति हो गई है और हमारा पतन।"

बेटे पर असीम प्यार के कारण और उसको इस प्रकार आकुल देखकर धृतराष्ट्र से न रहा गया। उन्होंने उसे समझाते हुए बताया कि क्या करना उचित होगा और क्या अनुचित। वे बोले—

"बेटा, तुम मेरे बडे बेटे हो और तुम्हारी भलाई के लिए कहता हू कि पाडवो से वैर न करो। वैर दुख और मृत्यु ही का कारण हो सकता है। सरल हृदय और निर्दोष युधिष्ठिर से शत्रुता क्यो कर रहे हो ? उसकी शक्ति हमारी ही तो शक्ति है। जो यश एवं ऐश्वर्य उसने प्राप्त किये है उनपर हमारा भी तो अधिकार है। हमारे साथी उसके भी साथी है। फिर युधिष्ठिर न तो हमसे जलता है, न हमसे वैर रखता है। तुम्हारा कुल उतना ही ऊंचा है जितना कि उसका और रण-कुशलता एवं साहस में भी तुम उसके समान ही हो। तब फिर अपने ही भाई से क्यों जलते हो ? यह तुम्हें शोभा नही देता।"

पर पुत्र को पिता की यह सीख पसन्द नही आई। वह मानो पिता को राजनीति का पाठ पढा रहा हो इस तरह बोला—"पिताजी, अगर आदमी मे स्वाभाविक विवेक न हुआ तो उसका पढ़ा-लिखा किस काम का ! माना कि आप नीतिशास्त्रो के पारंगत हैं। फिर भी जैसे पाक मे डूबी रहनेवाली कलछी को उसके स्वाद का तनिक भी ज्ञान नही होता, वैसे ही शास्त्रो में डूबे रहने पर भी आपको उनके रहस्य का पता नही है। यदि यह बात न होती तो आप ऐसी बातें क्यों करते ! स्वयं बृहस्पति ने कहा है कि राजनीति और संसार की रीति-नीति एक दूसरे से भिन्न होती है। सन्तोष और सहनशीलता राजाओ का धर्म नही है। संसार की दृष्टि मे न्याय हो या अन्याय, राजा का तो कर्त्तव्य यही है कि वह किसी भी प्रकार शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे और अपनी सत्ता मे वृद्धि करे।"

शकुनि ने दुर्योधन की बातो का समर्थन किया और धृतराष्ट्र को सलाह दी कि चौसर के खेल के लिए पांडवो को बुलाया जाय। उसमे उन्हे हराकर बगैर लड़ाई के ही पाडवो पर विजय पाई जा सकती है। दुर्योधन के दु ख दूर करने का इस समय यही उपाय है।

इन कुमंत्रणाओ का प्रभाव धीरे-धीरे धृतराष्ट्र के मन पर पडने लगा। उसका मन डावाडोल होने लगा। दुर्योधन ताड गया। मौका देखकर बोला—"पिताजी ! हथियार केवल वही नही होता जो घाव कर सके, बल्कि शत्रु को हराने मे जो भी उपाय काम दे सकें, वे चाहे छिपे हो चाहे प्रकट रूप मे, सब उपाय क्षत्रिय के हथियार माने जा सकते है। किसी के कुल या जाति से इस बात का निर्णय नही किया जा सकता कि वह शत्रु है या मित्र। जो भी दु ख पहुंचाये, चाहे वह सगा भाई ही क्यो न हो, उसे शत्रु ही मानना चाहिए। केवल स्थितिपालक रहना, जो-कुछ प्राप्त है, उसीको लेकर सतोष मानना क्षत्रियो के लिए उचित नही। जो राजा शत्रु की बढ़ती देखकर उसे रोकने का प्रयत्न नही करता उसका सर्वनाश निश्चित है। राजाओं का कर्त्तव्य है कि शत्रु की बढ़ती पहले ही से ताड़ लें और उसे रोकने का सब प्रकार से प्रयत्न करें। हमारे भाई-बन्दो की बढ़ती हमारे ही नाश का उसी प्रकार कारण बन

जायगी, जिस प्रकार पेड़ की जड़ पर चींटियों का बनाया हुआ बिल समय पाकर सारे पेड़ का ही नाश कर देता है।"

दुर्योधन का कथन पूरा हुआ तो कुशाग्र-बुद्धि दुरात्मा शकुनि बोला—"महाराज, आप युधिष्ठिर को चौसर के खेल के लिए बुलावा भेज दें, आगे की सारी जिम्मेदारी मुझपर छोड़ दें।"

दुर्योधन ने भी उत्साह के साथ कहा—"बिना प्राणो को जोखिम में डाले और युद्ध किये मामा शकुनि पाडवों की सपत्ति छीनकर मुझे सौपने को तैयार है। आपको तो केवल यही करना है कि युधिष्ठिर को न्योता भर भेज दें।"

दोनो के इस प्रकार आग्रह करने पर भी धृतराष्ट्र ने तुरन्त हा नही की। वे बोले—"मुझे यह उपाय ठीक नही जंच रहा है। मै विदुर से भी तो सलाह कर लू। वह बडा समझदार है। मै हमेशा से उसका कहा मानता आया हू। उससे सलाह कर लेने के बाद ही कुछ तय करना ठीक होगा।"

पर दुर्योधन को विदुर से सलाह लेने की बात पसन्द न आई। वह बोला, "विदुर चाचा तो साधारण नीति का ही उपदेश देंगे। इससे भला कभी काम बन सकता है ? राजा लोग यदि विजय प्राप्त करना चाहे तो उन्हें धर्म को तो ताक तर रखना ही होगा। विदुर और व्यास धर्म की रट लगाते फिरते है। सच पूछा जाय तो वे हमारी ही बढती मे रोडे अटकाने वाले है। फिर आप जानते है कि विदुर चाचा मुझे नही चाहते। वे पाण्डवो को ही स्नेह करते है। फिर उनसे सलाह लेने से लाभ क्या होगा ?"

धृतराष्ट्र बोले—"पाडव शक्ति-सपन्न है। उनसे वैर मोल लेना मुझे ठीक नही जंचता। जुए का खेल वैर-विरोध की जड़ होता है। जुये के कारण जो मामूली अनबन पैदा होती है वह शीघ्र ही भारी विरोध का रूप धारण कर लेती है। जुए के खेल से होने वाली बुराइयो की कोई सीमा नही। इसलिए बेटा, मेरी तो यही राय है कि तुम्हारा यह विचार ठीक नही है। इसे छोड़ दो।"

"निर्भय होकर अपनी रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है। शत्रु की बढ़ती को रोकना अभी तो हमारे बस की बात है। अभी से सचेत

होकर प्रयत्न करना ठीक होगा। बीमारी और मौत किसी के लिए ठहरती नही ! चौसर का खेल कोई हमने तो ईजाद किया नही। यह तो हमारे पूर्वजो का ही चलाया हुआ है। जान पर खेले बगैर ही यह खेल खेलकर क्षत्रिय अपना उद्देश्य पूरा कर सकते है। इसमें कोई अन्याय भी नहीं होता।" दुर्योधन अपने हठ पर दृढ़ रहता हुआ बोला।

दुर्योधन के इस तरह आग्रह करने पर आखिर धृतराष्ट्र ने हाथ टेक दिए। वे बोले--"बेटा ! मैं तो ठहरा बूढा ! अब तुम्ही इस राज्य के मालिक हो ! जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो। इतना अवश्य कहे देता हू कि आगे चलकर तुम्हें इसके लिए पछताना होगा। यह विधि का कुचक्र है।"

बेटे का आग्रह मानकर धृतराष्ट्र ने चौसर खेलने के लिए अनुमति तो दे दी और सभा-मण्डप बनाने की भी आज्ञा दे दी; परन्तु गुपचुप महात्मा विदुर से भी इस बारे मे उन्होने सलाह की।

विदुर बोले--"राजन् ! मारे वश का इससे नाश हो जायगा। इसके कारण हमारे कुल के लोगो मे आपसी मनमुटाव और झगडे-फिसाद होगे। इससे भारी विपदा हमपर आयगी। मेरा निवेदन है कि इस कुचाल को न होने दीजिये।"

धृतराष्ट्र ने कहा--"भाई विदुर ! प्रारब्ध हमारे अनुकूल हो तो मुझे इस खेल का भय होना ही चाहिए था हा, यदि हमारे भाग्य ही खोटे हो तो फिर हम कर ही क्या सकते है ? सारा ससार विधि के ही इशारो पर चल रहा है इसके आगे किसी का बस नही चलता। सो तुम ही युधिष्ठिर के पास जाओ और उसे मेरी तरफ से खेल के लिए न्योता देकर बुला लाओ।"

धृतराष्ट्र की इन बातो से मालूम होता है कि वे विधि की चाल और मनुष्य के कर्त्तव्य को भली-भाति जानते थे। फिर भी उनकी बुद्धि चंचल हो जाती थी, स्थिर नही रहती थी। इसके अलावा अपने बेटे पर भी उनका असीम स्नेह था। यही उनकी कमजोरी थी। और यही कारण था कि उन्होने बेटे की बात मान ली।

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा मानकर विदुर युधिष्ठिर को न्योता देने चले।

: २४ :

बाज़ी

विदुर को आते देख महाराजा युधिष्ठिर उठे और उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। किन्तु विदुर के चेहरे पर विषाद की रेखा देखकर चिन्तित-भाव से पूछा—"क्यो चाचाजी, आपका चेहरा उतरा हुआ क्यो है ? हस्तिनापुर मे सब कुशल तो है न ? महाराजा और सारे राजकुमार कुशल मे तो है ? नगर के लोगों का व्यवहार तो ठीक है ?"

विदुर आसन पर बैठते हुए शाति से बोले—"हस्तिनापुर मे सब कुशलपूर्वक है। यहां तो सब आनन्द-पूर्वक है न ? हस्तिनापुर में खेल के लिए एक सभा-मण्डप बनाया गया है जो तुम्हारे मण्डप के समान ही सुन्दर है। राजा धृतराष्ट्र की ओर से उसे देखने चलने के लिए मै तुम लोगो को न्योता देने आया हू। राजा धृतराष्ट्र की इच्छा है कि तुम सब भाइयो सहित वहा आओ, उस मण्डप को देखो और दो हाथ चौसर के भी खेल जाओ।"

"चाचाजी ! चौसर का खेल अच्छा नही है। उससे आपस में झगडे पैदा होते है। समझदार लोग उसे पसन्द नही करते। लेकिन इस मामले में हम तो आप ही के आदेशानुसार चलने वाले है। आपकी सलाह क्या है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

विदुर बोले—"यह तो किसी से छिपा नही कि चौसर का खेल सारे अनर्थ की जड होता है। मैंने तो भरसक कोशिश की कि इसे न होने दू, किन्तु राजा ने आज्ञा दी कि तुम्हे खेल के लिए न्योता दे ही आऊं। इसलिए आना पडा। अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।"

भोग-विलास, जुआखोरी, शराब का व्यसन आदि ऐसे गढे है जिनमे लोग जान-बूझकर गिरते है। इन होनेवाली बुराइयो को भली-भाति जानते हुए भी लोग आखिर इनके चक्कर मे आ ही जाते है। महाभारत में इसका कई जगह जिक्र आता है कि युधिष्ठिर को चौसर खेलने का व्यसन था। राजवंशो की रीति के अनुसार किसी को भी खेल के लिए बुलावा मिल जाने पर उसे अस्वीकार नही किया जा सकता था। इसके अलावा व्यास की चेतावनी के कारण युधिष्ठिर को डर था कि कही खेल मे न जाने को ही धृतराष्ट्र अपना अपमान न समझ ले और कही यह बात लड़ाई का कारण न बन जाय। इन्ही सब विचारो से प्रेरित होकर समझदार युधिष्ठिर ने न्योता स्वीकार कर लिया, यद्यपि विदुर ने उन्हें चेता दिया था। वे अपने परिवार के साथ हस्तिनापुर गये। नगर के पास ही उनके तथा उनके परिवार के लिए एक सुन्दर विश्राम-गृह बना था। वहा ठहरकर उन्होने आराम किया। अगले दिन सुबह नहा-धोकर वे सभा-मण्डप मे जा पहुचे।

कुशल-समाचार के बाद शकुनि ने कहा—"युधिष्ठिर, खेल के लिए चौपड बिछा हुआ है। चलिये, दो हाथ खेल ले।"

"राजन्, यह खेल ठीक नही! बाजी जीत लेना कोई साहस का काम नही। असित, देवल जैसे महान् ऋषियो ने पासे के खेल का एक स्वर से खण्डन किया है। लौकिक न्याय के ज्ञान में इन मुनियो की पहुच कुछ कम न थी। इन महात्माओ का कहना है कि जुआ खेलना धोखा देने के समान है। क्षत्रिय के लिए मैदान मे लड कर विजय पाना ही उचित मार्ग है। आप तो ये सब बातें जानते ही है।" युधिष्ठिर ने बडी शिष्टता के साथ उत्तर दिया।

यद्यपि युधिष्ठिर ने उपरोक्त बाते सहज भाव से कही थी, लेकिन उनके मन मे जरा-सा खेल लेने की भी इच्छा हो रही थी। शौकीन जो ठहरे! पर उन्हे यह भान भी था कि यह खेल बुरा है, इस कारण अपने को रोक रहे थे। उनके मन मे जो तर्क-वितर्क हो रहा था उसको उन्होने शकुनि से दलील करने के बहाने प्रकट कर दिया था। चतुर शकुनि यह बात ताड गया। वह बोला—

"आप भी क्या कहते हैं महाराज ! धोखा क्या, युद्ध क्या ! यह तो आदमी के अपने विचारो पर निर्भर होता है। स्पर्द्धा सबमें होती है। वेद पढे हुए पण्डितों में शास्त्रार्थ होते हुए आपने नही देखा ? जिसका ज्ञान अधिक हो वह कम पढे हुए को जीत लेता है। कभी किसी ने कहा है कि शास्त्रार्थ में धोखे-बाजी होती है ? जिसे हथियार चलाने में निपुणता प्राप्त हो वह नौसिखिये को हरा देता है। क्या यह धर्म है ? इसी तरह जो ताकतवर है वह कमजोर को पछाड़ देता है। आप क्या इसे भी धोखा कहेंगे ? सयाने-सयाने की टक्कर कभी-कभी ही होती है। हर बात मे जानकार या मंजा हुगा व्यक्ति कम जानकार को हरा दिया करता है। इसमें धोखेबाजी या न्याय का निर्णय कौन करे ? पासे के खेल की भी यही बात है। मंजा हुआ खिलाडी कच्चे खिलाड़ी को हरा देता है। यह भी कोई धोखे की बात है ? हा, यह कहिए कि आपको हार जाने का डर लग रहा है; लेकिन इसमें धर्म की आड लेना उचित नही।"

युधिष्ठिर कुछ गरम होकर बोले—"राजन् ! ऐसी बात नही है। अगर मुझे खेलने को कहा गया तो मैं ना नहीं करूंगा। यही मेरा कहना है। आप कहते है तो मैं तैयार हूं। तो मेरे साथ खेलेगा कौन ?"

दुर्योधन तुरन्त बोल उठा—"मेरी जगह खेलेंगे तो मामा शकुनि, किन्तु दाव लगाने के लिए जो धन, रत्नादि चाहिए वे मैं दूगा।"

युधिष्ठिर ने सोचा था कि दुर्योधन खेलेगा तो उसे तो मै सहज ही में हरा दूंगा। किन्तु मंजे हुए खिलाड़ी शकुनि के विरुद्ध खेलते उन्हे जरा हिचकिचाहट-सी मालूम हुई।

बोले—"मेरी राय यह है कि किसी एक की जगह दूसरे को न खेलना चाहिए। यह खेल के साधारण नियमों के विरुद्ध है।"

"अच्छा तो अब दूसरा बहाना बना लिया।" शकुनि ने हसते हुए कहा।

युधिष्ठिर ने कहा—"ठीक है। कोई बात नहीं; मै खेलूगा।"

और खेल शुरू हुआ। सारा मण्डप दर्शको से खचाखच भरा था। द्रोण, भीष्म, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र जैसे वयोवृद्ध भी उपस्थित थे। यह बात साफ मालूम होने पर भी कि यह खेल झगडे की जड साबित होगा,

वे उसे रोक नही सके थे। उनके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी । दूसरे कौरव राजकुमार बड़े चाव से खेल को देख रहे थे ।

पहले रत्नो की बाजी लगी। फिर सोने-चांदी के खजानों की, उसके बाद रथो और घोड़ो की। तीनो दांव युधिष्ठिर हार गए। इस-पर युधिष्ठिर ने नौकर-चाकरो को दांव पर लगाया, उसे भी हार गए। फिर तो अपनी सारी सेना और हाथी की बाजी लगाई और हार गए। शकुनि का पांसा मानो उसके इशारों पर चलता था।

खेल में युधिष्ठिर बारी-बारी से अपनी गायें, भेड़-बकरिया, दास-दासी, रथ, घोडे, हाथी, सेना, देश, देश की प्रजा सब खो बैठे। लेकिन उनका चस्का न छूटा। भाइयो के शरीरों पर जो आभूषण और वस्त्र थे उनको भी बाजी पर लगा दिया और हार गए।

"और कुछ बाकी है ?" शकुनि ने पूछा।

"यह सांवले रंग का सुन्दर युवक, मेरा भाई नकुल खडा है। वह भी मेरा ही धन है। इसकी बाजी लगाता हू। चलो!" युधिष्ठिर ने जोश के साथ कहा।

शकुनि ने कहा—"अच्छा तो यह बात है! तो यह लीजिए। आप-का प्यारा राजकुमार अब हमारा हो गया!" कहते-कहते शकुनि ने पासा फेका और बाजी मार ली।

युधिष्ठिर ने कहा—"यह मेरा भाई सहदेव, जिसने सारी विद्याओ का पार पा लिया है। इस विख्यात पडित की बाजी लगाना उचित तो नही, फिर भी लगाता हू। चलो, देखा जायगा।"

"यह चला, और वह जीता।" कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका। सहदेव को भी युधिष्ठिर गवा बैठे।

अब दुरात्मा शकुनि को आशका हुई कि कही युधिष्ठिर खेल बन्द न कर दे। बोला—"युधिष्ठिर, शायद आपकी निगाह में भीमसेन और अर्जुन माद्री के बेटों से ज्यादा मूल्यवान है! सो उनको तो बाजी पर आप लगायेगे नही!"

युधिष्ठिर ने कहा—"मूर्ख शकुनि! शायद तुम्हारी इच्छा यह है कि हम भाइयो में आपस में फूट पड जाय! अधर्म तो मानो तुम्हारे

जीवन की सास है। सो तुम क्या जानो कि हम पांचो भाइयों के सबध क्या है ? युद्ध के प्रवाह से हमे जो पार लगाने वाली नाव के समान है, पराक्रम मे जिसका कोई सानी नही, जिसे विजय-श्री ने मानो अपना निवास-स्थान ही बना लिया है, उस अपने भाई अर्जुन को दांव पर लगाता हू । चलो ।"

शकुनि चाहता तो यही था । "तो यह चला" कहते हुए पासा फेका और अर्जुन भी हाथ से निकल गया ।

असीम दुर्दैव मानो युधिष्ठिर को बेबस कर रहा था और उन्हे पतन की ओर बलपूर्वक लिये जा रहा था । वे बोले—"राजन् ! युद्ध मे जो हमारा अगुआ है, असुरो को भय में डालने वाले वज्रधारी देवराज इन्द्र के समान जिसका तेज है, जो अपमान को कभी सह नही सकता, शारीरिक बल में संसार-भर मे जिसका कोई जोडीदार नही, अपने उस भाई भीम को मै दाव पर लगाता हू ।" और कहते-कहते युधिष्ठिर वायु-पुत्र भीमसेन से भी हाथ धो बैठे ।

दुष्टात्मा शकुनि ने तब भी नही छोडा । पूछा—"और कुछ ?"

युधिष्ठिर ने कहा—हा ! यदि इस बार तुम जीत गये तो मै खुद तुम्हारे अधीन हो जाऊगा ।"

"लो, यह जीता !" कहते हुए शकुनि ने पांसा फेका और यह बाजी भी ले गया ।

इसपर शकुनि सभा के बीच उठ खड़ा हुआ और पाचो पाण्डवों को एक-एक करके पुकारा और घोषणा की कि वे अब उसके गुलाम हो चुके है । शकुनि को दाद देनेवालो के हर्षनाद के और पाण्डवो की इस दुर्दशा पर तरस खानेवालो के हाहाकार से सारा सभा-मण्डप गूज उठा।

सभा मे इस तरह खलबली मचने के बाद शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा—"एक और चीज है जो तुमने अभी हारी नही । उसकी बाजी लगाओ तो अपने आपको भी छुडा सकते हो। अपनी पत्नी द्रौपदी को दाव पर क्यो नही लगाते ?"

और जुए के नशे मे चूर युधिष्ठिर के मुह से निकल पड़ा—"चलो, अपनी पत्नी द्रौपदी की भी बाजी लगाई !" यह मुह से तो निकल

गया; पर उसके परिणामो को सोचकर वे विकल हो उठे कि हाय यह क्या कर डाला !

धर्मात्मा युधिष्ठिर की इस बात पर सारी सभा में एकदम हाहाकार मच गया। जहां वृद्ध लोग बैठे थे, उधर से धिक्कार की आवाजें आने लगीं। लोग बोले—"छि. छिः, कैसा घोर पाप है !" कुछ ने आसू बहाये और कुछ लोग परेशानी के मारे पसीने से तर-बतर हो गए ।

दुर्योधन और उसके भाइयो ने बडा कोलाहल मचाया और आनन्द से नाच उठे। पर युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक-सन्तप्त हो उठा और ठंडी आह भरकर उसने सिर झुका लिया ।

शकुनि ने पासा फेककर कहा—"यह लो, यह बाजी भी मेरी ही रही ।"

बस, फिर क्या था ? दुर्योधन ने विदुर को आदेश देते हुए कहा—"आप अभी रनवास मे जाय और द्रौपदी को यहा ले आए । उससे कहे कि जल्दी आवे। अब उसे हमारे महल मे झाड़ू देने का काम करना होगा ।"

विदुर बोले—"मूर्ख ! नाहक क्यो मृत्यु को न्योता देने चला है। ध्यान रखो। तुम्हारी दशा ठीक उसीकी-सी है, जो किसी अंधेरे अथाह गड्ढे के मुह पर रस्सी से बधा लटक रहा हो। अपनी विषम परिस्थिति का तुम्हें ज्ञान नही, इसी कारण राजोचित व्यवहार छोडकर एक निरे गवार की-सी बातें करने लगे हो !"

दुर्योधन को यो फटकारने के बाद विदुर ने सभासदो की ओर देखकर कहा—"अपने को हार चुकने के बाद युधिष्ठिर को कोई अधिकार नही कि वे पाचाल-राज की बेटी को दांव पर लगाये। कौरवो का अन्त समीप आ गया प्रतीत होता है। इसीलिए अपने हित की बात नही सुनते है और अपने ही पाव तले गडढा खोद रहे है ।"

विदुर की बातों से दुर्योधन बौखला उठा। अपने सारथी प्रातिकामी को बुलाकर उससे कहा—"विदुर तो हमसे जलते है और पाडवो से डरते है। तुम्हें तो कुछ डर नही है ? अभी रनवास में जाओ और द्रौपदी को बुला लाओ ।"

: २५ :

द्रौपदी की व्यथा

आज्ञा पाकर प्रातिकामी रनवास मे गया और द्रौपदी से बोला—"द्रुपदराज की पुत्री! चौसर के खेल मे युधिष्ठिर आपको दाव में हार बैठे है। आप अब राजा दुर्योधन के अधीन हो गई है। राजा की आज्ञा है कि अब आपको धृतराष्ट्र के महल मे दासी का काम करना है। मै आपको ले जाने के लिए आया हू।"

राजसूय-यज्ञ करके राजाधिराज की पदवी जिन्होने प्राप्त कर ली थी, उन सम्राट् युधिष्ठिर की पटरानी द्रौपदी, प्रातिकामी की इस अनहोनी-सी बात को सुनकर भौचक्की-सी रह गई। पर जरा सभलकर बोली—"प्रातिकामी, मैं यह क्या सुन रही हूं! अपनी ही राजमहिषी को किसी राजकुमार ने दाव पर लगाया है? बाजी लगाने के लिए महाराज युधिष्ठिर के पास क्या और कोई चीज नही रही थी?"

प्रातिकामी ने बड़ी नम्रता से समझाते हुए कहा—"युधिष्ठिर के पास कोई चीज नही रह गई थी।" और सारथी ने जुए के खेल मे जो-कुछ हुआ था उसका सारा हाल कह सुनाया।

प्रातिकामी की बाते सुनकर द्रौपदी अचेत-सी रह गई। उसे ऐसा लगा मानो उसका कलेजा फट जायगा। फिर भी वह क्षत्रिय-स्त्री थी। जल्दी ही उसने अपने को सभाल लिया। क्रोध के मारे उसकी सुन्दर आखे लाल हो उठी मानो आग के अगारे हो। वह प्रातिकामी से बोली—"रथवान्! जाकर उन हारनेवाले जुए के खिलाड़ी से पूछो कि पहले वे अपने को हारे थे या मुझे? सारी सभा में यह प्रश्न उनसे करना और जो उत्तर मिले वह मुझे आकर बताओ। उसके बाद मुझे ले जाना।"

प्रातिकामी ने जाकर भरी सभा के सामने युधिष्ठिर से वही प्रश्न किया जो द्रौपदी ने उसे बताया था। प्रश्न सुनकर युधिष्ठिर अवाक् से रह गए! उनसे कोई उत्तर देते न बना।

इसपर दुर्योधन ने प्रातिकामी से कहा—"द्रौपदी से जाकर कहो कि वह स्वय ही आकर पति से यह प्रश्न कर ले। तुम उसे अभी यहा ले आओ।"

प्रातिकामी दुबारा रनवास में गया और द्रौपदी के आगे झुककर बडी नम्रता से बोला—"राजकुमारी! नीच दुर्योधन की आज्ञा है कि आप सभा मे आकर स्वयं ही युधिष्ठिर से प्रश्न कर लें।"

द्रौपदी ने कहा—"नही, मै वहा नही जाऊगी। अगर युधिष्ठिर जवाब नही देते है तो सभा मे जो सज्जन विद्यमान हैं उन सबको तुम मेरा प्रश्न सुनाओ और उसका उत्तर आकर मुझे बताओ।"

प्रातिकामी लौटकर फिर सभा मे गया और सभासदो को द्रौपदी का प्रश्न सुनाया।

यह सुनकर दुर्योधन झल्ला उठा। अपने भाई दु शासन से बोला—दुःशासन, यह सारथी भीमसेन से डरता मालूम होता है। तुम्हीं जाकर उस घमडी औरत को ले आओ।"

दुरात्मा दु शासन के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। खुशी-खुशी वह द्रौपदी के रनवास की ओर चल दिया। शिष्टता को ताक मे रखकर वह निर्लज्ज सीधे द्रौपदी के कमरे मे घुस गया और बोला, "सुन्दरी, आओ! अब नाहक देर क्यो कर रही हो? हमने तुम्हें जीत लिया है तो शरमाती क्यो हो? अब कौरवो की बनकर रहना! हमने कुछ अन्याय तो किया नहीं। खेल मे न्यायोचित ढग से ही तुम्हे प्राप्त किया है। सभा में चलो! भाई बुलाते है।" कहते-कहते बेशर्म दु शासन ने द्रौपदी का कोमल हाथ पकडकर खीचना चाहा!

तीर की चोट से व्याकुल हरिणी की भांति आर्त्तनाद करती हुई द्रौपदी शोकातुर होकर अन्त:पुर मे भाग चली। दुःशासन ने वहा भी उसका पीछा किया और उसे पकड लिया। फिर उसने द्रौपदी के गुथे बाल बिखेर डाले, गहने तोड-फोड दिये और उसी अस्त-व्यस्त दशा मे उसके बाल पकडकर बलपूर्वक घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा।

धृतराष्ट्र के लड़के दुःशासन के साथ मिलकर भारी पाप-कर्म करने पर उतारू हो गये !

दु.खी द्रौपदी ने अपना असीम क्रोध पी लिया। सभा मे पहुंचकर वह गभीर स्वर में उपस्थित वृद्धों को लक्ष्य करके बोली–"मजे हुए खिलाड़ी और धोखेबाज लोगों ने कुचक्र रचकर महाराज युधिष्ठिर को अपने जाल मे फसा लिया। और उनसे मुझे दाव पर लगवा लिया। पर आप सब लोगो ने उसे मान कैसे लिया ? जो खुद पहले ही अपने-आपको पराधीन कर चुका हो—जिसकी स्वतत्रता छिन गई हो—वह अपनी पत्नी की बाजी कैसे लगा सकता है ! यह कहा का न्याय है कि वह पराधीन हो गया तो उसकी स्त्री भी पराधीन समझी जाय ? कुरु-कुल के कई बुजुर्ग यहा है। आप लोगो के भी पत्नियां व बहू-बेटियां हैं। आप मब सत्य और न्याय को सामने रखकर मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए, मेरी आपत्ति का समाधान कीजिये।" इतना कहकर द्रौपदी विकल हो उठी।

पाचालराज-कन्या को यो आर्त्त स्वर मे पुकारते और अनाथिनी-सी विकल देखकर भीमसेन से चुप न रहा गया। वह कड़ककर बोला—"भाई साहब ! गये-गुजरे लोग भी, जुआ खेलना ही जिनका पेशा होता है, अपनी रखैल स्त्रियों तक की बाजी नही लगाते, किन्तु आप अन्धे होकर द्रुपद की कन्या को हार बैठ और धूर्तों के हाथों आपने उसका अपमान कराया और पीड़ा पहुचाई ! इस भारी अन्याय को मैं नही देख सकता। आप ही के कारण यह घोर पाप हुआ है। भाई सहदेव ! कही से जलती हुई आग तो ले आ ! जिन हाथो से युधिष्ठिर ने जुआ खेला, उन्ही को मैं जला डालू ।"

भीमसेन को आपे से बाहर देखकर अर्जुन ने उसे रोका और धीरे से कहा—"भैया ! सावधान ! इससे पहले तुमने ऐसी बाते कभी नहीं की। हमारे शत्रुओ के रचे कुचक्र ने हमारी भी बुद्धि फेर दी और हमको धर्म छोडकर अधर्म की ओर ले गया। यदि हम इस जाल में फंस गये तो शत्रुओ का उद्देश्य पूरा हो जायगा। इसलिए सावधान !"

अर्जुन की बातो से भीमसेन शात हो गया और उसने अपने को सम्हाल लिया और क्रोध पीकर रह गया।

द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था देखकर धृतराष्ट्र के एक बेटे विकर्ण को बडा दुख हुआ। वह बोला—"उपस्थित क्षत्रिय वीरो! क्या कारण है कि इतना भारी अन्याय होते देखकर भी आपने चुप्पी साध ली है? मै उम्र में आप लोगो से छोटा हू। फिर भी बूढे अनुभवी लोग जब चुप है तो मुझे बोलना ही पड़ता है। सुनिये, चौसर के खेल के लिए युधिष्ठिर को धोखे से बुलावा दिया गया। वे धोखा खाकर इस जाल में फसे और अपनी स्त्री तक की बाजी लगा दी। यह सारा कार्य न्यायोचित नही है। दूसरी बात यह है कि द्रौपदी अकेले युधिष्ठिर की ही पत्नी नही, बल्कि पाचों पांडवो की है इसलिए उसको दाव पर लगाने का अकेले युधिष्ठिर को कोई हक नही था। इसके अलावा खास बात यह है कि एक बार जब युधिष्ठिर खुद अपने को ही दांव मे हार गये तो फिर उनको द्रौपदी की बाजी लगाने का अधिकार ही क्या रहा? मेरी एक और आपत्ति यह है कि शकुनि ने द्रौपदी का नाम लेकर युधिष्ठिर को उसकी बाजी लगाने के लिए उकसाया था। क्षत्रिय लोगो ने चौसर के खेल के जो नियम बना रखे है, यह उनके बिलकुल विरुद्ध है। किसी चीज को दाव पर लगाने की सलाह विपक्ष का खिलाडी कैसे दे सकता है? इन सब बातों के आधार पर मै इस सारे खेल को नियम-विरुद्ध ठहराता हूं। मेरी राय मे द्रौपदी नियम-पूर्वक नही जीती गई।"

युवक विकर्ण के भाषण से इकट्ठे लोगो के विवेक पर से भ्रम का परदा हट गया। सभा मे बड़ा कोलाहल मच गया। सब एक स्वर से विकर्ण की प्रशंसा करने लगे और बोले—"धर्म की रक्षा हो गई। धर्म की रक्षा हो गई।"

यह सब देख कर्ण उठ खड़ा हुआ और क्रुद्ध होकर बोला—"विकर्ण, अभी तुम बच्चे हो। सभा मे इतने बडे-बूढो के होते हुए तुम कैसे बोल पड़े! तुम्हे यहा बोलने और तर्क-वितर्क करने का कोई अधिकार नही हैं। तुम ऐसे नासमझ हो कि पूछो मत। अरे! युधिष्ठिर ने पहली ही बाजी में जब अपनी सारी सपत्ति खो दी तभी उसी घड़ी अपनी स्त्री को भी खो दिया। इसपर और वादविवाद कैसा? जब युधिष्ठिर की सारी संपत्ति शकुनि की हो चुकी है तो इनके शरीर पर जितन कपड़े

है ये भी सब शकुनि के हो चुके है। इसमे शंका की या आपत्ति की कोई गुंजाइश ही नही है। दुःशासन ! इन पाण्डवो के और द्रौपदी के कपड़े और गहने सब उतारकर शकुनि को दे दो !"

कर्ण की कठोर बातो से पांडवो पर वज्र टूट पड़ा। फिर भी पांचो भाइयों ने यह सोचकर कि अभी उनके धर्म की परीक्षा होनी बाकी है, अपने अंगोछे उठाकर सभा मे फेक दिये।

यह देख दु:शासन द्रौपदी के पास गया और उसका वस्त्र पकडकर खींचन लगा। अब बेचारी द्रौपदी क्या करती ! मनुष्यो की आशा छोडकर उसने ईश्वर की शरण ली और आर्त्त स्वर मे पुकार उठी—"जगदीश ! परमात्मन् ! अब तू ही मेरी लाज रख ! तू मुझ दीन अबला को न छोड़ देना ! तेरी शरण लेती हूं ! दीनबन्धु ! मेरी सुन, मुझे बचा।" कहती हुई शोक-विह्वल द्रुपदकन्या तत्काल ही मूर्छित हो गई।

उस समय सभा वालो ने एक अद्भुत चमत्कार देखा। दु:शासन द्रौपदी का वस्त्र पकड़कर खीचने लगा। ज्यो-ज्यो वह खीचता गया त्यो-त्यो वस्त्र भी बढता ही गया। अलौकिक शोभा वाले वस्त्रो के सभा में ढेर लग गए !

अत मे खीचते-खीचते दु:शासन की दोनो भुजाए थक गई। हाफता हुआ वह थकान से चूर होकर बैठ गया। यह दैवी चमत्कार देखकर सभा के लोगो मे कपकपी-सी फैल गई और धीमे स्वर मे बाते होने लगी।

इतने मे भीमसेन उठा। उसके होठ मारे क्रोध के फड़क रहे थे। ऊचे स्वर मे उसने यह भयानक प्रतिज्ञा की—"उपस्थित सज्जनो ! मै शपथ खाकर कहता हूं कि जबतक, भरत-वंश पर बट्टा लगाने वाले इस दुरात्मा दु शासन की छाती पकड़कर इसके गरम खून से अपनी प्यास न बुझा लूगा तबतक इस ससार को छोड़कर पितृ-लोक नहीं जाऊंगा !" भीमसेन की इस भीषण प्रतिज्ञा को सुनकर उपस्थित लोगो के हृदय भय के मारे थर्रा उठे।

अचानक सियार बोलने लगे। गधों के रेंकने और मांसाहारी चील-कौओ के चीखने की मनहूस आवाजें चारों ओर से आने लगीं।

इन सब लक्षणों से धृतराष्ट्र ने समझ लिया कि यह सब ठीक नही हुआ। उन्होने अनुभव किया कि जो-कुछ हो चुका है उसका परिणाम शुभ नही होगा और यह उनके पुत्रो और कुल के विनाश का कारण बन जायगा। उन्होने परिस्थिति को सम्हालने के इरादे से द्रौपदी को बडे प्रेम से अपने पास बुलाया और उसे शात किया तथा सात्वना दी। उसके बाद युधिष्ठिर की ओर मुड़कर बोले—

"युधिष्ठिर, तुम तो अजातशत्रु हो। उदार-हृदय भी हो। दुर्योधन की इस कुचाल को क्षमा करो और इन बातो को मन से निकाल दो और भूल जाओ। अपना राज्य तथा सपत्ति वगैरा सब ले जाओ और इन्द्रप्रस्थ जाकर सुखपूर्वक रहो और स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करो।"

धृतराष्ट्र की इन मीठी बातो को सुनकर पाडवो के दिल शात हो गए और यथोचित अभिवादनादि के उपरात द्रौपदी और कुती सहित सब पांडव इन्द्रप्रस्थ के लिए विदा हो गये।

पाडवो के विदा हो जाने के बाद कौरवो के महल मे बडा वाद-विवाद और नोक-झोक हुई। पाडवो के इस प्रकार अपने पजे से साफ निकल जाने के कारण कौरव बडा क्रोध-प्रदर्शन करने लगे और दुशासन तथा शकुनि के उकसाने पर दुर्योधन अपने पिता धृतराष्ट्र के फिर सिर हो गया और पाडवो को खेल के लिए एक बार और बुलाने को उनको फिर राजी कर लिया। उसने धृतराष्ट्र से कहा कि पाडवो को इस प्रकार लौटा देना ठीक नही हुआ। यहा उनका जो अपमान हुआ उसे वे नही भूलेंगे और इन्द्रप्रस्थ पहुचते ही अपने दल-बल के साथ हमपर चढाई कर देंगे। नीति तो यह कहती है कि शत्रुओ को एक बार छेडने के बाद खुला नही छोडना चाहिए। अत. आप उन्हे चौपड़ खेलने को फिर बुलाइये। इस बार ऐसी तरकीब निकालेंगे कि वे नाराज भी न हो और हमारा काम भी बन जाय।

और युधिष्ठिर को खेल के लिए बुलाने को फिर दूत भेजा गया। उन दिनो क्षत्रियो में यह रिवाज था कि अगर चौपड़ के खेल के लिए बुलावा आवे तो कोई क्षत्रिय उसे अस्वीकार नहीं कर सकता था। यह एक प्रकार की चुनौती होती थी और उसे मानना ही पडता था।

पिछली घटना के कारण दुःखी होते हुए भी युधिष्ठिर को यह निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा। वे बोले—

"अगर हमें जुआ खेलना ही पड़ा तो खेलेंगे। यद्यपि मैं जानता हूं कि वह नाशकारी है; पर इससे बचने का भी तो कोई उपाय नही है। मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म से निवृत्त नही हो सकता। जैसा प्रारब्ध में होता है मनुष्य को वही करना पड़ता है। यद्यपि सुवर्ण का जंतु होना असंभव है; परन्तु राम हिरन को देखकर लोभ में आ ही गये। यह इस बात का प्रमाण है कि जब पुरुषो का पराभव होने को होता है तब उनकी बुद्धि प्रायः नष्ट हो जाती है।"

धर्मपुत्र युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटे और शकुनि के साथ फिर चौसर खेले। सभा के सब लोगो ने उन्हे बहुत रोका, पर ऐसा मालूम होता था मानों वे काल-वश हो गये थे।

इस बार खेल में यह शर्त रही कि हारा हुआ दल अपने भाइयो के साथ वन मे जाय और बारह वर्ष वहा बितावे और तेरहवे वर्ष मे अज्ञात-वास करे। अगर उस तेरहवे वर्ष मे उनका पता चल जाय तो फिर उन सबो को बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा। इस बार भी युधिष्ठिर हारे और पाडव अपने किये हुए वादे के अनुसार वन मे चले गये। सभा मे उपस्थित लोगो ने शर्म के मारे अपनी गर्दनें झुका ली।

: २६ :

धृतराष्ट्र की चिन्ता

द्रौपदी को साथ लिये पाडव वन की ओर जाने लगे। उनको देखने की इच्छा से सड़कों पर नगर के लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। भीड इतनी थी कि सड़कों पर चलना असंभव था। ऊचे भवनो मे, मंदिरो के गोपुरो और पेडो पर बैठे लोग पाडवो को देखने लगे। स्त्रिया अट्टालिकाओ तथा झरोखों से देख रही थी। राजाधिराज युधिष्ठिर को, जो छत्री और बाजो के समेत रथारूढ होकर जाने योग्य थे, वल्कल

और मृगचर्म पहने, पैदल जाते देख लोगों में हाहाकार मच गया। कुछ लोगों ने 'हाय-हाय' की, कुछ ने 'छी:-छी.' करके कौरवों को धिक्कारा। सबकी आंखों में आसू उमड़ आये ।

धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला भेजा और पूछा—"विदुर, पांडु के बेटे और द्रौपदी कैसे जा रहे है ? मैं अन्धा हूं ! देख नही सकता । तुम्ही बताओ, कैसे जा रहे हैं वे ?"

विदुर ने कहा—"कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर कपड़े से चेहरा ढाक कर जा रहे है। भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को निहारता, अर्जुन हाथ में कुछ बालू लिए उसे बिखेरता, नकुल और सहदेव सारे शरीर पर धूल रमाये हुए, क्रमशः युधिष्ठिर के पीछे-पीछे जा रहे है । द्रौपदी ने बिखरे हुए केश से सारा मुख ढक लिया है और आसू बहाती हुई युधिष्ठिर का अनुसरण कर रही है । पुरोहित धौम्य कालदेव की स्तुति में सामवेद के छन्द सस्वर गान करते हुए साथ-साथ जा रहे हैं ।"

यह वर्णन सुनकर धृतराष्ट्र की आशंका और चिन्ता पहले से भी अधिक प्रबल हो उठी । उन्होंने बडी उत्कठा से पूछा—"और नगर के लोग क्या कह रहे है ?"

विदुर ने कहा—"महाराज ! सुनिये, प्रत्येक जाति और वर्ण के लोग एक स्वर से यही कह रहे है कि धृतराष्ट्र ने लालच में पडकर पाडु के बेटो को जंगल मे भेज दिया। कहते हैं—'हा दैव ! हमारे राजा, हमारे नायक नगर छोड़कर जा रहे हैं ! कुरुवंश के वृद्धों को धिक्कार है, जिन्होने नासमझ लडको के कहने में आकर ऐसा व्यवहार किया ! धिक्कार है धृतराष्ट्र को और उनके लालच को !' इस तरह नगर के सभी लोग हमारी निन्दा कर रहे है। नीले आकाश में बिजली कौधने लगी । पृथ्वी कांप उठी। और भी कितनी ही अनिष्टकारी सूचनाए हुई ।"

विदुर धृतराष्ट्र के साथ यो बातें कर रहे थे कि नारद मुनि कही से उधर आ निकले। उन्होने धृतराष्ट्र को बताया कि दुर्योधन के पाप-कर्म के कारण आज से ठीक चौदह वर्ष के बाद सारे कौरवों का नाश हो जायगा। यह भविष्यवाणी सुनाकर देवर्षि नारद जिस प्रकार एकाएक आये थे वैसे ही चले गये।

दुर्योधन और उनके साथी नारद की भविष्यवाणी सुन भय से कांपते हुए आचार्य द्रोण के पास गए और उनके आगे गिड़गिड़ाते हुए यों बोले—

"आचार्य, सारा राज्य आप ही का है। हम आप ही की शरण हैं। आप हमारा साथ न छोड़ें।"

इसपर द्रोणाचार्य बोले—"समझदार लोगों का मत है कि पाण्डव देवता के अशावतार है, अजेय है। मै भी यह जानता हूं; परन्तु फिर भी धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरी शरण ली है, सो मै उन्हें ठुकरा नहीं सकता। जहां तक मुझसे बन पडेगा, हृदयपूर्वक प्रेम के साथ उनकी सहायता किया करूगा; किन्तु प्रारब्ध के आगे किसी का बस नही चलता। वनवास की अवधि पूरी होने पर पाण्डव बड़े क्रोध के साथ लौट आयगें। उनका ससुर द्रुपद मेरा शत्रु है। एक बार उसपर गुस्सा होकर मैंने उसे अपमानित भी किया था। उस अपमान का बदला लेने और मेरा नाश करने के लिए पुत्र की कामना करते हुए द्रुपद ने एक यज्ञ किया था और उसके फलस्वरूप उसके धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ है। मेरे शत्रु राजा द्रुपद के साथ पाण्डवो की जो गहरी मित्रता एवं सबध हुआ है, लोग कहते है कि, वह मेरे वध ही के हित विधि का रचा हुआ एक चक्र है। तुम लोगो की करतूतो से उसी लोकमत की पुष्टि हो रही है। तुम्हें सावधान किये देता हूं, तुम लोगो का अन्त अब दूर नही है। जो कुछ पुण्य-कर्म करना हो, बड़े-बड़े यज्ञ करने हों, सुख भोगना हो, सब अभी कर लो। विलब न करो। आज से चौदह वर्ष बाद तुमपर भारी विपदा आने वाली है। दुर्योधन, मेरी सलाह मानो तो पाडवो से सधि कर लो। उसीमें तुम्हारा भला है। मैंने अपनी राय दे दी। आगे तुम्हारी जो इच्छा।"

लेकिन द्रोणाचार्य की बातें दुर्योधन को जरा भी पसंद न आईं।

•

"राजन्, आजकल आप दुखी क्यों रहते हैं ?" संजय ने राजा धृतराष्ट्र से पूछा।

"पांडवो से वैर मोल ले लेने पर मै निश्चिन्त रही कैसे सकता हू ?" अन्धे-राजा ने उत्तर दिया।

संजय बोला—"आप सच कह रहे हैं। जिसका नाश होना निश्चित हो, उसकी बुद्धि फिर जाती है। वह भले को बुरा और बुरे को भला समझने लग जाता है। प्रारब्ध लाठी लेकर किसीका सिर थोडे ही फोड़ता है ! जिसे दण्ड देना होता है उसका विवेक हर लेता है, जिससे भलाई के भ्रम में वह बुराई कर बैठता है और अपने-आप ही नाश के गड्ढे में गिर जाता है। आपके बेटो की भी यही बात है। उन्होने द्रौपदी का अपमान किया और अपने ही हाथों अपने सर्वनाश का गढा खोद लिया।"

"समझदार विदुर ने जो सलाह दी थी वह धर्म एव राजनीति के अनुकूल थी। किन्तु मैंने उसे ठुकरा दिया और अपने नासमझ बेटे की बात मान ली। हमें धोखा हो गया।" धृतराष्ट्र ने पश्चात्ताप के साथ कहा।

विदुर बार-बार धृतराष्ट्र से आग्रह करते कि आप पाडवों के साथ संधि कर लें। कहते—"आपके लडको ने घोर पाप-कर्म किया है जो युधिष्ठिर के साथ छल-कपट किया गया। अपने बेटो को कुमार्ग से सही रास्ते पर लाना आप ही का कर्त्तव्य है। आपको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे पाडवो को आपका दिया हुआ राज्य फिर से प्राप्त हो जाय। युधिष्ठिर को वन से वापस बुला भेजें और अपने पुत्रो तथा पाडवो मे सधि करवा दे। यदि दुर्योधन आपकी सलाह न माने तो उसको बस मे करना आप ही का कर्त्तव्य है।" विदुर अक्सर इसी भांति धृतराष्ट्र को उपदेश दिया करते थे।

विदुर की बुद्धिमत्ता का धृतराष्ट्र पर भारी प्रभाव था, इसलिए शुरू-शुरू में वे विदुर की ये बाते सुन लिया करते थे। परन्तु बार-बार विदुर की ऐसी ही बातें सुनते-सुनते वह ऊब उठे।

एक दिन विदुर ने फिर वही बात छेडी तो धृतराष्ट्र झुंझलाकर बोले—"विदुर! तुम हमेशा पाडवो की तरफदारी करके मेरे लड़कों के विरुद्ध बातें किया करते हो। मालूम होता है कि तुम हमारा भला नही चाहते, नही तो बार-बार कैसे कहते कि मैं दुर्योधन का साथ छोड़ दूं। दुर्योधन मेरे कलेजे का टुकड़ा है, उसे कैसे ठुकरा दू? ऐसी सलाह

देने से क्या फायदा हो सकता है जो न न्यायोचित है, न मनुष्य स्वभाव के अनुकूल ही ? तुमपर से मेरा विश्वास उठ गया है । मुझे अब तुम्हारी सलाह की जरूरत नही । अगर चाहो तो तुम भी पांडवों के पास चले जाओ !"

धृतराष्ट्र यह कहकर बड़े क्रोध के साथ विदुर के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अन्तःपुर मे चले गये !

विदुर ने मन मे कहा कि अब इस वंश का सर्वनाश निश्चित है । उन्होंने तुरन्त अपना रथ जुतवाया और उसपर चढकर जंगल में उस ओर तेजी से चल पड़े, जहा पाडव अपने वनवास का काल व्यतीत कर रहे थे ।

विदुर के चले जाने पर बूढे धृतराष्ट्र और भी चिन्तित हो गये । वह सोचने लगे कि मैंने यह क्या कर दिया । मेरी इस गलती से तो पांडवों की ही ताकत बढेगी । विदुर को भगाकर भारी भूल कर दी । यह सोचकर धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाया और कहा—"संजय ! मैंन अपने प्रिय भाई विदुर को बहुत बुरा-भला कह दिया था । इससे वह गुस्सा होकर वन में चला गया है । तुम जाकर उसे किसी तरह समझा-बुझाकर मेरे पास वापस ले आओ ।"

धृतराष्ट्र की बात मानकर सजय जंगल मे पांडवों के आश्रम में जा पहुचे । देखा, पाडव मृगचर्म पहने ऋषि-मुनियों के संग धर्म-चर्चा कर रहे है और विदुर भी उन्हीके साथ है । संजय ने विदुर से बड़ी नम्रता के साथ कहा—"धृतराष्ट्र अपनी भूल पर पछता रहे हैं । आप यदि वापस नही लौटेंगे तो वे अपने प्राण छोड देंगे । कृपया अभी लौट चलिए ।"

यह बात सुनकर धर्मात्मा विदुर युधिष्ठिर आदि से विदा लेकर हस्तिनापुर के लिए चल पडे ।

हस्तिनापुर पहुचकर विदुर जब धृतराष्ट्र के सामने गये तो धृतराष्ट्र ने उन्हें बड़े प्रेम से गले लगा लिया और गद्‌गद् स्वर मे बोले—"निर्दोष विदुर ! मै उतावली मे जो बुरा-भला कह बैठा, उसका बुरा न मानना और मुझे क्षमा कर देना ।"

एक बार महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्र के दरबार में पधारे। राजा ने उनका समुचित आदर-सत्कार करके प्रसन्न किया। फिर महर्षि से हाथ जोडकर पूछा—"भगवन्! कुरुजागल के वन में आपने मेरे प्यारे पुत्र वीर पांडवों को तो देखा होगा। वे कुशल से तो है? क्या वे वन ही में रहना चाहते है? हमारे कुल मे आपसी मित्रभाव कही कम तो नही हो जायेगा? आप मेरी शका का समाधान करने की कृपा करें।"

महर्षि मैत्रेय ने कहा—"राजन्, काम्यक वन मे सयोग से युधिष्ठिर से मेरी भेंट हो गई थी। वन के दूसरे ऋषि-मुनि भी उनसे मिलने उनके आश्रम मे आये हुए थे। हस्तिनापुर में जो-कुछ हुआ था उसका सारा हाल उन्होंने मुझे बताया था। यही कारण है कि मै आपके यहां आया हूं। आपके और भीष्म के जीतेजी ऐसा नही होना चाहिए था।"

इस अवसर पर दुर्योधन भी सभा मे मौजूद था। मुनि ने उसकी ओर देखकर कहा—"राजकुमार, तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूं, सुनो। पाडवो को धोखा देने का विचार छोड दो। वे बडे वीर है। महाराज कृष्ण एव द्रुपद उनके रिश्तेदार है। उनसे वैर मोल न लो। उनके साथ सधि कर लो। इसीमें तुम्हारी भलाई है।"

ऋषि ने यो मीठी बातो से दुर्योधन को समझाया; पर जिद्दी व नासमझ दुर्योधन ने उनकी ओर देखा तक नही। कुछ बोला भी नही, बल्कि अपनी जाघ पर हाथ ठोकता और पैर के अगूठे से जमीन कुरेदता व मुस्कराता हुआ खडा रहा।

दुर्योधन की इस ढिठाई को देखकर महर्षि बडे क्रोधित हुए। उन्होने कहा—"दुर्योधन, तुम इतने अभिमानी हो कि जो तुम्हारा भला चाहते है उनकी बातो पर ध्यान न देकर गरूर मे जांघ ठोक रहे हो! याद रखो, अपने घमण्ड का फल तुम अवश्य पाओगे। लडाई के मैदान में भीमसेन की गदा से तुम्हारी ये जाघ टूटेगी और इसीसे तुम्हारी मृत्यु होगी।"

धृतराष्ट्र ने फौरन उठकर मुनि के पांव पकड़ लिये और विनय की—"महर्षि! शाप न दें। कृपा करें।"

मुनि ने कहा—"राजन् ! यदि दुर्योधन पाडवों से संधि कर लेगा तो मेरे शाप का प्रभाव नही होगा, वरना वह होकर ही रहेगा।"

महाभारत तो एक प्राचीन कथा है। पर उसमें भी मानव-स्वभाव वही पाया जाता है जो आज है। क्रोध और घृणा की ज्वाला से आज भी मानव-समाज उसी प्रकार ग्रस्त एवं त्रस्त है। जब हम क्रोध के शिकार हों तब अगर यह अध्याय पढें तो हमे शात और अक्लमन्द होने में उससे सहायता मिलेगी और हम अपराध एवं मूर्खता से बचेंगे।

: २७ :

श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा

शाल्व, शिशुपाल का मित्र था। जब उसे खबर मिली कि श्रीकृष्ण के हाथो शिशुपाल मारा गया है तो उससे न रहा गया। श्रीकृष्ण पर उसे असीम क्रोध हो आया। तत्काल एक भारी सेना इकट्ठी करके द्वारिका पर चढाई कर दी और नगर को चारो तरफ से घेर लिया। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ से लौटे नहीं थे। इस कारण उनकी अनुपस्थिति में राजा उग्रसेन ने द्वारिका की रक्षा का प्रबन्ध किया।

महाभारत में द्वारिका के घेरे जाने का जो वर्णन है, उसे पढ़ते-पढते ऐसा भ्रम हो जाता है कि कही हम आजकल की लड़ाई का ही तो वर्णन नही पढ रहे हैं। उन दिनो के युद्ध की कारंवाइया और तरीके ठीक आज-कल के-से मालूम होते हैं।

द्वारिका का किलेबन्द नगर एक टापू पर बसा था। शत्रु के आक्रमण से बचाव के लिए हर प्रकार का बन्दोबस्त किया गया था। दुर्ग की बनावट ही ऐसी थी कि उसमें हजारों सैनिक सुरक्षित रहकर लड़ सकते थे। दुर्ग पर कई यंत्र लगे हुए थे। जमीन खोद कर कई सुरगी रास्ते बनाये गए थे। किले के अन्दर तरह-तरह के हथियारों, पत्थर फेंकने वाली कलों, यहां तक कि बारूद के भी 'गोदाम' भरे पड़े थे। सैनिकों के कितने ही दल दुर्ग के अन्दर पहले ही से तैयार रखे गए थे और

कितने ही जवान नये सिरे से भरती किये गये थे। शत्रु के घेरा डालते ही उग्रसेन ने डौंडी पिटवा दी कि नगर के अन्दर ताड़ी-जैसी नशीली चीजो का सेवन करना मना है। साथ ही नट-नटियों और तमाशा दिखाने वालो को भी नगर से निकाल दिया गया। जहा कही भी समुद्र पार करने के लिये पुल बने थे उन्हे तोड़ दिया गया। जहाज दूर पर ही रोक दिये गए। किले की चारो ओर की खाइयों मे लोहे की सूलिया गाड़ दी गईं। किले की दीवारो की मरम्मत करा दी गई। रास्तो पर जहां-तहा कंटीले तारो की बाड लगा दी गई।

वैसे भी द्वारिका नगरी दुर्गम थी और शाल्व के घेरा डालने के बाद तो उसको और भी सुरक्षित कराने का प्रबन्ध कर दिया गया। लोगों के आने-जाने पर सख्त पाबन्दिया लगा दी गई। मुहर लगे हुए अनुमति-पत्रो के बगैर शहर से न कोई बाहर जा सकता था, न अन्दर आ सकता था। सैनिकों का वेतन बढा दिया गया और नियत समय पर दिया जाने लगा। सेना में जो जवान भरती हुए उनको अच्छी तरह जाच लिया जाता था।

इस प्रकार द्वारिका सब तरह से सुरक्षित थी। शाल्व को बड़ी निराशा हुई और वह घेरा उठाकर भाग गया।

श्रीकृष्ण जब द्वारिका लौटे तो उन्होने देखा कि शाल्व के आक्रमण के कारण द्वारिका के लोगो को बडी मुसीबत उठानी पडी है। यह देखकर श्रीकृष्ण को बडा क्रोध आया और उन्होने सौभदेश पर चढाई करके शाल्व को युद्ध मे बुरी तरह हरा दिया।

इसी बीच हस्तिनापुर में हुई घटनाओं की खबर श्रीकृष्ण को लगी। उन्हे यह पता चला कि पाचो पाडव द्रौपदी समेत वन में चले गये हैं। यह खबर पाते ही वे फौरन ही उस वन को चल पडे जहा पाण्डव ठहरे हुए थे।

श्रीकृष्ण जब पाण्डवो से भेंट करने जाने लगे तो उनके साथ कैकय, भोज और वृष्णि जाति के नेता, चेदिराज धृष्टकेतु आदि भी गये। इन लोगों के साथ पाडवों का बडा स्नेह-संबंध था और वे उनको बड़ी श्रद्धा से देखते थे। इस प्रकार क्षत्रिय राजाओ का एक भारी दल पांडवों के आश्रम में जा पहुंचा।

दुर्योधन और उनके साथियों की करतूतो का हाल जब श्रीकृष्ण और दूसरे पाण्डव-मित्रों को मालूम हुआ तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। एक स्वर में सबने कहा--"दुराचारी कौरवों के खून से हम पृथ्वी की प्यास बुझायेंगे।"

आगन्तुक राजा लोग जब अपने मन की कह चुके तो द्रौपदी श्रीकृष्ण से मिली। श्रीकृष्ण को देखते ही उसकी आखो से गगा-यमुना बह चली। बड़ी मुश्किल से वह बोली---"मैं एक ही वस्त्र पहने हुए थी, जब दुष्ट दु.शासन मेरे केश पकड़कर भरी सभा में मुझे घसीटता ले गया। धृतराष्ट्र के लड़कों ने मेरा कितना अपमान किया था, कैसी हंसी उड़ाई थी मेरी! पापियों ने समझ लिया था कि मैं उनकी लौडी ही बन गई हूं। भीष्म और धृतराष्ट्र तो मानो भूल ही गये कि मैं उनकी बहू और राजा द्रुपद की कन्या हू। मेरे पति भी मुझे इस अपमान से न बचा सके। हे जनार्दन! नीच दुष्टों द्वारा मैं सताई जा रही थी और सारी सभा देख रही थी! भीम का शारीरिक वल किसी काम का न रहा था। अर्जुन का गाण्डीव धनुष भी निकम्मा-सा पड़ रहा। मैं दीन, असहाय-सी सब सहती रही। ससार मे जो बिलकुल ही कमजोर होते है वे भी अपनी स्त्री का बचाव किसी-न-किसी प्रकार अवश्य कर लेते है; किन्तु राजाधिराज पाण्डु की बहू और वीर पाण्डवो की पत्नी होकर भी मैं अनाथिन-सी अपमानित होती रही और किसी ने चू तक न की! दुष्टो ने मुझे केश पकडकर खीचा। जिस पापी दुर्योधन की आज्ञा से ये घोर कर्म हुए उस पापी को जीते रहने का अधिकार ही कैसे रहा? फिर भी उसकी ओर किसी ने उगली तक न उठाई। इस तरह अपमानित होने के बाद मेरा जीना बेकार है। मधुसूदन, मेरे न पति है, न पुत्र, न बन्धु ही। मेरा कोई नही रहा और आप भी मेरे न रहे!" यह कहते-कहते द्रौपदी के कोमल होठ फडकने लगे। उसके शब्द चिनगारियो-से मालूम हुए। बड़ी-बड़ी आखो से गरम-गरम आंसुओ की धारा बहने लगी और कलेजा मुह को आने लगा। वह आगे न बोल सकी।

इस प्रकार करुण स्वर में विलाप करती हुई द्रौपदी को श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया और धीरज बन्धाया। वह बोले—"बहन द्रौपदी ! जिन्होने तुम्हारा अपमान किया है, उन सबकी लाशें युद्ध के मैदान में खून से लथपथ होकर पडेगी । तुम शोक न करो। वचन देता हूं कि मै पाडवों की हर प्रकार से सहायता करूंगा । यह भी निश्चय मानो कि तुम सम्राज्ञी के पद को फिर सुशोभित करोगी । चाहे आकाश टूट कर गिर जाये, चाहे हिमालय फटकर बिखर जाय, चाहे पृथ्वी टुकड़ो में बंट जाये, चाहे समुद्र का पानी सूख जाय, मेरा यह वचन झूठा नही होगा ।"

श्रीकृष्ण की इस प्रतिज्ञा से द्रौपदी का मन खिल उठा। आखो में आसू भरे अर्जुन की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से द्रौपदी ने देखा । अर्जुन भी द्रौपदी को सात्वना देते हुए बोला—"हे सुनयने ! श्रीकृष्ण का वचन झूठा नहीं हो सकता। वही होगा जो उन्होने कहा है । तुम धीरज धरो।"

धृष्टद्युम्न ने भी बहन को सात्वना दी और समझाते हुए कहा कि श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रतिज्ञाए किस प्रकार पूरी होंगी । उसने कहा कि द्रोणाचार्य को मै, भीष्म को शिखण्डी, दुर्योधन को भीमसेन और सूत-पुत्र कर्ण को अर्जुन लडाई के मैदान में मौत के घाट उतारेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—"मै द्वारिका में नही था। यदि होता तो चौसर का यह खेल ही न होने देता। धृतराष्ट्र के न बुलाने पर भी मैं सभा में पहुंच जाता और भीष्म, द्रोण जैसे बुजुर्गों को उचित ढंग से समझा-बुझा-कर इस नाशकारी खेल को रुकवा देता। मुझे शाल्व से लड़ने के लिए द्वारिका छोडकर जाना पडा था। राजसूय-यज्ञ के समय शिशुपाल को जो मैंने मारा था सो उससे नाराज होकर शाल्व ने द्वारिका पर जबर्दस्त घेरा डाल दिया था। हस्तिनापुर से द्वारिका जाने पर मुझे इसका पता लगा तो मैंने शाल्व का पीछा किया और उसके राज्य पर चढाई कर दी। शाल्व को मौत के घाट उतारकर द्वारिका लौटने को ही था कि रास्ते में हस्तिनापुर मे हुए इस महा अनर्थ की खबर मुझे मिली। बस, उसी घड़ी तुम लोगों से मिलने चला आया। जैसे बाध के टूट जाने

पर जल को रोका नही जा सकता ठीक उसी तरह तुम्हारे इस दुःख को अभी तुरन्त तो दूर करना सम्भव नही है; लेकिन वह दूर तो करना ही है ।"

इसके बाद श्रीकृष्ण पाडवों से विदा हुए। साथ में अर्जुन की पत्नी सुभद्रा और उसके पुत्र अभिमन्यु को वे द्वारिका-पुरी लेते गये । द्रौपदी के पुत्रो को लेकर धृष्टद्युम्न पाचाल देश की ओर रवाना हो गया ।

: २८ :

पाशुपत

पाडव द्रौपदी के साथ वन में रहने लगे। शुरू-शुरू में द्रौपदी और भीमसेन युधिष्ठिर की सहनशीलता की कडी आलोचना किया करते थे। तीनो में जोर की बहस छिड जाया करती थी। द्रौपदी और भीमसेन शास्त्रो तथा सूक्तियो का प्रमाण देकर कहते कि क्षत्रिय का धर्म क्रोध ही है, न कि क्षमा या सहनशीलता। भीम कहता—"सहनशीलता तो क्षत्रियो को अपमान के गड्ढे में गिरा देती है ।" पर इन बातों से युधिष्ठिर कभी विचलित नहीं होते । वे कहते—"मै अपनी प्रतिज्ञा नही तोड सकता। सहनशीलता और क्षमा हरेक जाति और वर्ग के लोगों के लिए सबसे बड़ा धर्म है।" यह सुनकर भीमसेन और बिगडता। वह चाहता था कि वनवास की अवधि पूरी होने से पहले ही दुर्योधन और उसके साथियो पर अचानक हमला कर दिया जाय और उनका काम-तमाम करके राज्य पर फिर से अधिकार जमा लिया जाय।

युधिष्ठिर को ताना देते हुए वह कहता—"भाई साहब, तत्व की बाते आप करते तो खूब है; पर उनका मतलब भी आपकी समझ में आता है ? जैसे कोई वेद-मन्त्रों को उनका मतलब जाने बिना ही रटता फिरे और उसीसे सतुष्ट हो जाये, वैसे ही आप भी शास्त्रों की बातें रट रहे है। आपकी बुद्धि ठिकाने नही है। क्षत्रिय होकर आप ब्राह्मणों की-सी नरमी बरतना चाहते है। न तो यह आपको शोभा देता है, न

इससे हमारा काम ही बनेगा। क्षत्रिय को तो चाहिए कि वह निर्दयता और क्रोध से काम ले। वे ही उसके गुण हैं, सहन-शीलता नहीं। शास्त्र भी यही कहते हैं, हम क्षत्रिय वीर हैं। हमारे लिए क्या यह उचित है कि कुचाल चलने वाले धृतराष्ट्र के लड़कों की खबर लिये बगैर ही उनको छोड़ दें ? धिक्कार है उस क्षत्रिय को जो छल-प्रपंच रचनेवाले शत्रुओं को तत्काल ही उनके किये का फल न चखाये ! ऐसे क्षत्रिय का जन्म बेकार है; बल्कि मै तो कहूगा कि कुचक्र रचनेवालों का वध करने पर हमे नरक ही क्यों न जाना पडे, हमारे लिए वह स्वर्ग के बराबर होगा। आपकी यह सहनशीलता भी अजीब है कि जिसके कारण नीच और धोखेबाज लोग हमारा राज्य छीनकर मौज उड़ा रहे है और हम यहां जंगल में पडे रात भर तारे गिनते रहते है ! हमारे लिए तो आपकी यह क्षमा-भावना आग से भी ज्यादा भयानक साबित हो रही है। अर्जुन को और मुझको दिन-रात चिन्ता खाए जा रही है। आप अपने कर्त्तव्य की तरफ ध्यान नही दे रहे है और कुछ प्रयत्न करने के बजाय यही रट लगाते रहते है कि प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी। मै पूछता हूं कि वह पूरी हो कैसे ? अर्जुन, जिसका यश सारे ससार मे फैला हुआ है, इस तरह कैसे छिपकर रह सकता है कि कोई उसका असली परिचय जान ही न सके ? कही हिमालय पहाड़ को जरा-सी घास के अन्दर छिपाया जा सकता है ? और नकुल और सहदेव छिपकर रहें भी तो कैसे ? फिर राजा द्रुपद की यह सुविख्यात पुत्री भी तो हमारे साथ है। वह कहा और कैसे छिपेगी ? तिसपर दुर्योधन के पास तो जासूसो की भी कमी नही है ! यदि हम इस दुःसाध्य काम मे उतारू हो भी गए तो धृतराष्ट्र के लडके हमारे पीछे भेदिये लगाकर हमें खोज निकाल लेंगे। फिर क्या होगा ? नये सिरे से बारह साल का वनवास और एक साल का अज्ञातवास फिर भोगना होगा। यह हमसे कैसे हो सकेगा ? इस प्रकार प्रतिज्ञा पूरी करना हमारे बस का तो है नही वन मे रहते हमें तेरह महीने पूरे हो चुके है जैसे सोमलता के न मिलने पर किसी और पत्ते से यज्ञ का काम चला लेते है वैसे ही हम भी आपद्धर्म के न्याय से काम ले सकते है। तेरह बरस की जगह तेरह महीने काफी

हो सकते हैं। शास्त्रो का कहना है कि धोखे में पड़कर जो प्रतिज्ञा की जाती है उसके टूट जाने पर प्रायश्चित्त करके उसका दोष-परिमार्जन किया जा सकता है। बैल पर बोझ लादना होता है जरूर, लेकिन बैल को एक मुट्ठी घास खिलाने से उस थोड़े से पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है। इसलिए शत्रु का वध करने का निश्चय कीजिये। क्षत्रियो के लिए इससे बढ़कर धर्म और कोई नही है।"

भीमसेन अक्सर इसी प्रकार उत्तेजित होकर बहस किया करता; लेकिन द्रौपदी का ढंग कुछ और था। दुर्योधन और दु.शासन के हाथों जो अपमान उसे सहना पडा था, उसकी वह बार-बार याद दिलाती और शास्त्रो-पुराणो से प्रमाण देकर ऐसी जिरह करती कि स्वयं युधिष्ठिर भी चकरा जाते। वे ठडी आह भरकर विचार में पड़ जाते। सोचते--इन लोगो पर धार्मिक बातो का कोई प्रभाव नही होगा। इसलिए वे नीति-शास्त्र का सहारा लेते और अपनी और शत्रु की ताकत की तुलना करके भीमसेन और द्रौपदी को समझाते।

वे कहते--"भूरिश्रवा, द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा आदि बडे-बडे योद्धा शत्रु के पक्ष मे है। इसके अलावा दुर्योधन और उसके भाई स्वय युद्ध-कुशल है। छोटे-बडे कितने ही राजा दुर्योधन के पक्ष मे चले गए है। भीष्म और द्रोणाचार्य यद्यपि दुर्योधन को अधिक नही मानते है, फिर भी वे उसका साथ छोडेगे, ऐसा नही दीखता। युद्ध में दुर्योधन की खातिर प्राणो तक की बलि चढाने को वे तैयार है। अटल योद्धा कर्ण शस्त्र-विद्या का पार पा चुका है। वह बडा ही उत्साही वीर है और इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है। युद्ध के संचालन में भी उसे कमाल हासिल है। ऐसे-ऐसे कुशल योद्धा जब शत्रु के पक्ष मे है तो अभी हमे जल्दबाजी नही करनी चाहिए। उतावली से काम नही बनेगा।"

इस भाति युधिष्ठिर अपने भाइयों की उत्तेजना कम करने और उनको सहनशील बनाये रखने का प्रयत्न करते रहते थे।

इसी बीच एक बार व्यासजी से पाण्डवो की भेट हो गई। उन-की सलाह मानकर अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए हिमालय

तपस्या करने गया। भाइयों से विदा लेने के बाद अर्जुन पांचाली से विदा मागने गया तो वह बोली—"हे धनंजय, मेरी कामना है कि तुम जिस उद्देश्य के लिए जा रहे हो वह पूरा हो। माता कुन्ती ने तुमसे जो-जो कामनाएं की है वे सब पूरी हों। हम सबके सुख-दुःख, जीवन, मान एवं संपत्ति के तुम्ही आधार हो। कार्य सिद्ध करके कुशल-पूर्वक जल्दी लौटना ।"

यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि तपस्या के निमित्त जब अर्जुन जाने लगा तो यद्यपि द्रौपदी पत्नी-रूप मे ही बोल रही थी; पर उसके हृदय में मातृभाव प्रबल हो उठा था। प्रेम की जगह वात्सल्य ने ले ली थी। माता कुन्ती के स्थान पर स्वयं उसने अपने पति अर्जुन को आशीर्वाद देकर बिदा किया ।

अर्जुन हिमालय की ओर चल दिया। चलते-चलते वह इद्रालिक नामक पहाड पर जा पहुंचा। वहा एक बूढे ब्राह्मण से उसकी भेंट हुई ।

"बच्चे ! कौन हो तुम ? कवच पहने, धनुष-वाण और तलवार लिये यहा कैसे भूल पडे, बेटा ! यह तो तपोवन है। जिन लोगो ने क्रोध और वासना को त्याग दिया हो, उन्ही तपस्वियो के योग्य है यह स्थान। अस्त्र-शस्त्रो का तो यहा काम ही नही है। फिर क्षत्रियो के-से इस भेष में तुम यहा क्या करने आये हो ?" बूढे ब्राह्मण ने मुस्कराते हुए पूछा। यह देवराज इद्र थे। और अपने पुत्र को देखने आये थे।

अर्जुन आश्चर्यचकित-सा खडा रहा। ब्राह्मण-रूपी इन्द्र देवता अपने असली रूप में अर्जुन के सामने प्रकट हुए और बोले—"वत्स, तुम्हे देखने की इच्छा हुई, इसीलिए यहा आया हू। तुम्हे देखकर मेरा मन सतुष्ट हो गया। तुम्हे जिस वर की इच्छा हो मागो ।"

अर्जुन ने हाथ जोड़कर कहा—"मुझे दिव्य-अस्त्र चाहिए। वही देने की कृपा करे।"

"धनंजय ! अस्त्रो को लेकर क्या करोगे ? जिस किसी सुख-भोग की इच्छा हो वह मांगो। ऊचे लोको की चाह हो तो वह मागो, दूगा।" इन्द्र ने अर्जुन को परखने के लिए कहा ।

परन्तु अर्जुन विचलित न हुआ। बोला—"देवराज! मुझे सुख भोगने या ऊचे लोकों मे जाने की इच्छा नहीं है। द्रौपदी और अपने भाइयो को वन में अकेला छोड़ आया हूं। मुझे सिर्फ कुछ अस्त्रो की आवश्यकता है।"

हजार आंखों वाले इन्द्रदेव अर्जुन की दृढता पर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"महादेवजी को लक्ष्य करके तपस्या करो। उनके दर्शन हो जाय तो तुम्हारी कामना पूरी होगी और तुम्हें दिव्यास्त्र भी प्राप्त होगे।" कहकर इन्द्र अन्तर्द्धान हो गए।

इन्द्र के कथनानुसार अर्जुन महादेव का ध्यान करके तपस्या करने लगा। इस प्रकार वह कई दिन तक वन में घोर तप करता रहा।

●

हिमालय की पहाड़ी के वन मे अर्जुन तपस्या मे लीन था। पिनाक-पाणि महादेव पार्वती के साथ व्याध के रूप मे शिकार के लिए उसी वन मे आ पहुचे।

इतने में एक जगली सूअर अर्जुन पर झपटा। अर्जुन चौक उठा और उसने अपना गांडीव धनुष तानकर सूअर पर बाण चलाया। ठीक उसी समय पिनाक तानकर महादेवजी ने भी सूअर पर तीर मारा। सूअर पर दोनो तीर एक साथ लगे और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

"कौन है रे जगली, जो एक औरत को साथ लिए जंगल में फिर रहा है? जिस जानवर को मैंने लक्ष्य बनाया था उसपर तूने कैसे तीर चलाया?" अर्जुन ने व्याध-रूपी महादेव को डाटकर पूछा।

"हम लोग जंगली हैं। जानवरों से भरे इस जंगल पर हमारा ही तो अधिकार है। पर तू इतना सुकुमार होकर इस जंगल मे अकेला क्या कर रहा है?" महादेव ने अर्जुन की ओर घृणा-भरी दृष्टि डालते हुए कहा। वे फिर बोले—"सूअर मेरे बाण से मरा है। अगर तू मानता है कि तेरे बाण से मरा है तो मेरे साथ लड़कर जीत ले।"

यह चुनौती सुनकर अर्जुन क्रुद्ध हो उठा और मारे क्रोध के व्याध पर ऐसे-ऐसे बाणो की बौछार करने लगा, जो सांप के समान काटने वाले थे। किन्तु क्या देखता है कि उन बाणों का व्याध पर कोई असर

ही नही हो रहा है। इसपर अर्जुन ने बाणों की और भी जबरदस्त वर्षा की। पर व्याध के शरीर पर उनका उतना-सा ही प्रभाव हुआ जितना वर्षा की धारा का पहाड पर होता है। व्याध के मुख पर प्रसन्नता की झलक थी, यहा तक कि अर्जुन के तूणीर के सारे बाण समाप्त हो गए।

अब अर्जुन का मन शंकित होगया। वह कुछ घबरा-सा गया। फिर भी सभलकर उसने धनुष की नोक व्याध के शरीर मे भोकने की कोशिश की। व्याध इसपर विचलित न हुआ। हंसते-हसते उसने अर्जुन के हाथ से धनुष छीन लिया। अजेय वीर अर्जुन एक जंगली के हाथो इस प्रकार हार खाकर चौक पडा; परन्तु उसने फिर भी हार मानी नही। वह तलवार खीचकर व्याध पर टूट पडा और व्याध के सिर पर जोर का वार किया। किन्तु आश्चर्य ! तलवार के ही टुकड़े-टुकडे हो गये और व्याध अचल खड़ा रहा। तब अर्जुन ने पत्थरो की बौछार करनी शुरू की। उससे भी काम न बना तो मुट्ठी बाधकर घूसे मारना शुरू किया। पर उसमें भी अर्जुन को हार खानी पडी। जब इससे भी कुछ न बना तो अर्जुन ने व्याध के साथ कुश्ती लडना शुरू कर दिया। परन्तु व्याध ने अर्जुन को खूब कसकर पकड लिया और उसे बेबस कर दिया।

अर्जुन को अब कुछ न सूझा। उसका दर्प चूर हो गया। अपने बल का घमण्ड छोड़कर उसने देवाधिदेव महादेव का ध्यान किया। ईश्वर की शरण लेते ही उसके मन मे मानों ज्ञान का उजाला फैल गया। वह तुरन्त जान गया कि व्याध कौन था। तुरन्त व्याधरूपी महादेव के पाव पर गिर पडा और क्षमा मागी। और आशुतोष महादेव ने उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद अर्जुन को उसके धनुष-बाण आदि हथियार वापस दे दिये और पाशुपत की विद्या एवं और भी कितने ही वरदान दिये।

अर्जुन की प्रसन्नता की सीमा न रही। महादेव के दिव्य-स्पर्श के कारण उसके शरीर के सारे दोष दूर हो गए, उसकी शक्ति एवं कान्ति कई गुना बढ़ गई। महादेव ने अर्जुन से कहा—"तुम अब देवलोक

जाना और देवराज इन्द्र से भी मिल आना।" यह कहकर महादेव अन्तर्द्धान हो गए, उसी प्रकार जैसे सूरज अपनी सुनहरी ज्योति समेट-कर अस्त हो जाता है ।

पर अर्जुन को कुछ चेत नही था। वह खड़ा-खड़ा यही सोचता रहा—"क्या देवाधिदेव महादेव के मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे ! उनके दिव्य स्पर्श का मुझे सद्भाग्य मिला ? मुझे दिव्यास्त्र प्राप्त हो गये ? मैं कृतार्थ हो गया।" इस प्रकार खोया-सा अर्जुन खड़ा रहा। इसी बीच इन्द्र के सारथी मातलि ने उसके सामने देवराज का रथ लाकर खडा कर दिया और अर्जुन उसपर आरूढ़ होकर इन्द्रलोक को चल दिया ।

: २६ :

विपदा किसपर नहीं पड़ती ?

वनवास के दिनो मे एक बार श्रीकृष्ण और बलराम अपने साथी-संगियो के साथ पाण्डवों से मिलने गये। पाण्डवो की दशा देखकर बलराम का जी भर आया। वह श्रीकृष्ण से बोले—

"कृष्ण ! कहते तो है कि भलाई का फल अच्छा और बुराई का फल बुरा होता है; परंतु यहा तो मालूम ऐसा पड़ता है कि भलाई या बुराई का असर किसी के जीवन पर पडता ही नही। यदि ऐसा न होता तो यह कैसे हो सकता था कि दुर्योधन तो विशाल राज्य का स्वामी बन जाय और महात्मा युधिष्ठिर जगल में वल्कल पहने वैरागियो का-सा जीवन व्यतीत करे ? दुष्ट दुर्योधन और उसके भाइयो की दिन-पर-दिन बढ़ती हो रही है जबकि युधिष्ठिर राज्य, सुख और चैन से वचित होकर वन में विपत्ति में दिन काट रहे है। इस उलटे न्याय को देखकर परमात्मा पर से लोगों का विश्वास उठ जाय तो क्या आश्चर्य ! धर्म और अधर्म का इस तरह उलटा नतीजा होते देखकर मुझे शास्त्रों की धर्म-प्रशंसा ढोंग मालूम पड़ती है। राज्य के लोभ में पडे हुए धृत-

राष्ट्र मृत्यु के समय अपनी करतूतों का क्या समाधान देगे ? निर्दोष पाण्डवो की और यज्ञ की वेदी से उत्पन्न द्रौपदी को वनवास का यह महान् दुख झेलते देखकर, और तो और, पत्थर तक पिघल जाते है और पृथ्वी भी शोकातुर हो रही है !"

इसपर सात्यकि, जो पास ही खड़ा था, बोल उठा—"बलराम, यह दुख मनाने का समय नही है। रोने-धोने से भी कभी काम बना है ? समय गंवाना ठीक न होगा। आप, श्रीकृष्ण आदि हम सब बन्धुओ के जीते-जी पाडव इस प्रकार वनवास भोगे ही क्यो ? बधुओ और हितेच्छुओ के नाते हमारा कर्तव्य है कि पाडवो का दुख दूर करने की हम अपनी ओर से बस भर कोशिश करे, भले ही पाडव इस बात का हमसे अनुरोध करे या न करे। हमे अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही होगा। चलिए, अपने बन्धु-बाधवो को इकट्ठा करके दुर्योधन के राज्य पर हमला कर दे और दुर्योधन को उसके कर्मो का दण्ड दे। वृष्णियो की सेना की सहायता से कौरवो का नाश करने मे हम समर्थ है ही। और सेना की जरूरत भी क्या है ? आप और श्रीकृष्ण अकेले ही यह काम कर सकते है। मेरा मन तो ऐसा करता है कि कर्ण के सारे अस्त्र-शस्त्र चूर कर दू और उसका सिर धड से अलग कर दू। दुर्योधन और उनके साथियो का काम-तमाम करके पाडवो का छिना हुआ राज्य अभिमन्यु को सौप दू। वनवास विताने की प्रतिज्ञा मे तो पाण्डव ही न बंधे हुए है। वे उसे खुशी मे पूरा करते रहे। चलिए, आज का हमारा यही कर्त्तव्य है।"

श्रीकृष्ण, जो बलराम और सात्यकि की बातो को बडे ध्यान से सुन रहे थे, बोले—"आप दोनो ने जो कहा वह है तो ठीक, किन्तु यह तो सोचना चाहिए कि पाडव दूसरो के जीते हुए राज्य को स्वीकार भी करेगे ? मेरा तो खयाल है कि पांडव जिस राज्य को अपने बाहुबल से न जीते उसे दूसरो से जितवाना पसद न करेगे। वीरो के वश मे पैदा हुई द्रौपदी भी इसे पसन्द न करेगी। युधिष्ठिर राज्य के लोभ से या किसी दूसरे से डर कर अपने धर्म से टलनेवाले व्यक्ति नही है। वे तो अपने प्रण पर अटल रहेगे। इसलिए हमारे लिए यही

उचित होगा कि प्रतिज्ञा पूरी होने पर पाचालराज, कैकय-नरेश आदि मित्रों को साथ लेकर पांडवो का साथ दे और फिर युद्ध मे शत्रुओं का नाश करे।"

ये सब बाते सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए। बोले—"श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा। हमे अपनी प्रतिज्ञा का ही पालन करना चाहिए। राज्य-प्राप्ति का ध्यान अभी नही। श्रीकृष्ण ही केवल मुझे ठीक-ठीक समझते है। हम तभी लड़ेगे जब श्रीकृष्ण उसकी सलाह देगे। अभी वृष्णि-कुल के वीरो से तो मै यही कहूगा कि वे लौट जाय और धर्म पर अटल रहें। फिर जब समय अनुकूल होगा तब मिलेगे।" इस तरह युधिष्ठिर ने अपने हितैषियो को समझा-बुझाकर विदा किया।

●

अर्जुन को पाशुपत-प्राप्ति के लिए गये बहुत दिन बीत गये। इतने समय बाद भी उसके न लौटने पर भीमसेन बडा चिन्तित हो गया। उसका दुःख और क्षोभ पहले मे भी अधिक हो उठा। वह युधिष्ठिर से कहने लगा—

"महाराज! आप जानते ही है कि अर्जुन ही हमारा प्राणाधार है। वह आपकी आज्ञा मानकर गया है। न जाने उसपर क्या कुछ बीत रही होगी! यदि ईश्वर न करे, उसके प्राणो पर बन आई तो फिर हमारा क्या होगा? अर्जुन के बिना तो हम कही के न रहेगे। उसके बिना श्रीकृष्ण, द्रुपद, सात्यकि आदि सब मिलकर भी हमारा बचाव न कर सकेगे। यदि अर्जुन को कही कुछ हो गया तो फिर मुझसे भी उसका शोक न सहा जायगा। आपने ही तो यह चौपड का खेल खेलकर हमें इस दारुण दुःख मे डाल दिया है और अब हमें यह झेलना पड रहा है। उधर हमारे शत्रुओ की ताकत बढ रही है। क्षत्रिय का कर्त्तव्य जगल मे रहना नही, बल्कि राज्य करना होता है। अपने कुल के धर्म को छोड़कर आप क्यो यह जिद पकडे बैठे है? अब अर्जुन को किसी तरह वापस बुलाये और श्रीकृष्ण को साथ लेकर धृतराष्ट्र के लड़को पर हमला कर दे। ऐसा न होगा तो मुझे शांति न मिलेगी। जबतक दुरात्मा दुर्योधन और उसके साथी शकुनि, कर्ण, आदि पापियों

का काम-तमाम नही होता, मुझे चैन नही पडने की। हां, यह हो जाने के बाद आप फिर शौक से जगल में जाकर तपस्या करते रह सकते हैं। जो काम तुरन्त करना आवश्यक हो—जो काम हमारे सामने हो—उसे करने मे देरी लगाना भारी भूल होगी। जिसने हमें धोखा दिया, उसे चालाकी से मारना पाप नही हो सकता। शास्त्रों में कहा गया है कि एक वर्ष में पूरे होने वाले कुछ व्रतो को एक दिन और रात में भी पूरा किया जा सकता है। इसके आधार पर हम भी तेरह दिन और तेरह राते व्रत रक्खे तो तेरह बरस के वनवास की प्रतिज्ञा शास्त्रोचित ढग से पूरी हो जायगी। मुझे आपकी आज्ञा-भर की देरी है। मै तो दुर्योधन के प्राण लेने को वैसे ही उत्कण्ठित हो रहा हूं जैसे सूखे झाड-झखाड़ को फूक डालने के लिए आग।"

भीम की इन जोशीली बातो को सुनकर युधिष्ठिर का कण्ठ भर आया। उन्होने भीम को गले लगा लिया और बडे प्रेम से उसे समझाते हुए बोले—"भैया मेरे ! तेरह बरस पूरे होते ही गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन और तुम लडाई मे दुर्योधन का अवश्य वध करोगे, इसमें मुझे जरा भी शक नही है। अभी विचलित न होओ। उचित समय तक जरा धीरज धरो। पाप के बोझ से दबे हुए दुर्योधन और उसके साथी अवश्यमेव उसका फल भोगेगे। वे बचेगे नही।"

●

दोनो भाइयो मे यह चर्चा हो ही रही थी कि इतने मे बृहदश्व ऋषि पांडवों के आश्रम मे पधारे। युधिष्ठिर ने उनकी विधिवत् पूजा की और खूब आदर-सत्कार करके बडे नम्रभाव से उनके पास बैठकर कहा—

"भगवन् ! छली लोगो ने हमे चौपड के खेल मे बुलाया और धोखे से हमारा राज्य और संपत्ति छीन ली। उसके फलस्वरूप मुझे और मेरे अनुपम वीर भाइयो को द्रौपदी के साथ वनवास का कष्ट भोगना पड रहा है। अर्जुन, बहुत दिन हुए, अस्त्र प्राप्त करने के लिए गया है, पर अभी तक लौटा नही। उसकी अनुपस्थिति में हमे ऐसा मालूम हो रहा है मानो हमारे प्राण ही चले गये है। आप कृपया बतायें कि अर्जुन अस्त्र प्राप्त करके कब लौटेगा ? हम उससे

कब मिलेंगे ? इस समय तो हम दुःख के सागर में गोते खा रहे हैं। संसार में शायद ही कोई ऐसा हुआ होगा जिसने मेरे जितना दुःख सहा हो। मैं बड़ा ही अभागा हू।"

ऋषि बोले—"युधिष्ठिर ! मन मे शोक को स्थान न दो। अर्जुन अनेक दिव्यास्त्रों एवं वरदानो को प्राप्त करके सकुशल वापस आयेगा। तुम लोग शत्रुओं पर भी विजय पाओगे। यह न समझो कि तुम जैसा अभागा संसार में कोई हुआ ही न होगा। शायद तुम राजा नल की कहानी नही जानते, जिसने तुमसे कही ज्यादा दुःख झेला था। निषद् देश के प्रतापी राजा नल के बारे में क्या तुमने नही सुना ? उसने भी चौपड़ खेला था और पुष्कर नाम के उसके एक दुर्बुद्धि भाई ने उसे धोखा देकर उसका सारा राज्य और संपत्ति छीन ली थी और उसे राज्य से निकाल कर वन मे भगा दिया था। वनवास के समय बेचारे नल के साथ न तो भाई ही थे, न ब्राह्मण लोग। कलि ने नल की बुद्धि भी हर ली थी। इस कारण उसके सारे गुण नष्ट हो गये थे। यहां तक कि उसने अपनी पत्नी को भी धोखा दिया और उसे वन मे अकेली छोडकर भाग गया था। तुम्हारे साथ तो देवताओं के समान चार भाई हैं। कितने ही ज्ञानी ब्राह्मण सदा तुम्हे घेरे रहते है। अनुपम सती द्रौपदी साथ मे है। तुम्हारी बुद्धि भी स्थिर है। उसमें कोई दोष नही है। फिर तुम्हे दुःख काहे का ? तुम तो भाग्य के बडे बली हो। शोक करना तुम्हे शोभा नहीं देता।"

इसके बाद ऋषि ने नल-दमयन्ती की कहानी विस्तार से युधिष्ठिर को सुनाई। अन्त मे ऋषि बृहदश्व ने कहा—

"पाण्डुपुत्र ! नल ने दारुण दुःख सहने के बाद अन्त में सुख पाया था। वह कलि से पीडित था और अकेले जगल मे रहता था। किन्तु तुम्हारे साथ तुम्हारे भाई और द्रौपदी है। तुम सदा धार्मिक बातों का चिन्तन करते रहते हो। वेद-वेदाग के पण्डित ब्राह्मण तुम्हें घेरे रहते और पवित्र कथाए सुनाते रहते है। मनुष्य के जीवन मे सकट का होना कोई नई बात नही है। इसलिए शोक न करो।"

: ३० :

अगस्त्य मुनि

युधिष्ठिर जब राजा थे तब जिन ब्राह्मणो ने उनके यहा आश्रय लिया था, वनवास के समय भी उन्होने युधिष्ठिर का साथ नही छोडा। ऐसे कठिन समय मे इतने सारे ब्राह्मणो का पालन करना कठिन काम था। लेकिन युधिष्ठिर उसे बडी आस्था के साथ निभा रहे थे। अर्जुन के तपस्या करने को जाने के बाद, एक बार, लोमश नाम के यशस्वी ऋषि युधिष्ठिर के आश्रम मे आये। उन्होने देखा कि युधिष्ठिर को ऋषि-मुनियो की भारी भीड घेरे हुए है। उन्होने युधिष्ठिर को सलाह दी कि वनवास के दिनो मे इतने लोगो की भीड साथ रखना उचित नही। यह जितनी कम हो उतना अच्छा। इसलिए अपने साथ के लोगो की सख्या कम कर लीजिए और कुछ समय के लिए तीर्थाटन के लिए चले जाइए।

लोमश ऋषि की सलाह मानकर युधिष्ठिर ने अपने साथ के लोगो को बताया कि--"हम लोग तीर्थाटन करने वाले है। मार्ग मे काफी मुसीबते आ सकती है। इस कारण जो लोग तकलीफ नही उठा सकते, जो स्वादिष्ट भोजन पाने की लालसा से साथ रहना चाहते है, जो अपने हाथ से भोजन नही पकाते और जो मुझे राजा समझकर यहा आश्रय लिये हुए है, अच्छा हो कि वे सब राजा धृतराष्ट्र के पास चले जाय। अगर वे आश्रय न दे तो पाचाल-नरेश द्रुपद के पास चले जाय।" ब्राह्मणो को इस भाति समझाकर और लोगो को इधर-उधर भेजकर युधिष्ठिर ने अपना परिवार कम कर लिया और पुण्य-क्षेत्रो की यात्रा के लिए निकल पडे। यात्रा मे वे प्रत्येक तीर्थ की पूर्व-कथा भी,

जहा-जैसी प्रचलित होती, सुनते । इसी यात्रा के दौरान मे पाण्डवों को अगस्त्य मुनि की कथा भी सुनने मे आई।

●

एक बार यात्रा करते हुए महामुनि अगस्त्य ने देखा कि कुछ तपस्वी उलटे लटके हुए हैं और इस कारण बडी तकलीफ पा रहे है। उन्होंने पूछा कि आप लोग कौन है ? यह घोर यातना क्यो सह रहे हैं ? तपस्वियो ने उत्तर दिया—"बेटा ! हम तुम्हारे पूर्वज-पितृ है। तुम अविवाहित ही रह गये, इस कारण तुम्हारे बाद हमे पिड-तर्पण देने वाला कोई नही रह जायगा। इस कारण हमें यह घोर तपस्या करनी पड रही है। यदि तुम विवाह करके पुत्रवान हो जाओ तो हम इस यातना से छुटकारा पा जायंगे।"

यह सुनकर अगस्त्य ने विवाह करने का निश्चय कर लिया।

विदर्भ देश के राजा के कोई सन्तान न थी। उन्हें इसका बडा शोक था। एक बार राजा ने अगस्त्य मुनि से हाथ जोडकर प्रार्थना की कि मुझे सतान होने का वर दीजिये।

अगस्त्य ने वर तो दे दिया, किन्तु एक शर्त के साथ। वे बोले—"राजन् ! तुम्हें पुत्री होगी। लेकिन उसका विवाह मेरे साथ करना होगा।"

वरदान देते समय मुनि ने स्त्रियोचित सौदर्य के सारे लक्षणो से सुशोभित एक अनुपम सुन्दरी की कल्पना कर ली थी। विदर्भ-नरेश की रानी ने ऐसी ही एक पुत्री को जन्म दिया। उसका लावण्य अलौकिक था। पुत्री का नाम लोपामुद्रा रक्खा गया। दिन-दूनी रात-चौगुनी बढती हुई लोपामुद्रा विवाह योग्य वय को प्राप्त हो गई।

विदर्भराज की कन्या की अनूठी सुन्दरता की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। परन्तु फिर भी अगस्त्य के डर के मारे कोई राजकुमार उससे ब्याह करने को प्रस्तुत न होता था। इस बीच अगस्त्य मुनि फिर एक बार विदर्भराज की सभा में आ पहुचे और राजा से बोले—"पितरो को सन्तुष्ट करने के लिए पुत्र पाने का इच्छुक हू। अपने दिये वचन के अनुसार अपनी पुत्री का ब्याह मेरे साथ कर दीजिए।"

अनेक सखियों से घिरी हुई और दास-दासियों की सेवा-टहल में पली अपनी लाड़ली बेटी को जंगल में रहने वाले और साग-पात खाने वाले मुनि के हाथो सौप देना राजा को बड़ा नागवार गुजरा। फिर भी वचन जो दे चुके थे। ऋषि के क्रोध का भी डर था। राजा बड़े असमंजस में पड़ गये।

राजा और रानी को इस प्रकार चिन्तित देखकर लोपामुद्रा ने कहा—"आप उदास क्यो होते है? मेरे कारण आपको मुनि का शाप सहना पड़े, यह कभी नहीं हो सकता। मुनि के साथ मेरा ब्याह कर दीजिए। मुझे भी यही पसन्द है।"

बेटी की बातो से राजा को सान्त्वना मिली और राजा ने अगस्त्य मुनि के साथ लोपामुद्रा का विधिवत् विवाह कर दिया।

ऋषि वन मे जाने लगे तो लोपामुद्रा भी उनके साथ चलने को तैयार हुई।

"ये कीमती आभूषण और वस्त्र यही उतार दो।" मुनि ने कहा।

लोपामुद्रा ने तुरन्त अपने सुन्दर गहने-कपड़े उतार कर सखियों को दे दिये और खुद वल्कल और मृग-चर्म पहनकर खुशी-खुशी अगस्त्य मुनि के साथ हो ली।

गगा नदी के उद्गम पर अगस्त्य मुनि का आश्रम था। वहा लोपा-मुद्रा अगस्त्य के साथ व्रत-पूर्वक रहने लगी। वह बड़ी सावधानी और चिन्ता के साथ मुनि की सेवा-शुश्रूषा करती और उनका मन बहलाती। इस प्रकार सेवा करके उसने उन्हें पूर्णरूप से लुभा लिया।

लोपामुद्रा की सेवा, सौन्दर्य और हाव-भाव से मुनि के मन में काम जाग्रत हो उठा। उन्होने लोपामुद्रा को गर्भ-धारण के लिए बुलाया। स्त्रियोचित लज्जा के साथ लोपामुद्रा ने सिर झुका लिया और हाथ जोड़कर कहा—"नाथ! मै वैसे आपकी आज्ञा-पालन करने के लिए बाध्य हूं। किन्तु मेरी भी इच्छा आप पूरी कर देने की कृपा करे।"

उसके अनुपम रूप और शील-स्वभाव से मुग्ध होकर मुनि ने कहा—"तथास्तु।"

लोपामुद्रा ने कहा—"मेरी इच्छा है कि पिता के यहां जो कोमल शैय्या और सुन्दर वेश-भूषा मुझे प्राप्त थी वही यहां भी मिले। आप भी सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करे और तब हम दोनो संयोग करे।"

"तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए तो धन चाहिए। हम तो ठहरे जगल में रहने वाले दरिद्र ! धन कहां से लाय ?" अगस्त्य ने कहा।

"स्वामिन ! आपके पास जो तपोबल है यही सब कुछ है। आप चाहे तो संसार का सारा ऐश्वर्य पल-भर मे खड़ा कर सकते हैं।" लोपामुद्रा ने कहा।

"तुम्हारा कहना ठीक तो है। पर यदि मैं तपोबल से धनार्जन करने लग जाऊं तो फिर मेरा तपोबल सांसारिक वस्तु के लिए खर्च हो जायगा। क्या तुम्हे यह पसन्द है कि मै इस प्रकार तपोबल गंवाऊं ?" अगस्त्य ने पूछा।

"नही, मै यह नही चाहती कि आपकी तपस्या इन बातों के लिए नष्ट हो। मेरी मशा तो यह थी कि आप तपोबल का सहारा लिये बगैर ही कही से काफी धन ले आते।" लोपामुद्रा ने उत्तर दिया।

"अच्छा, भाग्यवती ! मै वही करूंगा जिससे तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।" कहकर अगस्त्य मुनि एक मामूली ब्राह्मण की भाति राजाओं से धन की याचना करने चल पडे।

अगस्त्य मुनि एक ऐसे राजा के यहा गये, जो अपने अटूट धन-वैभव के लिए प्रसिद्ध था। जाकर बोले—

"राजन्, कुछ धन की याचना करने आया हू। किन्तु मुझे दान देने से ऐसा न हो कि किसी और जरूरतमद को, तकलीफ पहुचे या और आवश्यक खर्च मे कमी पड जाय।"

राजा ने अपने राज्य के आय और व्यय का सारा हिसाब उठाकर अगस्त्य ऋषि के सामने रख दिया और कहा—"आप स्वय ही देख ले। व्यय से जितनी अधिक आय हो वह आप ले ले।" अगस्त्य ने सारा हिसाब उलट-पुलट कर देखा तो मालूम हुआ कि जितनी आमदनी है उतना ही खर्च भी है। बचत कुछ नही है। किसी भी सरकार

का आय और व्यय बराबर ही होता है । उन दिनो भी यही बात थी ।

अगस्त्य ने सोचा कि यदि मै यहा से कुछ लूगा तो प्रजा को कष्ट पहुचेगा, इसलिए राजा को आशीष देकर वे दूसरे राजा के यहा जाने लगे । यह देखकर राजा ने कहा--"मै भी आपके साथ चलूगा।" अगस्त्य ने उसे भी अपने साथ ले लिया और एक दूसरे राजा के यहा गये । वहा भी यही हाल था ।

इस प्रकार अगस्त्य मुनि ने अपने अनुभव से जान लिया कि न्यायोचित ढग से कर लेकर अपने राजोचित कर्त्तव्य का शास्त्रानुसार पालन करने वाले किसी राजा से कितना-सा भी दान लिया जायगा उतना ही कष्ट उसकी प्रजा को पहुचेगा । यह सोच अगस्त्य तथा सब राजाओ ने तय किया कि इलवल नाम के एक अत्याचारी असुर राजा के पास जाकर दान लिया जाय ।

●

इलवल और वातापी दोनो असुर भाई-भाई थे । ब्राह्मणो से उनको बडी नफरत थी । उन दिनो ब्राह्मण लोग मास खा लेते थे । इससे फायदा उठाकर इलवल ब्राह्मणो को न्योता देता और अपने भाई वातापी को असुर-माया से बकरा बनाकर उसीका मास ब्राह्मण मेहमानो को खिलाता । ब्राह्मणो के खा चुकने पर इलवल पुकारता—"वातापी ! आ जाओ !" मरे हुए को जिलाने की शक्ति इलवल को प्राप्त थी । इससे वातापी ब्राह्मणो का पेट चीरकर हसता हुआ सजीव निकल आता । इस प्रकार कितने ही ब्राह्मणो को इन असुरो ने मार डाला था । असुर सोचते थे कि इस प्रकार वे धर्म को धोखा देकर पुण्य-सुख भी लूट रहे है और ब्राह्मणो का काम-तमाम करके अपना उद्देश्य भी पूरा कर रहे हैं । लेकिन यह उनकी भूल थी ।

अगस्त्य के आने की खबर पाकर दोनो भाई बडे खुश हुए कि अच्छा मोटा-ताजा शिकार फसा है । उन्होने ऋषि का आदरपूर्वक स्वागत किया और भोजन के लिए न्योता दिया । हमेशा की तरह वातापी को बकरा बनाकर उसका मांस अगस्त्य को खिलाया गया । वे यह

सोचकर बड़े खुश हो रहे थे कि बस, ये ऋषि अब घड़ी-भर के ही मेहमान है।

और मुनि जब भोजन कर चुके तो इलवल ने पुकारा—"वातापी ! आओ, भाई, जल्दी आओ। देर मत करना, नही तो कही ऋषि तुझे हजम न कर जाय।"

यह सुन अगस्त्य बोल उठे—"वातापी ! अब आने की जल्दी न कर। ससार की भलाई के लिए तू हजम कर लिया गया है।" कहते-कहते मुनि ने जोर की डकार ली और अपने पेट पर हाथ फेरा।

इलवल घबरा गया। चिल्ला-चिल्ला कर भाई का नाम लेकर पुकारने लगा, लेकिन वातापी जीवित हो तो आवे।

अगस्त्य मुनि मुस्कराकर बोले—"क्यो व्यर्थ को अपना गला फाड रहे हो। वातापी तो कभी का हजम हो चुका है।"

असुर अगस्त्य मुनि के पैरो पर गिर पडा और क्षमा मागी तथा जितने धन की उन्हे इच्छा थी उनके चरणो मे लाकर रख दिया। ऋषि ने उसे क्षमा कर दिया, धन लेकर आश्रम लौटे और लोपामुद्रा की इच्छा पूर्ण की।

अगस्त्य ने लोपामुद्रा से पूछा—"तुम्हे अच्छे-अच्छे दस पुत्र चाहिए या दस को हराने योग्य एक ?"

लोपामुद्रा ने कहा—"नाथ ! मुझे एक ही ऐसा बेटा चाहिए जो यशस्वी हो, विद्वान् हो और धर्म पर अटल रहे।"

कथा है कि लोपामुद्रा के ऐसा ही एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

●

अगस्त्य मुनि की एक कथा और है—

एक बार विन्ध्याचल को मेरु पर्वत की ऊचाई देखकर ईर्ष्या हो गई और वह स्वयं भी मेरु जितना ऊचा होने की इच्छा से बढने लगा। बढते-बढते विध्याचल इतना ऊचा हो गया कि सूर्य और चन्द्रमा की गति के रुक जाने का डर हो गया। देवताओ ने अगस्त्य मुनि से इस सकट से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना की। अगस्त्य ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे विन्ध्याचल के पास गये और बोले—"पर्वत-श्रेष्ठ !

जरा मुझे रास्ता दीजिए। एक आवश्यक कार्य से मुझे दक्षिण-देश जाना है। मुझे रास्ता दे दीजिए और मेरे लौट आने तक रुके रहियेगा। उसके बाद आप बढ़ सकते है।"

विन्ध्याचल की अगस्त्य पर बड़ी श्रद्धा थी। इस कारण अगस्त्य का अनुरोध मानकर अपनी बढ़ती रोक ली। अगस्त्य दक्षिण-देश चले तो गये, किन्तु वापस न लौटे। और विन्ध्याचल उनकी बाट देखता हुआ आज तक रुका पड़ा है और बढ़ने नही पाता ! इस प्रकार अगस्त्य मुनि दक्षिण देश में ही बस गये।

: ३१ :

ऋष्यशृंग

कुछ लोगों का खयाल है कि बच्चो को विषय-सुख का जरा भी ज्ञान न होने दिया जाय तो वे पक्के ब्रह्मचारी बन सकते है। लेकिन यह गलत खयाल है। इस ढग से तो जिस किले का बचाव किया जाता है, वह सहज ही मे दुश्मन के हाथ 'आ जाता है। इसपर प्रकाश डालने वाली बडी रोचक कथा महाभारत और रामायण में कही गई है। महा-भारत के अनुसार लोमश ऋषि ने यह कथा पाण्डवो को विस्तारपूर्वक सुनाई—

महर्षि विभाण्डक ब्रह्मा के समान तेजस्वी थे। उनके पुत्र ऋष्य-शृंग थे। उनके साथ वह बन मे अकेले रहा करते थे। ऋष्यशृग ने अपने पिता के सिवा और किसी मनुष्य को नही देखा था। स्त्रियो के तो अस्तित्व का भी उन्हें पता न था। इस भाति ऋष्यशृग बचपन से ही विशुद्ध ब्रह्मचारी रहे।

●

एक बार अंग-देश मे भारी अकाल पडा। बारिश न होने के कारण सब फसलें सूख गईं। लोग भूख और प्यास के मारे तड़प-तडप कर मरने लगे। चौपायो के भी कष्ट की सीमा न रही। अकाल को

यों देश पर हावी होते देखकर अंग-नरेश रोमपाद बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने ब्राह्मणों से सलाह ली कि प्रजा का यह दु.ख कैसे दूर किया जाय। ब्राह्मणों ने कहा--"राजन् ! ऋष्यश्रृंग नाम के एक ऋषि-कुमार है। ब्रह्मचर्य-व्रत पर अटल है, यहां तक कि उन्हें स्त्रियों के अस्तित्व तक का भी पता नही। उन्हें अगर आप राजधानी मे बुला सके तो उन महातपस्वी के राजधानी मे पदार्पण करते ही वर्षा होने लग जायगी।"

यह सुनकर राजा रोमपाद अपने मन्त्रियो से सलाह करने लगे कि ऋषि-कुमार ऋष्यश्रृंग को ऋषि विभाडक के आश्रम से राजधानी में कैसे बुलाया जाय। उनकी सलाह से राजा ने शहर की कुछ सुन्दरी वारागनाओ को बुलाकर आज्ञा दी कि वे वन में जाकर किसी-न-किसी उपाय से ऋषि-कुमार को हर लावे।

गणिकाए बडे असमजस मे पड गईं। राजाज्ञा को न मानना दण्ड को न्योता देना था और अगर मानती तो उधर ऋषि विभाण्डक के शाप का डर था। करें तो क्या करे? आखिर विवश होकर उन्हें राजा की आज्ञा माननी ही पडी। राजा ने काफी धन और साज-सामान देकर उन्हे विदा किया।

वारागनाओ की इस टोली की नायिका बडी चतुर थी। उसने एक सुन्दर बजरा बनवाया। उसमे उसने एक छोटा-मोटा बगीचा भी लगा दिया। पेड-पौधे, झाड़-झखाड सब नकली थे, फिर भी देखने से जरा भी पता नही चलता था कि यह बगीचा नही, बजरा है। इस बगीचे के बीच मे एक आश्रम बना दिया गया। जब सब तैयारिया हो चुकी तो बजरा चलाती हुई सब गणिकाएं विभाडक के आश्रम के नजदीक जा पहुची। बजरा वही किनारे के पेड से खूब सटाकर बाध दिया। इसके बाद डरी और सहमी हुई वे ऋषि के पास जा पहुंचो।

ऋषि विभाण्डक उस समय आश्रम के अन्दर नही थे। बाहर कही गये हुए थे। मौका देखकर उन गणिकाओ में से जो सबसे सुन्दर थी वह आश्रम के अन्दर चली गई। ऋषि-कुमार ऋष्यश्रृंग आश्रम में अकेले थे।

"ऋषि-कुमार आप सकुशल तो है ? फल-फूल तो आपको काफी मिल रहे है न ? वन मे ऋषियों की तपस्या कुशल-पूर्वक हो रही है न ? आपके पूज्य पिता का तप-तेज बढ ही तो रहा है ? वेदाध्ययन ठीक से चल रहा है न ?" गणिका तरुणी ने ऋषियो की-सी बोलचाल मे कुशल-प्रश्न किये।

अतिथि का सौन्दर्य, सुकुमार शरीर और सुमधुर कण्ठध्वनि भोले मुनिकुमार के लिए बिलकुल नई थी। यह सब देख-सुन उनके मन मे एक नई उमग जाग्रत हुई। स्वाभाविक वासना सजग हो उठी। वे अपने उद्वेग को रोक न सके। उन्होने यही समझा था कि यह भी कोई ऋषि-कुमार ही होगा, पर उनके मन मे न जाने क्यो कुछ गुदगुदी-सी पैदा हो गई।

"आपके शरीर से आभा-सी फूट रही है। आप कौन है ? मै आपको प्रणाम करता हू। आपका आश्रम कहा है ? आप कौन-सा व्रत धारण किये हुए हैं ? स्त्री और पुरुष का भेद न जानने वाले भोले ऋष्यशृंग ने उस तरुणी गणिका से पूछा और उठकर आगन्तुक अतिथि के पाव धोये, अर्घ्य दिया और उसका हर तरह से आदर-सत्कार किया।

तरुणी ने मीठे स्वर मे कहा—"यहा से तीन योजन की दूरी पर हमारा आश्रम है। मै वहा से ये फल लाया हूं। आप मुझे प्रणाम न करे। मै इस योग्य नही हू। हमारा नमस्कार करने का ढग निराला है। चाहता हू कि उसी ढग से आपको नमस्कार करू।"

ऋषि-कुमार उसके हाव-भाव और मधुर स्वर से मुग्ध होकर देखते रहे कि इतने मे वह गणिका नगर से लाये हुए विविध पकवान, मोदक आदि उन्हे खिलाने लगी। उसके बाद सुगधित तथा रग-बिरंगी फूल की मालाए पहना दी और तरह-तरह के पेय पदार्थ भी पीने को दिये। उसके बाद उसने ऋषि-कुमार का आलिगन करके चुबन कर लिया और हंसकर बोली, "यही हमारा नमस्कार करने का ढग है ऋषि-कुमार !"

इस प्रकार ऋषि-कुमार और वह गणिका-सुन्दरी हास-विलास कर रहे थे कि उस तरुणी को खयाल आया कि अब ऋषि विभाण्डक के

लौटने का वक्त हो गया है। वह कुछ चंचल हो उठी और ऋषि-कुमार से बोली--"अब बहुत देर हो गई। अग्निहोत्र का समय हो आया। अब मुझे चलना चाहिए। कभी आप भी हमे अनुगृहीत करे।"

इस प्रकार कहकर वह गणिका जल्दी से आश्रम से खिसक गई।

उधर विभाण्डक ऋषि आश्रम लौटे तो वहा का हाल देखकर चौक पडे। हवन-सामग्रिया इधर-उधर बिखरी पडी थी। आश्रम साफ नही किया गया था। लताएं और पौधे टूटे पडे थे और उनके पत्ते इधर-उधर बिखडे पडे थे। ऋषिकुमार का मुख मलिन था। हमेशा की भाति उसमे ब्रह्मचर्य का तेज नही था। काम-वासना के कारण वे उद्भ्रात से मालूम होते थे।

"बेटा, होम के लिए लकडिया (समिधा) क्यो नही लाये? इन कोमल पौधो को किसने तोड़ डाला? आहुति के लिए दूध-दही लिया या नही? यहा तुम्हारी सेवा-टहल के लिए कोई आया था क्या? तुम्हे यह अद्भुत फूलो का हार किसने पहनाया? बेटा, तुम्हारे मुख पर मलिनता क्यो छाई हुई है?" विभाण्डक ने आतुर होकर पूछा।

भोले ऋषिकुमार ने उत्तर दिया--"पिताजी, अलौकिक रूप वाले कोई एक ब्रह्मचारी कही से आये हुए थे। उनका तेज, उनकी मधुर बोली और उनके अद्भुत रूप का वर्णन मै कैसे करू? उनकी बातो और उनके नेत्रो ने मेरी अन्तरात्मा मे न जाने कैसा अवर्णनीय आनन्द और स्नेह भर दिया है। जब उन्होने मुझे अपनी कोमल बाहो मे आलिगन मे ले लिया तब मुझे ऐसे अलौकिक सुख का अनुभव हुआ जो कि इन फलो को खाने मे भी नही हुआ था।" भोले-भाले ऋष्यश्रृग इस प्रकार उस गणिका की वेशभूषा और व्यवहार आदि का वर्णन करने लगे। वे भ्रमवश उसे ब्रह्मचारी ही समझे हुए थे। बोले--

"मेरा सारा शरीर मानो जल रहा है। मेरे मन मे उस ब्रह्मचारी के पीछे-पीछे जाने की प्रबल इच्छा उठती है। आप भी उन्हे यहा बुलाइयेगा पिताजी? उनका तेज और उनके व्रत की महिमा मै आपको कैसे बताऊ? उनको फिर देखने को मेरा जी ललचा रहा

है ।" इस प्रकार ऋष्यश्रृंग की बातें धीरे-धीरे इस हद तक पहुच गईं कि वे रोने-कलपने लगे ।

विभाण्डक को सब बाते धीरे-धीरे समझ मे आ गईं। उन्होंने पुत्र को समझाकर कहा—"बेटा, यह किसी राक्षस की माया है। राक्षस लोग हमेशा तपस्या में विघ्न डालने की ताक में रहते है। तपस्या भग करने का कोई प्रयत्न उठा नही रखते। तरह-तरह की चाले चलते हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए। उन्हें पास भी न फटकने देना चाहिए।"

इसके बाद विभाण्डक कुचक्र रचनेवालो की तलाश में तीन दिन तक फिरते रहे और जगल की चप्पा-चप्पा भूमि छान डाली। फिर भी वहा उन्हे कोई न मिला। हताश होकर वे आश्रम लौट आये।

कुछ दिन बाद ऋषि विभाण्डक फिर एक बार फल-मूल लाने जगल में दूर निकल गये। इतने मे फिर वही गणिका ऋष्यश्रृग के आश्रम की ओर धीरे से आई। उसे दूरी से देखते ही ऋष्यश्रृंग उसकी ओर ऐसे झपटे जैसे बाध के अचानक टूट जाने पर पानी प्रबल वेग से प्रवाहित होता है।

"तेजोमय ब्रह्मचारी! चलो, चलो। पिताजी के आने से पहले ही हम तुम्हारे आश्रम मे चले चले।" ऋष्यश्रग ने कहा और बिना बुलाये ही वे उस गणिका के साथ हो लिये।

नकली आश्रम वाला बजरा नदी के किनारे बधा था। दोनो जने उसपर चढ़ गये। ऋष्यश्रृग के बजरे पर चढते ही गणिकाओ ने उसे खोल दिया और वेग से उसे अग-नरेश की राजधानी की ओर खेने लगी। रास्ते मे कितने ही मनोरंजक दृश्यो से ऋषिकुमार का मन बहलाती हुई गणिका सुन्दरिया उन्हे अग-नरेश की सभा मे ले आईं।

अंग-नरेश रोमपाद के आनन्द की सीमा न रही। ऋष्यश्रृंग के पदार्पण करते ही सारे देश मे खूब वर्षा होने लगी। सूखी झील और ताल-तलैये लबालब भर गये। खेत लहलहा उठे। नदिया उमड़ पड़ी। प्रजा आनन्द मनाने लगी।

रोमपाद ने ऋषि-कुमार को रनवास में ठहराया और उनकी सेवा-टहल के लिए दास-दासिया नियुक्त कर दी। बाद में अपनी पुत्री शान्ता का विवाह भी ऋष्यश्रृंग के साथ कर दिया।

राजा की सभी कामनाएं तो पूरी हो गईं; किन्तु इस बात का भय बना रहा कि ऋषि विभाण्डक अपने पुत्र की खोज मे आकर कहीं मुझे शाप न दे दें। मंत्रियो से सलाह करके राजा ने यह प्रबन्ध किया कि विभाण्डक के क्रोध को शात करने का हर तरह का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए राजा ने जंगल से लेकर राजधानी तक के तमाम रास्ते पर जहा-तहा सैकडो की सख्या मे ग्वालो को गाय-बैलो के साथ ठहरा दिया। ग्वालों को कहा गया कि महर्षि विभाण्डक इस रास्ते से आनेवाले है। उनका खूब आदर-सत्कार करना और कहना—"ये खेत, गाय-बैल आदि सब आप ही के पुत्र की सम्पत्ति है। हम सब आप ही के अनुचर है। हमे आज्ञा कीजिये! आपके लिए हम क्या करे?" ऐसा कह-सुन कर हर तरह से मुनि के क्रोध को शात करने की सब लोग कोशिश करना।

उधर विभाण्डक ऋषि जब आश्रम लौटे तो पुत्र को वहा न पाकर बड़े घबराये। उन्होंने सारा वन छान डाला; पर कुमार का पता न चला। इससे वे क्रोध से भर उठे। उन्हे विचार आया कि हो-न-हो यह अग-देश के राजा की करतूत होगी। यह विचार आया कि ऋषि तुरत ही रोमपाद राजा की राजधानी की ओर रवाना हो गये। वे नदियो और गावों को पार करते हुए आगे बढने लगे। क्रोध के कारण ऋषि की आंखे लाल हो रही थी, मानो अग-नरेश को जलाकर भस्म ही कर देंगे।

किन्तु रोमपाद की आज्ञानुसार रास्ते मे ग्वालो ने खूब दूध पिलाकर और मीठे वचनो से ऐसा स्वागत किया कि राजधानी में पहुचते-पहुचते ऋषि का क्रोध नही के बराबर रह गया।

रोमपाद के राजभवन मे पहुचकर विभाण्डक ने देखा, ऋष्यशृंग भवन मे उस प्रकार विराजमान है जैसे स्वर्ग मे इन्द्र। उनके बगल में रोमपाद की राजकुमारी—ऋष्यशृंग की पत्नी—विराजमान थी। उसकी शोभा अनोखी ही थी।

यह सब देखकर विभाण्डक बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया और बेटे से बोले—"इस राजा की जो भी इच्छा हो पूरी करना! एक पुत्र होने के बाद जगल में लौट आना।" ऋष्यशृंग ने ऐसा ही किया।

लोमश मुनि युधिष्ठिर से कहते हैं—"नल के साथ दमयन्ती, वसिष्ठ के साथ अरुन्धती, राम के साथ सीता, अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा और युधिष्ठिर, तुम्हारे साथ द्रौपदी की भांति ऋष्यशृंग के साथ राजकुमारी शान्ता भी बाद में वन में चली गई। वन में उसने ऋष्यशृंग की बड़े प्रेम के साथ सेवा-टहल की और उनकी तपस्या में भी भाग लिया। यह वही स्थान है जहां किसी समय ऋष्यशृंग का आश्रम था। इस नदी में स्नान करो और पवित्र होओ।"

पांडवो ने बड़ी श्रद्धा के साथ उस तीर्थ में स्नान-पूजा की।

: ३२ :

यवक्रीत की तपस्या

महर्षि लोमश के साथ तीर्थाटन करते हुए पांडव गंगा-किनारे रैभ्य मुनि के आश्रम मे पहुंचे। लोमश ऋषि ने पांडवो को उस स्थान की महिमा बताते हुए कहा—

"युधिष्ठिर! यही वह घाट है जहा दशरथ-पुत्र भरत ने स्नान किया था। वृत्रासुर को धोखे से मारने के कारण इन्द्र को ब्रह्म-हत्या का जो पाप लगा था, उसका यही प्रक्षालन हुआ था। सनत्कुमार को यहीं सिद्धि प्राप्त हुई थी। सामने जो पहाड़ दिखाई दे रहा है उसी पर देव-माता अदिति ने सन्तान की कामना से तपस्या की थी। युधिष्ठिर! इस पवित्र पर्वत पर चढ़कर अपने यशो-पथ के विघ्नो को दूर करलो! इस गंगा के सतत-प्रवाही जल में स्नान करने से अदर का अहंकार तुरत धुल जाता है।" इस प्रकार ऋषि उस स्थान की पवित्रता की महिमा पांडवों को विस्तार से बताने लगे।

वे फिर बोले—"और सुनो। ऋषि-कुमार यवक्रीत का यही पर नाश हुआ था।" इस भूमिका के साथ यवक्रीत की कथा कहना शुरू किया—

भरद्वाज और रैभ्य दो तपस्वी जंगल में पास-पास आश्रम बनाकर रहते थे। दोनों में गहरी मित्रता थी। रैभ्य के दो लड़के थे—परावसु और अर्वावसु। पिता और पुत्र सब वेद-वेदांगों के पहुंचे हुए विद्वान् माने जाते थे। उनकी विद्वत्ता का यश खूब फैला हुआ था।

भरद्वाज तपस्या में ही समय बिताते थे। उनके एक पुत्र था जिसका नाम था यवक्रीत। यवक्रीत ने देखा कि ब्राह्मण लोग रैभ्य का जितना आदर करते है उतना मेरे पिता का नही करते। रैभ्य और उनके लड़कों की विद्वत्ता के कारण लोगो में उनकी बड़ी इज्जत होती देखकर यवक्रीत के मन में जलन पैदा हो गई। ईर्ष्या के कारण उसका शरीर जलने लगा।

●

अपनी अविद्या को दूर करने की इच्छा से यवक्रीत ने देवराज इंद्र की तपस्या शुरू की। आग में अपने शरीर को तपाते हुए यवक्रीत ने अपने-आप को और देवराज को बड़ी यातना पहुचाई। आखिर यवक्रीत की कठोर तपस्या देखकर देवराज को दया आई। उन्होंने प्रकट होकर यवक्रीत से पूछा—"किस कारण यह कठोर तप कर रहे हो ?"

यवक्रीत ने कहा—"देवराज, मुझे सपूर्ण वेदो का ज्ञान अनायास ही हो जाय और वह भी ऐसे कि जिनका अबतक किसी ने अध्ययन न किया हो। गुरु के यहां सीख तो सकता हू; पर कठिनाई इस बात की है कि एक-एक छन्द को रटना पडता है और कई दिनो तक कष्ट उठाना पड़ता है। चाहता हूं कि बिना आचार्य के मुख से सीखे ही मैं भारी विद्वान् बन जाऊं। मुझे अनुगृहीत कीजिए।"

यह सुन इन्द्र हस पडे। बोले—"ब्राह्मण-कुमार! तुम उलटे रास्ते चल पड़े हो। अच्छा यही है कि किसी योग्य आचार्य के यहा जाकर शिष्य बनकर रहो और अपने परिश्रम से वेदो का अध्ययन करके विद्वान् बनो।" कहकर इन्द्र अन्तर्द्धान हो गये।

किन्तु भरद्वाज-पुत्र ने इसपर भी अपना हठ न छोडा। उसने और भी घोर तप करना शुरू कर दिया। उसकी कठोर तपस्या के कारण देवताओं को बडी तकलीफ पहुंची। देवराज फिर प्रकट हुए और यवक्रीत से बोले—"मुनि-कुमार! तुमने बगैर सोचे-समझे यह हठ पकडा है। तुम्हारे पिता वेदों के ज्ञाता है। उनसे तुम वेद सीख सकते हो। जाओ और आचार्य से वेद सीखकर पण्डित बनो। शरीर को व्यर्थ कष्ट न पहुचाओ।"

इन्द्र के दुबारा आग्रह करने पर भी यवक्रीत ने अपना हठ न छोड़ा। उसने कहा—"यदि मेरी कामना को आप पूरा न करेंगे तो मैं अपने शरीर

का एक-एक अंग काटकर जलती आग मे छोडूगा जबतक कि मेरी इच्छा पूरी न कर दें।"

यवक्रीत की विलक्षण तपस्या जारी रही। इसी बीच एक दिन जब वह गंगा-स्नान करने जा रहा था कि रास्ते में एक बूढे को गंगा के किनारे पर बैठे-बैठे किनारे पर से बालू की मुट्ठी भर के गंगा की बहती धारा मे फेंकते देखा।

उसे बडा आश्चर्य हुआ। बोला—"यह क्या कर रहे हो, बूढे बाबा?"

बूढे ने कहा—"गंगा पार करने में लोगों को बडा कष्ट होता है। सोचता हू कि रेत डालकर गगा के उस पार तक एक बाध बना दिया जाय जिससे लोगो को आने-जाने मे सहूलियत हो जाय।"

यह सुनकर यवक्रीत हस पडा। बोला—"बूढे बाबा! यह भी कभी हो सकता है कि बहती धारा में रेत डालकर बाध लगाया जाय, बेकार का परिश्रम है यह तुम्हारा! कुछ और काम करो तो ठीक।"

बूढे ने कहा—"क्यो, मेरा यह परिश्रम बेकार का क्यो है, आप भी तो बगैर सीखे ही वेदो का पार पाने के लिए तप कर रहे है! उसी भाति मैं भी गंगा पर बाध बाधने की कोशिश कर रहा हू।"

यवक्रीत समझ गया कि यह बूढा और कोई नही, स्वय इन्द्र हैं और उसे सीख देने के निमित्त ही यह कर रहे हैं। उसे ज्ञान हो गया। नम्रता से वह बोला—"देवराज! अगर आपके निकट मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ है तो फिर मुझे ऐसा वर दीजिये कि जिससे मैं भारी विद्वान् बन जाऊं।"

इन्द्र बोले—"तथास्तु! अभी से जाकर वेदो का अध्ययन शुरू कर दो। समय पाकर तुम बडे विद्वान् बन जाओगे।"

वर पाकर यवक्रीत आश्रम लौट आया।

: ३३ :

यवक्रीत की मृत्यु

इन्द्र से वरदान पाकर यवक्रीत ने वेदो का अध्ययन करके भारी विद्वत्ता प्राप्त कर ली। उसे इस बात का बड़ा गर्व हो गया कि इन्द्र के वरदान से मुझे वेदो का ज्ञान हुआ है। उसका इस प्रकार डीगें मारना उसके पिता भरद्वाज को अच्छा न लगा। उन्हे डर हुआ कि कही मित्र रैभ्य का अनादर करके यह नाश को न पहुंच जाय।

भरद्वाज ने बेटे को बहुत समझाया कि इस प्रकार गर्व करना ठीक नही। वे बोले–"बेटा! देवताओ से वरदान पाना कोई बड़ी बात नहीं। नीच लोग भी हठ पकड़ कर तपस्या करने लग जाते हैं तो विवश होकर देवताओ को वरदान देना ही पडता है। पर इससे वर पानेवालों की बुद्धि फिर जाती है। वे गर्वीले हो जाते हैं और फिर उस घमड के कारण शीघ्र ही उनका विनाश भी हो जाता है।" और अपनी बात की पुष्टि में पुराणों मे से एक दृष्टान्त देते हुए भरद्वाज ने यह कथा सुनाई—

पुराने समय मे बलाधि नाम के एक यशस्वी ऋषि थे। उनके एक पुत्र था जिसकी छोटी उम्र मे ही मृत्यु हो गई थी। पुत्र के विछोह से व्यथित होकर ऋषि ने एक अमर पुत्र की कामना करते हुए घोर तपस्या की।

देव प्रकट होकर ऋषि से बोले–"मनुष्य-जाति अमरत्व को प्राप्त नहीं कर सकती। मनुष्य की आयु की सीमा निश्चित होती है। सो आप अपनी सन्तान की आयु की कोई हद निश्चित कर दे।"

ऋषि ने सोच कर कहा–"तो फिर ऐसा वर दीजिये कि जबतक वह सामने का पहाड़ अचल रहेगा तबतक मेरा पुत्र भी जीवित रहेगा।" देवताओं ने "तथास्तु" कह कर वर दे दिया।

उचित समय पर ऋषि के एक पुत्र हुआ जिसका नाम मेधावी रक्खा गया।

मेधावी को इस बात का बड़ा गर्व था कि मेरे प्राणो को कोई कुछ क्षति नही पहुंचा सकता। मै पहाड़ के समान अचल रहूंगा। इस घमण्ड के कारण वह सबके साथ बडी ढिठाई से पेश आता। किसी को कुछ समझता ही नही था।

एक दिन धनुषाक्ष नाम के किन्ही महात्मा की मेधावी ने अवहेलना की। धनुषाक्ष ने क्रुध होकर शाप दे दिया–"तू भस्म हो जा!"

किन्तु आश्चर्य! ऋषि-कुमार मेधावी पर शाप का जरा भी प्रभाव न हुआ। वह अचल खडा रहा। देखकर ऋषि विस्मित रह गये। अचानक धनुषाक्ष को मेधावी को मिले वरदान की याद आई और तुरन्त अपने तपोबल से जंगली भैसे का रूप धारण करके पहाड पर झपट कर सीग से ऐसी टक्कर मारी कि पहाड़ देखते-देखते उखड़ गया और उसी क्षण मेधावी के भी प्राण-पखेरू उड़ गये। उसका मृत शरीर धडाम से जमीन पर गिर पडा।

"इस आख्यायिका से सबक लो और वरदान पाने का गर्व मत करो। अपने विनाश का स्वयं ही कारण न बनो। शिष्टता और नम्रता का व्यवहार करो और महात्मा रैभ्य से छेड-छाड न करो।" भरद्वाज ने यवक्रीत को सावधान करते हुए कहा।

●

वसन्त की सुहावनी ऋतु थी। पेड-पौधे और लताए रंग-बिरंगे फूलो से लदी थी। सारा वन-प्रदेश सौन्दर्य से सुशोभित था। संसार भर में कामदेव का राज हो रहा था।

रैभ्य मुनि के आश्रम की फुलवारी में परावसु की पत्नी घूम रही थी। पवित्रता, सौदर्य एवं धैर्य की पुतली वह तरुणी, किन्नर-कन्या-सी प्रतीत हो रही थी। इतने में दैवयोग से यवक्रीत उधर से आ निकला। परावसु की पत्नी पर उसकी नजर पड़ी। देखकर वह मुग्ध हो गया। उसके मन मे कुवासना जाग उठी।

वासना से यवक्रीत का मस्तिष्क फिर गया। उसने परावसु की पत्नी को पुकारा–"सुन्दरी! इधर तो आओ।" ऋषि-पत्नी उसकी भावभंगी और बातों से लज्जित और आश्चर्य-चकित रह गई; परन्तु फिर भी यवक्रीत

शाप न दे बैठे, इस भय से उसके पास चली गई। यवक्रीत की बुद्धि तो ठिकाने न थी। कामवश होकर वह अपने पर से अधिकार खो बैठा था। उसने ऋषि-पत्नी को अकेले में ले जाकर उसके साथ दुराचार किया।

रैभ्य मुनि जब आश्रम लौटे तो अपनी बहू को बहुत दुखी और रोते हुए देखा। पूछने पर उन्हें यवक्रीत के कुत्सित व्यवहार का पता लगा। यह जानकर उनके क्रोध की सीमा न रही। वे आपे से बाहर हो गये। गुस्से में अपने सिर का एक बाल तोड़कर उसे अभिमन्त्रित करके होमाग्नि में डाला। वेदी से एक ऐसी कन्या निकली जो ऋषि की बहू के समान सुन्दरी थी।

मुनि ने एक और बाल चुनकर अग्नि मे डाला तो एक भीषण रूप वाला दैत्य निकल आया। दोनों को रैभ्य ने आज्ञा दी कि जाकर यवक्रीत का वध करें। दोनो पिशाच 'जो आज्ञा' कहकर वहा से रवाना हो गए।

यवक्रीत प्रातःकर्म से निवृत्त हो रहा था। इतने में रूपवती डाइन ने उसके साथ खिलवाड करके उसका मन मोह लिया और चुपके से उसका कमण्डल लेकर खिसक गई। इसी समय पिशाच भाला तानकर ऋषि-कुमार पर झपटा।

यवक्रीत हडबड़ा कर उठा। उस अवस्था में वह शाप भी नही दे सकता था। उसने पानी के लिए कमण्डल की तरफ देखा तो वह नदारद। बडा घबराया और पानी की तलाश में तालाब की ओर भागा। तालाब भी सूखा पडा था। पासवाले झरने की ओर भागा तो उसमें भी पानी नहीं था। जिस किसी भी जलाशय के पास गया उसे सूखा पाया। पिशाच भीषणरूप से उसका पीछा कर रहा था। डर के मारे यवक्रीत भागा-भागा फिर रहा था। उसका तपोबल तो नष्ट हो ही चुका था। कोई चारा न पाकर आखिर उसने अपने पिता की यज्ञशाला के अन्दर घुसने की कोशिश की। यज्ञशाला के द्वार पर जो द्वारपाल खड़ा था वह काना था। यवक्रीत भय के मारे चिल्लाता हुआ भागा आ रहा था। द्वारपाल उसे पहचान न सका और उसे रोक दिया। इतने में ही पिशाच पास पहुच गया और यवक्रीत पर तान कर भाला मारा। यवक्रीत वही ढेर होकर गिर पडा।

भरद्वाज आश्रम में आये तो देखा कि यज्ञशाला तेजविहीन है। द्वार पर उनका पुत्र मरा पड़ा है। उन्होंने समझ लिया कि रैभ्य की अवहेलना करने के कारण ही यवक्रीत ने यह दण्ड पाया है। पुत्र को मरा देखकर उनसे न रहा गया। उन्हें रैभ्य मुनि पर बड़ा क्रोध आया। आखिर पिता जो ठहरे !

शोक-संतप्त होकर विलाप करने लगे—"अरे बेटा, यह क्या कर लिया तुमने ? क्या अपने घमण्ड की ही बलि चढ गये ? अरे, यह कोई भारी पाप था जो तुमने सब वेद सीख लिये जो किसी ब्राह्मण को नही आते थे ! फिर इसके लिए तुम्हे क्यों शाप दिया गया ? रैभ्य ने मेरे इकलौते बेटे को मुझसे निर्दयता से छीन लिया है। तो मैं फिर क्यो चुप रहूं ? मै भी शाप देता हूं कि रैभ्य भी अपने ही किसी बेटे के हाथो मारा जायगा !"

पुत्रशोक और क्रोध के कारण भरद्वाज बिना सोचे-समझे और जाच-पडताल किये अपने मित्र को इस प्रकार शाप दे बैठे। पर जब उनका क्रोध शात हुआ तो उनको बडा पछतावा हुआ। कहने लगे—"हाय, मैंने यह क्या कर डाला ! जिसके कोई सन्तान न हो वही बड़ा भाग्यवान है। फिर एक तो मेरा बेटा मुझसे बिछुड़ा और ऊपर से अपने प्रिय मित्र को भी शाप देकर मैंने उसका अहित किया। इससे तो मेरा जीना भी बेकार है।"

यह निश्चय करके भरद्वाज मुनि ने अपने पुत्र का दाह-संस्कार करके उसी आग में आप भी कूद कर प्राण त्याग दिये।

: ३४ :

विद्या और विनय

एक बार रैभ्य मुनि के शिष्य राजा बृहद्युम्न ने एक भारी यज्ञ किया। यज्ञ करने के लिए राजा ने आचार्य रैभ्य से अपने दोनों पुत्रों को भेजने का अनुरोध किया। रैभ्य ने पुत्रों को जाने की अनुमति दे

दी। परावसु और अर्वावसु दोनों प्रसन्न होकर बृहद्युम्न की राजधानी में गये।

यज्ञ की तैयारियां हो रही थी कि इसी बीच एक दिन परावसु के जी मे आया कि जरा पत्नी से मिल आऊं। रातभर चलते-चलते सुबह पौ फटने से पहले ही वे आश्रम मे आ पहुंचे। आश्रम के नजदीक ही झाडी के पास परावसु ने एक हिंसक पशु-सा कुछ देखा और भय के मारे उनपर हथियार चला दिया। पर उसे यह देखकर महान् दुःख हुआ कि उसने हिंसक पशु का चर्म ओढे अपने पिता रैभ्य मुनि को ही मार डाला है।

धोखे मे पिता को मारने के कारण परावसु को बडा दुःख हुआ। पर भरद्वाज के शाप की याद करके मन को समझा लिया। पिता का दाह-संस्कार जल्दी से करके वह नगर को लौटे और भाई अर्वावसु को सारा हाल कहा। वह बोले—"मेरे इस पापकृत्य से राजा के यज्ञ-कार्य मे विघ्न न पडे; इसलिए मै अकेला ही यज्ञ का काम चला लूगा और तुम जाकर मेरी जगह ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर आओ। शास्त्रो में कहा है कि अनजान मे की गई हत्या का प्रायश्चित्त हो सकता है। सो तुम मेरे बदले व्रत रखो और प्रायश्चित्त पूरा करके लौट आओ। तुम अकेले यज्ञ-कार्य न चला सकोगे इसीलिए मै यह अनुरोध कर रहा हू।"

धर्मात्मा अर्वावसु ने यह बात मान ली और बोले—"ठीक है, राजा का यज्ञ आप सुचारु रूप से करा दीजिए। मै अकेले यह काम नही सभाल सकूगा। आपकी जगह ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त मै कर दूगा और व्रत समाप्त करके लौट आऊगा।"

यह कहकर अर्वावसु वन मे चले गये और विधिवत् व्रत धारण करके भाई की ब्रह्महत्या का प्राश्चित्त पूरा किया। व्रत समाप्त होने पर वह वापस यज्ञशाला मे आ गये।

पर परावसु ने हत्या तो खुद की थी और प्रायश्चित अपने भाई से करवाया था। इस कारण उनका ब्रह्महत्या का दोष न धुल सका। उसके फल-स्वरूप उनके मन मे अनेक कुविचार उठने लगे। जब उन्होने अर्वावसु को यज्ञशाला में आते देखा तो उनके मन मे ईर्ष्या पैदा हो गई। अर्वावसु के मुख-मडल से विशुद्ध ब्रह्म-तेज की आभा फूट रही थी।

परावसु यह न देख सके। अपने को वे हलका अनुभव करने लगे और डाह तो उनके मन में पैदा हो ही गया था; उन्होंने अर्वावसु पर दोषारोपण करके उन्हें अपमानित करने का विचार किया। वह चिल्लाकर राजा बृहद्युम्न से कहने लगे—"ब्रह्महत्या करनेवाला यह घातक इस पवित्र यज्ञशाला में कैसे प्रवेश कर रहा है ?"

राजा ने जब यह सुना तो अपने सेवकों को आज्ञा दी कि अर्वावसु को यज्ञशाला से बाहर कर दें।

अर्वावसु को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजा से नम्रतापूर्वक कहा—"राजन्, ब्रह्महत्या मैंने नहीं की है। मैं सच कहता हूं। असल में ब्रह्महत्या तो मेरे भाई परावसु ने की। मैंने तो उनके निमित्त प्रायश्चित किया और उनका पाप दूर किया है।" लेकिन अर्वावसु की इस बात पर किसी ने भरोसा नहीं किया और उनका अपमान करके यज्ञशाला से निकाल दिया।

और लोग भी अर्वावसु की निन्दा करने लगे। कहने लगे—"कैसा अंधेर है! एक तो ब्रह्महत्या की, उसका प्रायश्चित भी कर आये और दोष उल्टे भाई पर मढने चले!

इस प्रकार अपमानित होकर और हत्यारे कहलाकर धर्मात्मा अर्वावसु कुंठित हृदय से यज्ञशाला से चुपचाप निकल कर सीधे वन में चले गये और घोर तपस्या करने लगे।

•

देवताओं ने प्रकट होकर पूछा—"धर्मात्मा! आपकी कामना क्या है ?"

यज्ञशाला से निकलते समय अर्वावसु के मन में भाई के व्यवहार के प्रति जो क्रोध था वह अब तप और साधना से शान्त हो चुका था। सो उन धर्मात्मा ने देवताओं से प्रार्थना की कि भाई परावसु का सब दोष धुल जाये और पिता रैभ्य फिर से जीवित हो उठे।

देवताओं ने प्रसन्न होकर "तथास्तु" कहा।

लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा—"युधिष्ठिर, यही वह स्थान है जहां महा विद्वान रैभ्य का आश्रम था। पाडु-पुत्रो! गंगा के पवित्र जल में स्नान करके क्रोध से निवृत्त हो जाओ।"

अर्वावसु और परावसु दोनों एक महान् ऋषि के पुत्र थे। दोनों न उनसे बडी विद्या पाई। लेकिन विद्या एक चीज है और विनय दूसरी चीज। यह ठीक है कि मनुष्य भलाई को ग्रहण करने और बुराई से दूर रहने के लिए भले और बुरे का भेद समझ ले; परन्तु यह ज्ञान मनुष्य के विचारों में इस तरह जज्ब हो जाना चाहिए कि उसके कार्यों पर उसका प्रभाव पडे। तभी विद्या विनय बनती है। ज्ञान, जो कि दिमाग में ठुंसी हुई केवल बहुत सारी बातो की जानकारी भर होता है गुण की जगह नही ले सकता। वह तो केवल ऊपरी दिखावा मात्र होता है जैसे शरीर के ऊपर पहने जानेवाले कपडे।

: ३५ :

अष्टावक्र

लोमश के साथ तीर्थाटन करते हुए एक बार पांडव एक वन मे जा पहुंचे। उपनिषदों में वह श्वेतकेतु के आश्रम के नाम से वर्णित है। उस पवित्र वन के बारे में लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को कथा सुनाई—

महर्षि उद्दालक वेदान्त का प्रचार करनेवाले महात्माओ में श्रेष्ठ माने जाते थे। उनके शिष्यो मे से कहोड भी एक थे। कहोड़ आचार्य की खूब सेवा-टहल करते थे और बडे संयमी थे। पर लिखने-पढने में तेज न थे। इस कारण उद्दालक के दूसरे शिष्य कहोड़ की हंसी उड़ाते थे। फिर भी उद्दालक ने कहोड के शील-स्वभाव और संयम से खुश होकर अपनी कन्या सुजाता उन्हें ब्याह दी।

कहोड से सुजाता के एक पुत्र हुआ। कहते है कि वह जब गर्भ में था तभी उसको सारे वेद आते थे। किन्तु पिता कहोड तो थे अविद्वान। वेद-मन्त्रों का न तो ठीक-ठीक उच्चारण कर सकते थे, न स्वर-सहित गा ही सकते थे। इस कारण उनका गलत-सलत वेद-पाठ गर्भ के शिशु के लिए असह्य हो उठा और वह वहां टेढ़ा-मेढ़ा हो गया। टेढ़े-मेढे शरीर के कारण बच्चे का नाम अष्टावक्र पड़ गया।

अष्टावक्र ने बालकपन में ही बड़ी विद्वत्ता का परिचय दिया। जब वे बारह साल के थे तभी वेद-वेदांगों का अध्ययन पूर्ण कर चुके थे।

एक बार बालक अष्टावक्र ने सुना कि मिथिला में राजा जनक एक भारी यज्ञ कर रहे हैं जिसमे बडे-बडे पण्डितों का शास्त्रार्थ होने वाला है। वे तुरन्त अपने भानजे श्वेतकेतु को भी साथ लेकर यज्ञ के लिए चल पडे।

मिथिला नगरी पहुचकर वे यज्ञशाला की ओर जा ही रहे थे कि सडक पर से राजा जनक परिवार के साथ जाते दिखाई दिये। राज-सेवक आगे-आगे कहते जा रहे थे–"राजाधिराज जनक आ रहे है। हट जाओ, रास्ता दो, रास्ता दो।" अष्टावक्र को जब नौकरो ने रास्ते से हटने के लिए कहा तो उन्होने जवाब दिया–

"शास्त्रो मे कहा गया है कि अधे, अपाहिज, औरते और बोझा उठाने वाले जब जा रहे हो तो स्वय राजा को उनके लिए रास्ता देना चाहिए और अगर वेद पढे हुए ब्राह्मण जा रहे हो तो राजा उनको रास्ते से हटने के लिए नही कह सकता। समझे !"

बालक की गभीर बाते सुनकर राजर्षि जनक दग रह गये। वे बोले–"ब्राह्मण-पुत्र ठीक कहते है। आग के आगे छोटे-बडे का अन्तर नही होता। आग की जरा-सी चिनगारी भी सारे जगल को जला सकती है। इसलिए हट जाओ, ब्राह्मण-पुत्र को रास्ता दो।" कहकर राजा जनक ने अपने परिवार-सहित हटकर अष्टावक्र को रास्ता दे दिया।

●

अष्टावक्र और श्वेतकेतु यज्ञशाला मे प्रवेश करने लगे।

"यहा बालको का क्या काम ? वेद पढे हुए लोग ही इस यज्ञशाला मे जा सकते है।" द्वारपाल ने यह कहकर लडको को रोका। अष्टावक्र ने उत्तर दिया–"हम बालक नही है। दीक्षा लेकर वेद सीख चुके है। जो वेदान्त का पार पा गये हो उनकी आयु या बाहरी शकल-सूरत देखकर कोई उन्हे बालक नही ठहरा सकता।"और यह कहकर अष्टावक्र यज्ञशाला के अन्दर घुसने लगा।

द्वारपाल ने डाटकर कहा–"ठहरो ! अभी तुम बच्चे हो। अपने मुह बडे न बनो। उपनिषदो का ज्ञान और वेदात के तत्व जानना ऐसा-वैसा काम नही है। तुमने इसे बच्चों का खेल समझ रखा है क्या ?"

अष्टावक्र ने कहा—"देखो भाई, सेमर के फल की तरह ऊपर से मोटा-ताजा और अन्दर हल्की रुई से भरा रहना किस काम का ? शरीर की बनावट और कद से ज्ञान का अन्दाज नही किया जाता। बड़ा वह नही है जो कद का लबा हो। लबे कद का न होने पर भी अगर किसी में ज्ञान हो तो शास्त्रो मे उसे बडा माना गया है। जिसमे ज्ञान का अभाव हो, वह उम्र का चाहे बूढा ही क्यो न हो, बालक ही समझा जाता है। इसलिए बालक समझकर मुझे मत रोको।"

द्वारपाल ने फिर कहा—"तुम बालक होकर बडो की-सी बाते न करो। छोटे मुह बडी बात करना ठीक नही। क्यो व्यर्थ की बहस करते हो ?"

अष्टावक्र ने समझा कर कहा—"भाई द्वारपाल ! बालो का पक जाना उम्र के पक्की होने की निशानी नही है। किसी ऋषि ने यह नही कहा कि बूढी उमर, पके बाल, धन-दौलत और बन्धु-मित्रो की भीड के होने से ही कोई बडा बन जाता है। बडा वही होता है जो वेद-वेदागो का गहरा अध्ययन करके उनका अर्थ साफ समझा हुआ हो। मै यहा पर इसी उद्देश्य से आया हू कि महाराज की सभा के विद्वानो से मिलकर कुछ बाते करू। जाओ, महाराज जनक को मेरे आने की खबर दो और कहो कि मुनि अष्टावक्र आये है।"

द्वारपाल से इस प्रकार चर्चा हो रही थी कि महाराज जनक वहा आ पहुचे। द्वारपाल ने बालक के साहस की राजा को खबर दी। जनक ने अष्टावक्र को देखते ही पहचान लिया कि यह तो वही ब्राह्मण-बालक है जिससे सड़क पर भेट हुई थी।

वह बोले—"बालक ! मेरी सभा के विद्वान् बड़े-बडे पडितो को शास्त्रार्थ में हरा चुके है। आप तो निरे बालक हैं! आप दु:साहस क्यो करने चले है ?"

अष्टावक्र ने कहा—"आपकी सभा के विद्वानो ने शायद कुछ नामधारी पडितो को हराया होगा और इसीका उन्हे घमण्ड हो गया मालूम होता है। मैं तो यह तब सही मानूगा जब वे मेरे-जैसे वेदान्त के पहुंचे हुए विद्वान को शास्त्रार्थ में हरावे। अपनी माता के मुह मैंने सुना था कि मेरे पिताजी को आपके विद्वानों ने शास्त्रार्थ में हराकर समुद्र में डुबोया था। मैं उसीका

ऋण चुकाने यहां आया हू । आप विश्वास रखें कि मैं आपके विद्वानों को हराकर रहूंगा। मेरे शास्त्रार्थ मे हार खाकर वे उसी प्रकार लुढ़क जायंगे जैसे तेज दौड़नेवाली गाड़ी की धुरी के टूट जाने पर गाड़ी लुढ़क पडती है। अत. आप अपने विद्वानो से मेरी भेंट कराने की कृपा करें।"

मिथिला-नरेश के विख्यात पण्डित और बालक अष्टावक्र में शास्त्रार्थ शुरू हुआ। दोनो तरफ से प्रश्नो और उत्तरो की बौछार-सी होने लगी। अन्त में सभासदों को मानना पडा कि अष्टावक्र की जीत हो गई। मिथिला नगर के विद्वानो ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया। शर्त के अनुसार उन्हे समुद्र मे डुबो दिया गया और वे वरुणालय सिधारे।

अष्टावक्र के स्वर्गवासी पिता की आत्मा अपने पुत्र की प्रशसा को सुनकर आनन्दित हो उठी और उसके मुंह से ये उद्गार निकल पड़े–

"यह कोई अटूट नियम नही कि पुत्र पिता ही को पड़े। हो सकता है कि कमजोर पिता के बलिष्ठ और मन्द-मति के विद्वान पुत्र हो। किसी की शकल-सूरत या आयु को देखकर उसकी महानता का निर्णय करना ठीक नही। बाहरी रग-रूप अक्सर लोगो को धोखे मे डालता है।"

: ३६ :

भीम और हनुमान

जबसे अर्जुन दिव्य अस्त्र-शस्त्र पाने के लिए हिमालय पर तपस्या करने गये थे तबसे पाडवो और द्रौपदी के लिए दिन काटना कठिन हो गया।

अक्सर द्रौपदी करुण-स्वर में कहती–"अर्जुन के बिना मुझे यहा काम्यक वन मे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। ऐसा मालूम होता है मानो वन की सुन्दरता ही लुप्त हो गई है। सव्यसाची (अर्जुन) को देखे बिना मेरा जी घबराता है। मुझे जरा भी चैन नही पडती।"

द्रौपदी की ऐसी बाते सुनकर एक बार भीमसेन बोला–"कल्याणी! अर्जुन की याद में तुम जो बातें कहती हो, वह मुझे ऐसे आह्लादित करती

है मानो अमृत की धारा हृदय में बह रही हो। अर्जुन के बिना मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है मानों इस सुन्दर वन की शोभा ही न रही हो; मानों इसमें चारों ओर अंधेरा छाया हुआ हो। अर्जुन को देखे बिना मुझे भी चैन नहीं पड़ती। ऐसा लगता है मानो दिशाएं घने अन्धकार से आच्छादित हो गई हैं। क्यों भाई सहदेव! तुम्हें कैसा लगता है ?"

सहदेव ने कहा—"भाई अर्जुन के बिना तो सारा आश्रम सूना-सूना लग रहा है। कही और जगह चलें और उनकी याद को भूलने का प्रयत्न करें तो कैसा ?"

युधिष्ठिर ने पुरोहित धौम्य से कहा—"अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने को गये इतने दिन हो गये; वह अभी तक लौटा नही। मैंने तो उसे इसलिए हिमालय भेजा था कि वह देवराज से दिव्यास्त्र प्राप्त कर आये। अगर युद्ध हुआ तो यह तय बात है कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य धृतराष्ट्र के पुत्रो के ही पक्ष मे लड़ेगे। महारथी कर्ण भी उधर ही है। मैंने सोचा कि जब ऐसे-ऐसे महारथियो का युद्ध मे सामना करना पडे तो अच्छा हो कि अर्जुन हिमालय जाकर देवराज इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त कर आये। बिना ऐसा किये हम इन महारथियों से पार न पा सकेंगे। यह काम बडा ही कठिन है। और अर्जुन को ऐसे कठिन काम पर भेजकर हम यहा आराम से दिन बिता रहे है, यह हमे बहुत खटकता है। अर्जुन का विछोह अब हमसे नहीं सहा जाता। यहा हम उसके साथ रह चुके है, इससे उसकी बडी याद आती है। अच्छा हो, यहा से कही दूर जाकर उसके वियोग को भूलने की कोशिश करें। आप ही बताइए कि हम कहा जाय ?"

धौम्य ने अनेक जगलो और पवित्र तीर्थों के बारे में युधिष्ठिर को बताया। सबने तय किया कि कही दूर की जगहो में विचरण करके अर्जुन के विछोह का दु ख दूर करने का प्रयत्न करे। यह सोच सब धौम्य के साथ चल पड़े और तीर्थों मे घूमते हुए और हर तीर्थ की पवित्र कथा धौम्य के मुंह से सुनते हुए उन्होने कुछ वर्ष बिताये। इस भ्रमण में वे कही ऊंचे पहाड़ो पर चढते तो कही घने जंगलों को पार करते। कभी-कभी द्रौपदी थककर चूर हो जाती तो उस सुकोमल राजकुमारी की व्यथा देखकर सब और दु.खी हो जाते। ऐसे अवसरों पर भीमसेन बहादुरी से सबको धीरज

बंधाता और अपने शारीरिक बल से काम लेकर सबका श्रम दूर करता। भीमसेन की असुर स्त्री हिडिबा का पुत्र घटोत्कच भी समय-समय पर आकर उन सबकी सहायता करता रहता था।

द्रौपदी सहित पाडव हिमालय के दृश्य निहारते हुए जा रहे थे कि एक बार उनको एक भयावने जगल से होकर जाना पड़ा। रास्ता बहुत ही कठिन था। मार्ग में द्रौपदी को तकलीफे उठाते देख युधिष्ठिर का जी भर आया। वे भीमसेन से बोले—"भाई भीम, द्रौपदी से इस रास्ते नही चला जायेगा। इसलिए लोमश ऋषि के साथ मै और नकुल तो आगे बढते है और तुम व सहदेव द्रौपदी को लेकर गगा के मुहाने पर जाकर रहो। जबतक हम तीनो लौट न आय, द्रौपदी की सावधानी के साथ रक्षा करते हुए तुम वही रहना।"

किन्तु भीमसेन न माना। वह बोला—"महाराज! एक तो द्रौपदी कभी इस बात पर राजी न होगी। दूसरे, जब एक अर्जुन के विछोह का आपको इतना दु ख है तो मुझे, सहदेव को और द्रौपदी को देखे बगैर आपसे कैसे रहा जायगा? फिर राक्षसो और हिंस्र जन्तुओ से भरे इस भीषण वन मे आपको अकेला छोड जाने को भी मै कभी राजी नही होऊंगा। इसलिए हम सब साथ ही चलेंगे। अगर कही द्रौपदी को चलने मे कठिनाई मालूम होगी तो मै उसे अपने कन्धे पर बिठाकर ले चलूगा। नकुल और सहदेव को भी मै उठा ले चलूगा। आप उनकी चिन्ता न करे।"

भीमसेन की बातो से युधिष्ठिर हर्ष से फूल उठे। उन्होने भीम को छाती मे लगा लिया और आशीर्वाद दिया—"भगवान् करे, तुम्हारा शारीरिक बल हर घडी बढता ही जाय।"

इतने मे द्रौपदी मुसकराती हुई युधिष्ठिर से बोली—"आप मेरी चिन्ता न करे। मुझे उठा ले चलने की कोई आवश्यकता नही। मै अपने पैरो ही चल सकती हू।" और पाडव फिर साथ-साथ चल पड़े।

हिमालय की तलहटी मे विचरण करते हुए पाडव महाराज सुबाहु के राज्य कुलिन्द देश में जा पहुचे। महाराजा ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। कुछ दिन सुबाहु के राज्य मे ठहरकर आराम करने के बाद उन्होने फिर यात्रा शुरू कर दी और चलते-चलते नारायणाश्रम के रमणीक बन-

प्रदेश में जा पहुंचे। उस जगह के सुन्दर दृश्यों को देखते हुए वे कुछ दिन वहां रहे।

उत्तर-पूरब से मलयानिल मन्द गति से बह रहा था। सुहावना मौसम था। द्रौपदी आश्रम के बाहर खड़ी मौसम की बहार ले रही थी। इतने मे एक सुन्दर फूल हवा में उड़ता हुआ उसके पास आ गिरा। द्रौपदी ने उसे उठा लिया और वह उसकी महक और सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई। ऐसे ही कुछ और फूल पाने के लिए उसका जी मचल उठा।

भीमसेन के पास जाकर बोली—"भीम, देखा तुमने कैसा कोमल और सुन्दर फूल है यह! कैसी मनोहर सुगन्ध है इसमे! कैसी इसकी निकाई है। मै यह फूल युधिष्ठिर को भेंट करूगी। तुम जाकर ऐसे ही कुछ और फूल ला सकोगे? काम्यक वन में हम इसी फूल का पौधा लगायंगे।" यह कहती द्रौपदी हाथ मे फूल लिए युधिष्ठिर के पास दौडी गई।

अपनी प्रिय द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिए भीमसेन उस फूल की तलाश मे निकल पडा। पवन उस दैवी फूल की सौरभ लिए बह रही थी। भीमसेन उसीको सूघता हुआ उत्तर-पूरब दिशा मे अकेले आगे बढ चला। रास्ते मे कितने ही जगली जानवरो से उसका सामना हुआ। भीमसेन उनकी जरा भी परवाह न करता हुआ आगे बढता चला।

चलते-चलते वह पहाड की घाटी मे जा पहुचा जहा केले के पेडो का एक विशाल बगीचा लगा हुआ था। बगीचे के बीच एक बडा भारी बदर रास्ता रोके लेटा हुआ था। बन्दर का शरीर लाल था और उसमे से ऐसी आभा फूट रही थी मानो आग का कोई बडा गोला हो। यह देखकर भीम जोर से चिल्ला उठा।

बन्दर ने जरा आखें खोली और बडी लापरवाही से भीम की तरफ देखकर कहा—"मै कुछ अस्वस्थ हू। इसलिए लेटा हुआ हू। जरा आख लगी थी तो तुमने आकर नीद मे खलल डाल दी। मुझ सोते को क्यो जगाया तुमने? तुम तो मनुष्य हो। तुममे विवेक होना चाहिए। हम पशु है, इससे हममे तो विवेक का अभाव ह; पर तुम जैसे विवेकशील प्राणी के लिए यह उचित नहीं कि किसी जानवर को दुःख पहुचाओ;

बल्कि तुम्हें तो चाहिए था कि हम नासमझ जानवरों पर दया करते। मालूम होता है कि तुम्हे धर्म का ज्ञान नहीं है। पर जाने भी दो, यह बताओ कि तुम हो कौन? कहां जाना चाहते हो? इस पहाड़ी पर इसके आगे बढना संभव नही। यह तो देवलोक जाने का रास्ता है। कोई मनुष्य यहा से आगे जा नही सकता। तुम यहां इस वन में मन चाहे जितने फल खा सकते हो और खा-पीकर वापस लौट जाओ।"

एक बन्दर के इस प्रकार मनुष्य-जैसा उपदेश देने पर भीमसेन को बडा क्रोध आया और बोला—"कौन हो तुम जो बन्दर की-सी शकल के होने पर भी बड़ी-बडी बातें करते हो? जानते हो, मै कौन हूं? मैं हूं क्षत्रिय, कुरुवंश का वीर, कुन्ती देवी का बेटा और वायु का पुत्र। समझे! मुझे रोको मत! मेरे रास्ते से हट जाओ और मुझे आगे जाने दो।"

भीम की बाते सुनकर बन्दर जरा मुस्कराया और बोला—"ठीक है, मै हू तो बन्दर ही, पर इतना कहे देता हूं कि इस रास्ते आगे बढने की कोशिश न करना, नही तो खैर नही है।"

भीम ने कहा—"देखो जी, मैंने तुमसे कब पूछा था कि मै उधर जाऊं या नही और गया तो ठीक होगा या नही? इन बातों को छोडो और रास्ते से हट जाओ और मुझे आगे जाने दो।"

बन्दर बोला—"देखो भाई, मै तो बूढा हूं। कठिनाई से उठ-बैठ सकता हू। ठीक है, यदि तुम्हे आगे बढना ही है तो मुझे लांघकर चले जाओ।"

भीमसेन ने कहा—"शास्त्रो में किसी जानवर को लाघना अनुचित कहा गया है। इसीसे मै रुक गया, नहीं तो कभी का तुम्हे और इस पहाड़ को एक ही छलाग मे उसी प्रकार लाघकर चला गया होता जैसे हनुमान ने समुद्र को लाघा था।"

बन्दर ने कहा—"भाई, मुझ जरा बताना कि वह हनुमान कौन था जो समुद्र लांघ गया था?"

भीमसेन जरा कडक कर बोला—"क्या कहा? तुम महावीर हनुमान को नही जानते जिन्होने भगवान् रामचन्द्र की पत्नी सीता को खोजने के लिए एक सौ योजन का चौड़ा समुद्र एक छलांग में लाघ दिया

था? वे मेरे बडे भाई हैं, समझे! और यह भी जान लो कि मैं बल और पराक्रम में उन्हींके समान हूं। उठकर रास्ता दे दो, नही तो फिर मेरा क्रोध तुम्हें अभी ठिकाने लगा देगा। नाहक मृत्यु को न्योता न दो।"

बन्दर बडे करुणस्वर मे बोला—"हे वीर! शात हो जाओ! इतना क्रोध न करो। बुढ़ापे के कारण मुझसे हिला-डुला भी नही जाता। यदि मुझे लांघना तुम्हें अनुचित लगता हो तो मेरी इस पूछ को हटाकर एक ओर कर दो और चले जाओ।"

यह सुन भीम को बडी हसी आई। उसे अपनी ताकत का बडा घमंड था। सोचा कि इस बन्दर की पूछ को पकडकर ऐसे खीचूगा कि याद करेगा। यह सोचकर भीमसेन ने बन्दर की पूछ एक हाथ से पकड़ ली।

लेकिन आश्चर्य! भीम ने पूछ पकड तो ली; पर वह उससे जरा भी हिली नही—उठने की कौन कहे! उसे बडा ताज्जुब होने लगा कि यह बात क्या ह? उसने दोनो हाथो से पूछ पकडकर खूब जोर लगाया। उसकी भौहे चढ गई। आखे निकल आई और शरीर से पसीना बह चला; किन्तु पूछ जैसी-की-तैसी ही धरी रही। जरा भी नही हिली-डुली। भीम बड़ा लज्जित हुआ। उसका गर्व चूर हो गया। उसे बडा विस्मय होने लगा कि मुझसे ताकतवर यह कौन है! भीम के मन मे बलिष्ठो के लिए बडी श्रद्धा थी। वह नम्र हो गया।

बोला—"मुझे क्षमा करे। आप कौन है? सिद्ध है, गन्धर्व है, देव हैं, कौन है आप? एक शिष्य के नाते पूछता हू। आप ही की शरण लेता हू।"

हनुमान ने कहा—"हे कमलनयन पाण्डुवीर! सम्पूर्ण विश्व के प्राणाधार वायु-देव का पुत्र हनुमान मैं ही हू। भैया, भीम! यह देवलोक जाने का रास्ता है। इस रास्ते मे यक्ष और राक्षस भरे पड़े है। इस रास्ते जाने से तुमपर विपदा आने की आशका थी। इसीसे मैंने तुम्हे रोका। मनुष्य इस रास्ते नही चल सकते। फिर तुम जिस सुगधित फूल की खोज में आये हो उसके पौध तो उस सामनेवाले जलाशय के आसपास के उपवन में लहरा रहे है। चले जाओ और अपनी इच्छा भर फूल चुन लो।"

"वानर-श्रेष्ठ ! मुझसे बढकर भाग्यवान और कौन होगा जो मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए। अब मेरी केवल यही कामना है कि जिस आकार में आपने समुद्र लाघा था उसके भी दर्शन मै कर लू।" कहकर भीमसेन ने अपने बडे भाई हनुमान को दण्डवत् प्रणाम किया ।

भीम की बात पर हनुमान मुस्कराये और अपना शरीर बढ़ाकर सारी दिशाओं में व्याप्त हो गये मानो एक पहाड़ सामने खड़ा हो गया हो। भीम हनुमान के दैवी रूप के बारे मे बहुत सुन चुका था, पर अब उसने देख भी लिया। हनुमान का विशाल-काय शरीर और सूर्य की प्रभा के समान तेज न उसे चकाचौंध कर दिया। उसकी आखे आप-ही-आप मुद गईं ।

हनुमान ने अपनी बढती रोककर कहा—"भीम ! इससे और बड़ा शरीर बढाकर तुम्हे दिखाने का यह समय नही है। इतना जान लो कि शत्रुओं के सामने मेरा शरीर और भी विशाल बन सकता है।"

इसके बाद हनुमान ने अपना शरीर पहले का-सा छोटा कर लिया और भीमसेन को गले लगा लिया। महावीर मारुति के गले लगाते ही भीमसेन की सारी थकावट दूर हो गई और वह पहले से भी ज्यादा बलशाली हो गया ।

हनुमान प्रसन्न होकर बोले—"वीरवर भीम, अब तुम अपने आश्रम लौट जाओ। समय पडने पर मेरा स्मरण करना। तुम्हारे इस मनुष्य-शरीर को जब मैंने गले लगाया तो मुझे वह आनन्द प्राप्त हुआ जो उन दिनो भगवान् रामचन्द्र के स्पर्श से हुआ करता था। भाई, जिस वर की इच्छा हो मुझसे मागो ।"

"हे महावीर, मुझे आपके दर्शन हुए, यह हम पाचो भाइयो का अहो-भाग्य था। यह निश्चित है कि आपकी सहायता से हम सभी शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर लेंगे।" भीमसेन ने श्रद्धा के साथ प्रणाम करते हुए कहा ।

मारुति ने अपने छोटे भाई को आशीर्वाद देते हुए कहा—"भीम ! जब तुम लडाई के मैदान मे सिह की भाति गरजोगे तब मेरी भी गर्जना तुम्हारी गर्जना के साथ मिलकर शत्रुओ के हृदयो को हिला दिया करेगी।

युद्ध के समय तुम्हारे भाई अर्जुन के रथ पर उड़नेवाली ध्वजा पर मैं विद्यमान रहूंगा। विजय तुम्हारी ही होगी।"

इसके बाद हनुमान ने भीमसेन को पास के झरने मे जो सुगंधित फूल खिल रहे थे, जाकर दिखाये।

फूलो को देखते ही भीमसेन को वनवास का दुःख झेलती हुई द्रौपदी का स्मरण हो आया। उसने जल्दी से फूल तोडे, महावीर को फिर प्रणाम किया और आश्रम की ओर वेग से लौट चला।

: ३७ :

"मैं बगुला नहीं हूं"

पाण्डवो के वनवास के समय एक बार मार्कण्डेय मुनि पधारे। इस अवसर पर बातचीत के दौरान मे युधिष्ठिर स्त्रियो के गुणो की बड़ी प्रशसा करते हुए बोले—

"स्त्रियो की सहनशीलता और सतीत्व से बढकर आश्चर्य की बात ससार मे और क्या हो सकती है? बच्चे को जन्म देने से पहले स्त्री को कितना असह्य कष्ट उठाना पडता है। दस महीने तक वह बच्चे को अपनी कोख मे पालती है। अपने प्राणो को जोखिम मे डालकर, अवर्णनीय पीडा सहकर बच्चे को जन्म देती है। उसके बाद कितने प्रेम से उस बच्चे को पालती है। उसे सदा यही चिन्ता लगी रहती है कि मेरा बच्चा कैसा होगा! पति के अत्याचारी होने पर भी, उसके घृणा करने पर भी, स्त्री उसके सारे अत्याचार चुपचाप सह लेती है और उसके प्रति अपने मन की श्रद्धा कभी कम नही होने देती। यह एक आश्चर्यजनक बात ही है!"

यह सुनकर मार्कण्डेय मुनि एक कथा सुनाने लगे—

कौशिक नाम के एक ब्राह्मण थे। ब्रह्मचर्य-व्रत पर वह अटल थे। एक दिन वे पेड की छाह मे बैठे वेद-पाठ कर रहे थे कि इतने में उनके सिर पर किसी पछी ने बीठ कर दी। कौशिक ने ऊपर देखा तो पेड की डाल पर एक बगुला बैठा दिखाई दिया। ब्राह्मण ने सोचा, इसी नीच बगुले की यह

करतूत है। उन्हें बडा क्रोध आया। उनकी क्रोधभरी दृष्टि बगुले पर पड़ते ही वह तत्काल भस्म होकर पृथ्वी पर गिर पडा। बगुले के मृत-शरीर को देखकर ब्राह्मण का मन उद्विग्न हो उठा। उन्हे बडा पछतावा होने लगा।

मन की भावनाओ के कार्यरूप में परिणत होने के लिए कितने ही बाहरी कारणो की आवश्यकता पडती है। किन्तु बाहरी कारण भावनाओ का हर वक्त साथ नही देते। इसी कारण हम कितनी ही बुराइयो से अक्सर बच जाते है। यदि यह बात न हो, यदि मन की सारी भावनाए तत्काल ही कार्यरूप मे परिणत होने लग जाय तो फिर इस ससार के कष्टो को कोई सहन न कर सके।

कौशिक बडे पछताये कि एक निर्दोष पंछी को मैंने मार दिया। क्रोध मे आकर मैंने जो भावना की उसने यह क्या अनर्थ कर दिया, यह सोचकर उन्हे बड़ा शोक हुआ। इतने मे भिक्षा का समय हो आया और वे भिक्षा के लिए चल पडे।

एक द्वार पर भिक्षा के लिए वह खडे हुए। घर की मालकिन अन्दर बरतन साफ कर रही थी। कौशिक ने सोचा, काम पूरा होने पर मेरी तरफ ध्यान देगी। किन्तु इतने मे स्त्री का पति, जो किसी काम पर बाहर गया हुआ था, लौट आया। आते ही बोला—'बडी भूख लगी है; खाना परोसो।' पति की बात सुनते ही गृह-पत्नी कौशिक की परवाह न करके अपने पति की सेवा-टहल मे लग गई। पानी लाकर उसने पति के पाव धोये, आसन बिछाया, थाली परोसी और बैठकर पखा झलने लगी।

कौशिक द्वार पर ही खडे रहे। जब उस स्त्री का पति भोजन कर चुका तभी कौशिक के लिए वह भिक्षा लाई। भिक्षा देते हुए उसने कौशिक से कहा—"महाराज, आपको बहुत देर ठहरना पडा, क्षमा कीजिएगा।"

स्त्री की अपने प्रति की गई इस लापरवाही के कारण कौशिक क्रोध के मारे प्रज्वलित-अग्नि से मालूम पड रहे थे। बोल उठे—"देवी! मुझे और बहुत घरो मे जाना है। यह तुम्हारे लिए उचित नही था जो तुमने मुझे इतनी देर ठहरा रखा।"

स्त्री ने कहा—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! पति की सेवा-शुश्रूषा में लगी रही, इसी कारण कुछ देर हो गई, क्षमा कीजिएगा।"

कौशिक को अपनी दृढ-व्रतता और जीवन की पवित्रता का बड़ा घमड था। वह उस स्त्री को उपदेश देने लगे—"नारी ! माना कि पति की सेवा-टहल करना स्त्री का धर्म होता है। किन्तु ब्राह्मण का अनादर करना भी ठीक नही। मालूम होता है तुम्हे अपने पतिव्रता होने का बड़ा घमड है।"

स्त्री ने विनीत भाव से कहा—"नाराज न होइयेगा। अपने पति की शुश्रूषा मे रहनेवाली स्त्री पर कुपित होना उचित नही। आपसे प्रार्थना है कि मुझे पेडवाला बगुला समझने की गलती न कीजिएगा। आपका क्रोध पति की सेवा मे लगी रहनेवाली सती का कुछ नही बिगाड़ सकता। मैं बगुला नही हूं।"

स्त्री की बातें सुनकर ब्राह्मण कौशिक चौक उठे। उन्हें बड़ा अचरज हुआ कि इस स्त्री को बगुले के बारे में कैसे पता लगा? वे आश्चर्य कर रहे थे कि इतने में वह बोली—

"महात्मन् ! आपने धर्म का मर्म न जाना। शायद आपको इस बात का भी पता नही कि क्रोध एक ऐसा शत्रु है जो मनुष्य के शरीर ही के अन्दर रहते हुए उसका नाश कर देता है। मेरा अपराध क्षमा करें और मिथिलापुरी में रहनेवाले धर्मव्याध के पास जाकर उनसे उपदेश ग्रहण करें।"

ब्राह्मण विस्मित होकर बोले—"देवी ! आपका कल्याण हो। आप मेरी जो निन्दा कर रही है, मेरा विश्वास है कि वह मेरी भलाई के ही लिए है। अवश्य मे मिथिला जाऊंगा और धर्मव्याध से उपदेश ग्रहण करूंगा।"

इस प्रकार कहकर कौशिक मिथिला नगरी को चल पडे।

मिथिला पहुंचकर कौशिक धर्मव्याध की खोज करने लगे। उन्होंने सोचा कि जो महात्मा मुझे उपदेश देने के काबिल है वे अवश्य ही कहीं किसी आश्रम में रहते होगे। इस विचार से कितने ही सुन्दर भवनों और सुहावने बाग-बगीचों मे ढूंढ़ा; पर कौशिक को धर्मव्याध का कोई पता न

चला। अन्त मे एक कसाई की दूकान पर वे पहुचे। वहा एक हट्टा-कट्टा आदमी बैठा मांस बेच रहा था। लोगो ने उन्हे बताया कि वह जो दूकान पर बैठे है वे ही धर्मव्याध है !

ब्राह्मण बडे कुत्सित भाव से नाक-भौंह सिकोड़ कर दूर ही पर खड़े रहे। उन्हे कुछ समझ मे नही आया। ब्राह्मण को यों भ्रम में पड़ा-सा देख-कर कसाई जल्दी से उठकर उनके पास आया और बड़ी नम्रता के साथ बोला—"भगवन् ! उस सती साध्वी स्त्री ने ही तो आपको मेरे पास नही भेजा है ?"

सुनकर कौशिक सन्न रह गये।

"द्विजवर ! मै आपके यहा आने का उद्देश्य जानता हूं। चलिये, घर पर पधारिये। आपकी इच्छा पूरी होगी।" यह कहकर धर्मव्याध ब्राह्मण को अपने घर ले गया। वहा पहुचकर कौशिक ने धर्मव्याध को अपने माता-पिता की बडी श्रद्धा के साथ सेवा-टहल करते देखा। इससे निवृत्त होकर कसाई धर्मव्याध ने ब्राह्मण कौशिक को बताया कि जीवन क्या है, कर्म क्या है और मनुष्य के कर्त्तव्य क्या है। यह उपदेश पाकर कौशिक अपने घर लौट आये और धर्मव्याध के उपदेश के अनुसार अपने माता-पिता की सेवा-टहल मे लग गये जिनकी कि उपेक्षा करके वे वेदाध्ययन और तपस्या मे लगे थे।

धर्मव्याध की कथा गीता के उपदेश का ही एक दूसरा रूप है। कोई ऐसी वस्तु नही जिसमे परमात्मा व्याप्त न हो। इसलिए कोई भी काम ऐसा नही जो ईश्वरीय न हो। समाज के प्रचलित ढांचे के कारण, या खास मौका मिलने या न मिलने के कारण, अथवा अपनी पहुच या विशेष परिश्रम के कारण भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न कामो में लग जाते हैं। इसमे ऊंच-नीच का या और कसी तरह का प्रश्न ही कहां उठ सकता है ! किसी भी काम को, अपने धर्म से डिगे बगैर करना ही ईश्वर की भक्ति करना है।

: ३८ :

दुष्टों का जी कभी नहीं भरता

पाण्डवो के वनवास के दिनो मे कई ब्राह्मण उनके आश्रम गये थे। वहा से लौटकर वे हस्तिनापुर पहुचे और धृतराष्ट्र को पाण्डवो के हाल-चाल सुनाये। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना कि पाण्डव वन मे आधी, पानी और धूप मे बडी तकलीफे उठा रहे है तो उनके मन मे चिन्ता होने लगी। सोचने लगे, इस अनर्थ का अन्त भी कभी होगा ? इसके परिणाम से कही मेरे कुल का सर्वनाश न हो जाय !

भीम का क्रोध अबतक अगर रुका हुआ है तो युधिष्ठिर के समझाने-बुझाने और दबाव के कारण ही। वह कबतक अपना क्रोध रोक सकेगा ? सब्र की भी तो हद होती है, किन्तु किसी-न-किसी दिन पाडवो का क्रोध बाध तोडकर ऐसा वह निकलेगा कि जिससे सारे कौरव-वंश का सफाया हो जाने की ही सभावना है। यह सोचकर धृतराष्ट्र का मन काप उठा।

कभी सोचते—"अर्जुन और भीम तो हमसे जरूर बदला लेकर रहेगे। शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और नासमझ दु शासन को न जाने क्यो ऐसी मूर्खता-भरी धुन सवार है ? ये क्यो नही सोचते कि पेड की डाली के सिरे तक पहुच जाना खतरे से खाली नहीं होता ? थोडे से शहद के लालच मे पड-कर ये लोग शाखा के सिरे तक पहुच चुके है। वे यह क्यो नही देखते कि भीमसेन के क्रोध-रूपी सर्वनाश का गड्ढा इन्हे निगल जाने के लिए मुह-बाये पडा है ?"

कभी सोचते—"आखिर हम लोग लालच मे क्यो पड गये ? हमे कमी किस बात की थी ? सब कुछ हमे मिला है। फिर भी हम क्यो लोभ मे फसे ? क्यो अन्याय करने पर उतारू हो गये ? जो कुछ प्राप्त था

उसीका ठीक से उपभोग करते हुए सुखपूर्वक नहीं रह सकते थे ? लेकिन हाय ! लालच में पडकर हमने जो पाप किये हैं उनका फल जरूर ही भुगतना पड़ेगा। पाप के जो बीज बोये है तो पाप ही की फसल काटनी होगी। और पाडवो का हम बिगाड़ क्या सके ? अर्जुन इन्द्रलोक जाकर दिव्यास्त्र प्राप्त करके कुशल-पूर्वक लौट आया। सशरीर स्वर्ग जाकर सकुशल लौट आना कोई मामूली बात है ! किसी से यह हो सका है कि सदेह इन्द्रलोक जाये और फिर वहा के सुख-सौंदर्य छोड़कर इस लोक मे वापस लौट आवे ? यदि अर्जुन ने यह असभव काम सभव कर दिखाया है तो वह केवल हमसे बदला लेने की ही गरज से किया होगा।" इसी भाति धृतराष्ट्र सोच किया करते। मन मे तरह-तरह की आशंकाए उठती और उनके मन में व्यथा समाई रहती।

लेकिन दुर्योधन और शकुनि कुछ और ही सोचते थे। धृतराष्ट्र की तरह चिन्ता करना तो दूर, उन्हे तो इसमे अजीब तरह का आनन्द आ रहा था और उनका विचार था कि अब आगे जल्दी ही शुभ दिन आनेवाला है।

कर्ण और शकुनि दुर्योधन की चापलूसी किया करते—"राजन् ! जो राज्य-श्री युधिष्ठिर का तेज और शोभा बढा रही थी, वह अब हमारे पास आ गई है। बलिहारी है आपकी कुशाग्र-बुद्धि की, जिसके कारण हमे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

किंतु दुर्योधन को भला इतने से संतोष कहा होता ! वह कर्ण से कहता—"कर्ण ! तुम्हारा कहना ठीक तो है; परन्तु मै तो चाहता हूं कि पाडवो को मुसीबतो मे पडे हुए अपनी आखों से देखू और उनके सामने अपने सुख-भोग और ऐश्वर्य का प्रदर्शन भी करू, जिससे उनको अपनी दयनीय हालत का जरा पता तो चले। जबतक शत्रु की तकलीफ को हम अपनी आखो मे देख न लेंगे तबतक हमारा आनन्द अधूरा ही रह जायेगा। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिसमे अपना यह काम पूर्ण हो। पिताजी की भी इसमें सम्मति लेनी होगी न ?

"पिताजी सोचते है कि पांडवो में हमसे ज्यादा तपोबल है। इससे पिताजी पांडवो से कुछ डरते रहते है। इस कारण वन में जाकर पांडवों

से मिलने की इजाजत देने में झिझकते हैं। वे डरते हैं कि कहीं हमपर इससे कोई आफत न आजाय। लेकिन मैं कहता हूं कि यदि हमने द्रौपदी और भीमसेन को जंगल मे पडे तकलीफ उठाते न देखा तो हमारे इतने करने-धरने का लाभ ही क्या हुआ? मैं केवल इतने से ही संतोष नही मान सकता कि हमें विशाल राज्य मिला है और उसका उपभोग करते है। मैं तो पाडवों का कष्ट अपनी आखो देखना चाहता हूं। इसलिए कर्ण, तुम और शकुनि कुछ ऐसा उपाय करो जिससे वन में जाकर पांडवों को देखने की पिताजी की अनुमति मिल जाय।"

कर्ण ने इसका जिम्मा लिया।

अगले दिन पौ फटने से पहले ही कर्ण दुर्योधन के पास जा पहुंचा। उसके चेहरे पर आनन्द की झलक देखकर दुर्योधन ने उत्सुकता से पूछा कि बात क्या है। कर्ण बोला—"'मुझे उपाय सूझ गया। द्वैतवन में कुछ ग्वालो की बस्तिया हैं जो हमारे अधीन हैं। हर साल उन बस्तियों में जाकर चौपायो की गिनती लेना राजकुमारो का ही काम होता है। बहुत काल से यह प्रथा चली आ रही है। इसलिए उस बहाने हम पिताजी की अनुमति आसानी से प्राप्त कर सकते है। क्यो, ठीक है न?"

कर्ण ने बात पूरी की भी न थी कि दुर्योधन और शकुनि मारे खुशी के उछल पडे। बोले—"बिलकुल ठीक सूझी है तुमको।" कहते-कहते दोनो ने कर्ण की पीठ थप-थपाई।

ग्वालों की बस्ती के चौधरी को बुला भेजा गया और कुमारो ने उससे बातचीत भी कर ली।

चौधरी ने राजा धृतराष्ट्र से बिनती करके कहा—"महाराज! गायें तैयार है। वन के एक रमणीक स्थान पर राजकुमारों के लिए हर तरह का प्रबध किया जा चुका है। प्रथा के अनुसार राजकुमार उस स्थान पर पधारे और जैसा कि सदा होता आया है चौपायो की संख्या, उम्र, रंग, नस्ल, नाम इत्यादि की जाच करके खाते में दर्ज कर लें बछडों पर चिन्ह लगाने के बाद वन मे कुछ देर आखेट खेलकर थोड़ा मन बहला लें। चौपायो की गिनती की रस्म भी अदा हो जायगी और राजकुमारो का मन भी बहल जायगा।"

राजकुमारो ने भी पिता से आग्रह करके प्रार्थना की कि वे इसकी अनुमति दे दें ।

किन्तु धृतराष्ट्र ने न माना । बोले—"मै मानता हू कि राजकुमारो के लिए आखेट का खेल बड़ा अच्छा होता है । चौपायो की गिनती लेना और जाच करना भी प्रथा के अनुसार आवश्यक ही है; परन्तु फिर भी सुनता हूं कि आजकल द्वैतवन मे पांडव ठहरे हुए हैं । इसलिए राजकुमारो का वहा जाना ठीक नही। उनके और तुम्हारे बीच मनमुटाव हो चुका है । ऐसी स्थिति मे तुम लोगो को ऐसी जगह, जहा भीम और अर्जुन हो, भेजने पर मै कभी सहमत नही हो सकता ।"

दुर्योधन ने विश्वास दिलाया कि पांडव जहां होगे वहा वे सब नही जायेग और बडी सावधानी से काम लेगे ।

"तुम्हारे हजार सावधान रहने पर भी मुझे भय है कि कोई आफत जरूर आ जायगी। तुम्हारे लिए यह उचित नही कि वनवास के दुख से क्षुब्ध पाण्डवो के नजदीक जाओ । हो सकता है, तुम्हारे अनुचरो में से ही कोई पाडवो से अशिष्टता का व्यवहार कर बैठे जिससे भारी अनर्थ हो सकता है । केवल गायो की गिनती का ही काम हो तो उसके लिए तुम्हारे बजाय किसी और को भी भेजा जा सकता है ।" राजा ने कुमारो को समझाते हुए कहा ।

यह सुनकर शकुनि बोला—"राजन् ! युधिष्ठिर धर्म के ज्ञाता है । भरी सभा मे वे जो प्रतिज्ञा कर चुके है उससे विमुख नही होगे । पांडव उनका कहा अवश्य मानेगे । हमपर अपना क्रोध प्रकट न करेगे । आखिर दुर्योधन आखेट ही तो खेलना चाहते है ? वे कोई ऐसा कार्य न करेगे जिससे कोई बिगाड पैदा हो। आप उन्हे न रोकिए । चौपायो की गिनती का भी काम हो जायगा और दुर्योधन की इच्छा भी पूरी हो जायगी । मै भी उनके साथ जाऊगा और कोई अनहोनी बात न होने दूगा। आप विश्वास रखे, पाडवो के पास तक हम नही फटकेंगे। मै इस बात का वचन देता हू। आप निश्चिन्त होकर अनुमति दीजिए ।"

विवश होकर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी। बोले—"तो फिर जैसी तुम्हारी इच्छा ।"

मन मे जिसने वैर-भाव को जगह दी हो वह संतोष से सदा के लिए हाथ धो बैठता है। द्वेष वह आग है जो बुझाए नही बुझती। जलती आग को कही ईंधन डालकर बुझाया जा सकता है ? ईंधन पाकर तो वह और भी प्रबल हो उठती है तथा और भी ज्यादा ईंधन पाने के लिए लालायित हो उठती है। द्वेष रखनेवाले का जी कभी नही भरता।

: ३६ :

दुर्योधन अपमानित होता है

एक बडी सेना और असख्य नौकर-चाकरो को साथ लेकर कौरव द्वैतवन के लिए रवाना हुए। दुर्योधन और कर्ण फूले न समाते थे। वे सोचते थे, पाण्डवो को कष्टो मे पड़ देखकर खूब आनन्द आयेगा। उन्होंने पहुचने पर अपने डेरे ऐसे स्थान पर लगाये जहां से पाण्डवो का आश्रम चार कोस की दूरी पर ही था।

कुछ देर विश्राम करने के बाद वे ग्वालो की बस्तियो मे गये, चौपायो की गिनती की, मुहर लगाकर विधिवत् रस्म अदा की। इसके बाद ग्वालो के खेल और नाच देखकर कुछ मनोरंजन किया। फिर जंगली जानवरों के शिकार की बारी आई।

शिकार खेलते-खेलते दुर्योधन उस जलाशय के पास जा पहुंचा, जो पाडवो के आश्रम के पास ही था। तालाब का स्वच्छ जल, चारो ओर से रमणीक दृश्य आदि देखकर दुर्योधन खुश हुआ। सबसे बढकर आनद तो उसे इस बात से हुआ कि जलाशय के पास ठहरे हुए पांडवो के हाल-चाल भी देखे जा सकेंगे। दुर्योधन ने अपने लोगों को आज्ञा दी कि डेरे तालाब के किनारे लगा दिये जाय।

●

दैवयोग से गन्धर्वराज चित्रसेन भी अपने परिवार के साथ उसी जलाशय के तट पर डेरा डाले हुए था। दुर्योधन के कर्मचारी डेरा लगवाने वहा गये तो गन्धर्वराज के अनुचरो ने उन्हें वहां डेरा डालने से मना किया।

अनुचरो ने लौटकर दुर्योधन को इसकी खबर दी कि कोई विदेशी नरेश अपने परिवार के साथ सरोवर के तट पर ठहरे हुए हैं और उनके नौकर हमें वहा ठहरने नही दे रहे हैं। यह सुनते ही दुर्योधन गुस्से से आग-बबूला हो उठा। वह बोला—"किस राजा की मजाल है जो मेरी आज्ञा को पूरा न होने दे? जाओ, अपना काम पूरा करके आओ और कोई रोके तो उसकी और उसके साथियो की खूब खबर लो।"

आज्ञा पाकर दुर्योधन के अनुचर फिर जलाशय के पास गये और किनारे पर तम्बू गाडने लगे। इसपर गन्धर्वराज के नौकर बहुत बिगड़े और दुर्योधन के अनुचरो की खूब खबर ली। वे कुछ न कर सके और प्राण लेकर भाग खडे हुए।

दुर्योधन को जब इस बात का पता चला तो उसके क्रोध की सीमा न रही। अपनी सेना लेकर तालाब की ओर बढा।

वहा पहुचना था कि गन्धर्वो और कौरवो की सेनायें आपस में भिड़ गई। घोर सग्राम छिड गया। पहले गन्धर्वों ने खुले तौर से आमने-सामने का युद्ध किया जिसमे उनको हार खानी पडी। यह देखकर गन्धर्वराज क्रुद्ध हो उठा और माया-युद्ध शुरू कर दिया। ऐसे-ऐसे मायास्त्र उसने कौरव-सेना पर बरसाये कि वह उनके आगे ठहर न सकी। यहा तक कि कर्ण-जैसे महारथियो के भी रथ और अस्त्र चूर-चूर हो गये और वे उलटे पाव भाग खड़े हुए। अकेला दुर्योधन लडाई के मैदान मे अन्त तक डटा रहा। गन्धर्वराज चित्रसेन ने उसे पकड लिया और रस्सी से बाधकर अपने रथ पर बिठा लिया और शख बजाकर विजय-घोष किया। इस तरह कौरवो के पक्ष के सब प्रधान वीरो को गन्धर्वो ने कैद कर लिया। कौरवों की सेना तितर-बितर हो गई, कितने ही सैनिक खेत रहे। बचे-खुचे सैनिकों मे से कुछ ने पाडवो के आश्रम मे जाकर दुहाई मचाई और रक्षा की प्रार्थना की।

दुर्योधन और उसके साथियो का इस प्रकार अपमानित होना सुनकर भीम बड़ा खुश हुआ। युधिष्ठिर से बोला—"भाई साहब, गन्धर्वो ने तो वही कर दिया जो हमे करना चाहिए था। दुर्योधन हमारा मजाक उड़ाने के ही लिए यहा आया था। सो उसे ठीक सजा मिली। गन्धर्व-

राज का हमें आभार मानना चाहिए जो उन्होंने हमारा काम खुद कर डाला।"

युधिष्ठिर ने गम्भीर स्वर में कहा—"भैया! तुम्हारा इस तरह खुश होना ठीक नहीं। ये हमारे ही कुटुम्ब के हैं। इनको गन्धर्वराज ने कैद कर रखा है, यह देखते हुए भी हम हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे रहे, यह हमारे लिए उचित नहीं। अच्छा यही है कि तुम अभी जाओ और किसी तरह अपने बन्धुओं को गन्धर्वों के बंधन से छुड़ा लाओ।"

युधिष्ठिर की बातें सुनकर भीमसेन झल्ला उठा। बोला—"आप भी कैसे अजीब हैं जो ऐसी आज्ञा दे रहे हैं। जिस पापी ने हमें लाख के घर में ठहराकर आग की भेंट चढ़ाने का कुचक्र रचा, भला बताइये तो, उसे मैं क्यों छुड़ा लाऊं? क्या आप यह भूल गये कि इसी दुरात्मा दुर्योधन ने मुझे विष-मिला अन्न खिलाया था और गंगा में डुबोकर मार डालने का प्रयत्न किया था? एसे पापात्मा पर आप कैसे दया करते हैं? जिन्होंने प्यारी द्रौपदी को भरी सभा में खींच लाकर अपमानित कया, आप कैसे कहते हैं कि उन्हीं नीचों को हम अपना भाई मानें?"

भीम ये बातें कर ही रहा था कि इतने में बन्दी दुर्योधन और उसके साथियों का आर्त्तनाद सुनाई दिया। सुनकर युधिष्ठिर बड़े विचलित होकर दूसरे भाइयों से बोले—"भीमसेन की बात ठीक नहीं है। भाइयो! हमें अभी जाकर कौरवों को छुड़ा लाना चाहिए।"

युधिष्ठिर के आग्रह करने पर भीम और अर्जुन ने कौरवों की बिखरी सेना को फिर से इकट्ठा किया और जाकर गन्धर्व-सेना पर टूट पड़े।

पांडवों को देखते ही गन्धर्वराज चित्रसेन का क्रोध शांत हो गया। उसने कहा—"मैंने तो दुरात्मा कौरवों को शिक्षा देने के लिए ही यह सब किया था। यदि आप चाहते हैं तो इनको मैं अभी मुक्त किये देता हूं।" यह कहकर चित्रसेन ने कौरवों को बन्धन-मुक्त कर दिया और साथ ही उन्हें यह भी आदेश दिया कि वे इसी घड़ी हस्तिनापुर लौट जायं। अपमानित कौरव फौरन हस्तिनापुर की ओर भाग खड़े हुए। कर्ण, जो पहले ही लड़ाई से भाग खड़ा हुआ था, रास्ते में दुर्योधन से मिला।

दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा—"कर्ण ! अच्छा होता यदि मैं गधर्वो के हाथों ही वहा मारा गया होता ! फिर यह अपमान तो न सहना पड़ता।"

कर्ण ने बहुत समझाया, पर दुर्योधन का क्षुब्ध हृदय जरा भी शात न हो सका। बोला—"दुःशासन ! अब मेरा जीना बेकार है। मै यही अनशन करके प्राण-त्याग कर दूगा। तुम्ही जाकर राज-काज सभाल लेना। शत्रुओ के सामने मेरा जो घोर अपमान हो चुका है इसके बाद मेरा जीना बिलकुल बेकार है।"

दुर्योधन को बहुत ग्लानि अनुभव होने लगी। यह देख दु.शासन की आखे भर आई। रोते-रोते दुर्योधन के पाव पकडकर रुद्ध-कण्ठ मे आग्रह करने लगा कि आप ऐसा न करें। भाइयो का यह करुण विलाप कर्ण से न देखा गया।

वह बोला—"कुरुवश के राजकुमारो ! यह तुम्हे शोभा नही देता कि इस प्रकार दीनो की भाति विलाप करो। शोक करने से तुम्हारा क्या भला होगा ? रोने-कलपने से भी कही कुछ काम बना है ? धीरज धरो। तुम्हारे शोक करने से तुम्हारे शत्रु पाडवो को ही आनन्द होगा। और कुछ फायदा नही होगा। पाडवो को ही देखो। कितने भारी अपमान उन्हे सहने पडे थे। फिर भी उन्होने कभी अनशन का नाम तक न लिया।"

कर्ण की बातो का समर्थन करते हुए शकुनि बोला—

"दुर्योधन ! कर्ण की बात मानो। तुम्हे भी हमेशा उलटा ही सूझा करता है। प्राण छोडने की क्या बात करने लगे ! जब राज्य के उपभोग करने का समय है तो तुमको उपवास करने की सूझती है ! तुम्हारे सिवा और कौन इस विशाल राज्य का शासक हो सकता है एव उपभोग कर सकता है ? चलो, उठो। अभी तो हस्तिनापुर चलो। अगर तुम्हे अपने किये पर पछतावा हो रहा है तो फिर चलकर पांडवो से मित्रता कर लेते हे और उनका राज्य उन्हे वापस देकर फिर सुखपूर्वक दिन बितावेगे।"

शकुनि की बात सुनते ही दुर्योधन मानो स्वप्न से जाग पड़ा। वह चौक उठा। उसकी बुद्धि पर जो थोडा-सा प्रकाश पडा था वह फिर लुप्त हो गया और फिर से अन्धेरा छा गया। एकदम चिल्ला उठा—

"ऐसे कैसे पांडवों से संधि की जा सकती है! उनपर तो विजय ही पाना पड़ेगा। और मैं वह पाकर ही रहूंगा।"

दुर्योधन के ये आशाजनक वचन सुनकर कर्ण ने उसकी खूब सराहना की और बोला—"धन्य हो दुर्योधन ! आखिर मरने से फायदा क्या हो सकता है? जीवित रहने से तो बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है।" यह कह वे सब हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। रास्ते में कर्ण ने दुर्योधन को विश्वास दिलाने की खातिर कहा—"मै अपने खड्ग की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि तेरह बरस बाद लड़ाई में अर्जुन का जरूर वध करूंगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।" इससे दुर्योधन को बड़ी सान्त्वना मिली और उसकी ग्लानि कम होने लगी।

: ४० :

कृष्ण की भूख

पाडवो के वनवास के समय दुर्योधन ने एक भारी यज्ञ किया था। दुर्योधन की तो इच्छा राजसूय-यज्ञ करने की थी; किंतु पण्डित ब्राह्मणों ने कहा कि धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के रहते उसे राजसूय-यज्ञ करने का अधिकार नही। तब ब्राह्मणों की सलाह मानकर दुर्योधन ने वैष्णव-नामक यज्ञ करके ही संतोष माना।

यज्ञ के समाप्त होने पर उसके बारे मे नगर के लोगों की यह राय हुई कि युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ की तुलना में दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ रुपये में सोलहवां हिस्सा भी नही था; किंतु दुर्योधन के मित्रो ने तो उसकी प्रशंसा के पुल बांध दिये। वे कहने लगे कि माधाता, ययाति, भरत जैसे यशस्वी महाराजाओ ने जो भारी यज्ञ किये थे, दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ उनकी बराबरी करने योग्य है। इस प्रशसा को सुनकर दुर्योधन गर्व और आनन्द से फूल उठा। राजभवन का आश्रय लेकर जीविका चलाने-वाले चापलूस लोगों ने दुर्योधन के यज्ञ की महिमा खूब बढा-चढ़ाकर इधर-उधर कही; उसपर खील बरसाई और चन्दन छिड़का। इस

अवसर पर महाबली कर्ण उठा और भरी सभा में दुर्योधन को सम्बोधन करके बोला--

"राजन्! आप इस बात का सोच न कीजिए कि राजसूय-यज्ञ न कर सके। शीघ्र ही पाडव युद्ध मे हारकर हमारे हाथो मारे जायगे और तब आप राजसूय-यज्ञ भी कर सकेगे। मै शपथ खाकर कहता हू कि जब-तक युद्ध मे अर्जुन का वध न कर दूंगा तबतक न तो पानी से अपने पांव धोऊंगा, न मास खाऊंगा, न मदिरा-पान करूगा और न किसी मांगने-वाले को 'नाही' कहूगा। यह मेरा प्रण है।"

कर्ण की इस प्रतिज्ञा पर धृतराष्ट्र के पुत्रो ने बडा शोर मचाकर अपने आनन्द का प्रदर्शन किया। कर्ण की शपथमात्र से उनको यह विश्वास हो गया कि बस अब पाडवो का काम ही तमाम हो चुका है।

यज्ञशाला मे कर्ण ने अर्जुन को मारने की जो प्रतिज्ञा की उसकी खबर जासूसों द्वारा युधिष्ठिर को मिली। इससे युधिष्ठिर बडे व्याकुल हो गये। बडी देर तक पृथ्वी पर टकटकी-सी बांधे देखते रह गये। कर्ण दैवी कवच-कुण्डलो के साथ पैदा हुआ है। उसका पराक्रम भी अद्भुत है और फिर वह एसी प्रतिज्ञा कर चुका है; यह सब समय का फेर ही तो है। इससे मालूम होता है कि समय हमारे अनुकूल नही है। यह सोचते-सोचते युधिष्ठिर बडे चिन्तित हो गये।

एक दिन बड़े सवेरे युधिष्ठिर ने नीद खुलने के जरा देर पहले एक सपना देखा। अक्सर सपने या तो नीद के शुरू मे आते है या नीद खुलने से थोडी देर पहले। युधिष्ठिर ने सपने मे देखा--द्वैतवन के हिंस्र जन्तुओ का एक झुण्ड आकर उनके आगे पुकार मचा रहा है और आर्त्त-स्वर में कह रहा है कि "महाराज! आप लोगो ने शिकार खेल-खेलकर हम सबो का करीब-करीब अन्त ही कर डाला है। इससे पहले कि हमारा सर्वनाश ही हो जाय, आपसे हमारी प्रार्थना है कि आप और किसी जगल मे चले जाइए। हमारी सख्या बहुत घट चुकी है। थोड़े-से जो जीवित बचे है, उन्हीके द्वारा वश की वृद्धि होनी है। हमारी नस्ल का बढना-न-बढना आपकी ही कृपा पर निर्भर है। आपका कल्याण हो! आप हमपर दया करे।" कहते-कहते जानवरो की आखो में आसू उमड़ आये। यह देख-

कर युधिष्ठिर का जी भर आया। चौक कर उठ बैठे तो पता चला कि यह तो सपना था, परन्तु फिर भी युधिष्ठिर बडे बेचैन हो उठे। इस सपने से उन्हे बडी व्यथा पहुंची। भाइयों से सपने का हाल कहा और सबमे सलाह करके वे किसी दूसरे वन मे चले गये।

●

एक बार महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यो को साथ लेकर दुर्योधन के राजभवन मे पधारे। वैसे दुर्योधन को महर्षियो के प्रति अधिक श्रद्धा न थी, किंतु दुर्वासा कही शाप न दे बैठे, इस डर से खुद उनका बडी नम्रता के साथ स्वागत किया और बडे यत्न से उनका सत्कार किया। दुर्योधन के सत्कार से ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"वत्स, कोई वर चाहो तो माग लो।"

दुर्वासा अपने क्रोध के लिए बडे विख्यात थे। ऐसे क्रोधी ऋषि को सन्तुष्ट करने से दुर्योधन को ऐसा आनन्द हुआ मानो मृत्यु के मुह से निकल आया हो। सोचा, कौन-सा वर माग? बहुत दिमाग लडाने पर भी उसकी बुद्धि मे औरो की बुराई के सिवा और कुछ न सूझा। बोला—"मुनिवर! प्रार्थना यही है कि जैसे आपने शिष्यो-समेत अतिथि बनकर मुझे अनुगृहीत किया, वैसे ही वन मे मेरे भाई पाडवो के यहा भी जाकर उनका सत्कार स्वीकार करे। राजाधिराज युधिष्ठिर हमारे कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति है। आप उनके पास जाइए और उनके अतिथि बनने की कृपा कीजिए। और फिर एक छोटी-सी बात मेरे लिए और करने की कृपा करे। वह यह कि आप अपने शिष्यो-समेत ठीक ऐसे समय युधिष्ठिर के आश्रम मे जाय जब राजकुमारी द्रौपदी पाडवों एव उनके परिवार को भोजन करा चुकी हो और जब सभी लोग आराम से बैठे विश्राम कर रहे हो। बस, यही मेरी प्रार्थना है। इससे मुझपर बडा अनुग्रह होगा।"

लोगो को कठिनाइयो की कसौटी मे कसकर परख लेने का महर्षि दुर्वासा को बडा चाव था। इसलिए उन्होने दुर्योधन की प्रार्थना तुरन्त मान ली।

दुर्वासा से ऐसी अजीब प्रार्थना करने का दुर्योधन का उद्देश्य यह था कि क्रोधी ऋषि पाडवो के पास ऐसे समय पर जाय जबकि ऋषि का समुचित स्वागत-सत्कार करना पाण्डवो से न बन सके और ऋषि क्रोध में

आकर उन्हें शाप दे दें। दुर्योधन चाहता तो ऋषि से कोई ऐसा वर मांग सकता था जिससे उसकी भलाई होती। पर उसने तो अपने शत्रुओं को हानि पहुंचाना ही श्रेयस्कर समझा। दुरात्माओं का स्वभाव ऐसा ही होता है!

दुर्योधन की प्रार्थना मानकर दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यो के साथ युधिष्ठिर के आश्रम में जा पहुचे। युधिष्ठिर ने भाइयों-समेत ऋषि की आवभगत की और दण्डवत करके विधिवत् उनका सत्कार किया। कुछ देर बाद मुनि ने कहा—"अच्छा! हम सब अभी स्नान करके आते हैं। तबतक भोजन तैयार करके रखना।" कहकर दुर्वासा शिष्यो-समेत नदी पर स्नान करने चले गये।

●

वनवास के प्रारम्भ मे युधिष्ठिर की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने उन्हे एक अक्षयपात्र प्रदान किया था और कहा था कि ठीक बारह बरस तक इसके द्वारा मै तुम्हे भोजन दिया करूगा। इसकी विशेषता यह है कि द्रौपदी हर रोज चाहे जितने लोगो को इस पात्र मे से भोजन खिला सकेगी; परन्तु सबके भोजन कर लेने पर जब द्रौपदी स्वय भी भोजन कर चुकेगी तब फिर इस बरतन की यह शक्ति अगले दिन तक के लिए लुप्त हो जायगी।

इस कारण पाडवो के आश्रम मे सबसे पहले ब्राह्मणों और अतिथियो को भोजन दिया जाता था। फिर सब भाइयो के भोजन कर लेने के बाद युधिष्ठिर भोजन करते। जब सभी लोग भोजन कर चुकते तब अन्त मे द्रौपदी भोजन करती और बरतन माज-धोकर रख देती। जिस समय दुर्वासा ऋषि आये, उस समय सभी को खिला-पिलाकर द्रौपदी भी भोजन कर चुकी थी। इसलिए सूर्यदेव का अक्षयपात्र उस दिन के लिए खाली हो चुका था।

द्रौपदी बड़ी चिन्तित हो उठी कि जब मुनि अपने एक हजार शिष्यों के साथ स्नान-पूजा करके भोजन के लिए आ जायगे तब वह उनको क्या खिलायगी? उसे कुछ न सूझा। और कोई सहारा न पाकर उसने परमात्मा की शरण ली। दीन-भाव से वह भगवान् की प्रार्थना करने लगी—

"प्रभो ! शरणागतो की रक्षा करनवाले ईश्वर ! जिनका कोई सहारा न हो उनके तुम ही तो सहारे हो। दुर्वासा ऋषि के क्रोध-रूपी मंझधार मे तुम्ही हमारा बेडा पार लगा सकते हो । मेरी लाज रखो भगवन् !"

द्रौपदी इस प्रकार प्रार्थना कर ही रही थी कि इतने में भक्तों को सकट से छुडानेवाले भगवान् वासुदेव कही से आ गये और सीधे आश्रम के रसोई-घर मे जाकर द्रौपदी के सामने खडे हो गए। बोले—"बहन कृष्णा, बडी भूख लगी है। कुछ खाने को दो। और कुछ बाद मे सोचना। पहले तो खाने को लाओ।"

द्रौपदी और भी दुविधा मे पड गई। बोली—"हे भगवन् ! यह कैसी परीक्षा है? मै खाना खा चुकी हू। सूर्य के दिये हुए अक्षयपात्र की शक्ति आज के लिए समाप्त हो चुकी है। ऐसे समय पर उधर दुर्वासा ऋषि अतिथि बनकर आये हुए है। मै घबरा रही थी कि क्या करूं? वे थोडी देर में अपने शिष्यो-समेत स्नान करके वापस आ ही रहे होंगे। इस विपदा से कैसे बचू?"

कृष्ण बोले—"मै यहा भूख से तडप रहा हू और तुम्हे दिल्लगी सूझ रही है। जरा लाओ तो अपना अक्षयपात्र। देखें तो कि उसमें कुछ है भी कि नही।"

द्रौपदी हडबडा कर बरतन ले आई। उसके एक छोर पर अन्न का एक कण और साग की पत्ती लगी थी। श्रीकृष्ण ने उसे लेकर मुह में डालते हुए मन मे कहा—"जो सारे विश्व में व्याप्त है, सारा विश्व ही जिसका रूप है, यह उस हरि का भोजन हो, इससे उसकी भूख मिट जाय और वह प्रसन्न हो जाय।"

द्रौपदी तो यह देख लज्जा से सिकुड-सी गई। सोचा—"कैसी हूं मै, कि मैंने ठीक से बरतन भी न धोया। इसीलिए उसमे लगा अन्न-कण और साग वासुदेव को खाना पडा। धिक्कार है मुझे।" इस तरह द्रौपदी अपने आपको ही धिक्कार रही थी कि इतने मे श्रीकृष्ण ने बाहर जाकर भीमसेन को कहा—"भीम, जल्दी जाकर ऋषि दुर्वासा को शिष्यों-समेत भोजन के लिए बुला लाओ।"

भीमसेन बडे वेग से नदी की ओर उस स्थान पर गया जहा दुर्वासा आदि ब्राह्मण शिष्यों-समेत स्नान कर रहे थे। नजदीक जाकर भीमसेन क्या देखता है कि दुर्वासा ऋषि का सारा शिष्य-समुदाय स्नान-पूजा करके भोजन तक से निवृत्त हो चुका है।

शिष्य दुर्वासा से कह रहे थे--"गुरुदेव ! युधिष्ठिर से हम व्यर्थ मे कह आये कि भोजन तैयार करके रखे। हमारा तो पेट ऐसा भरा हुआ है कि हमसे उठा भी नही जाता। इस समय तो जरा भी खाने की इच्छा नही है।"

यह सुन दुर्वासा ने भीमसेन से कहा--"हम सब तो भोजन से निवृत्त हो चुके है। युधिष्ठिर से जाकर कहना कि असुविधा के लिए हमे क्षमा करें।" यह कहकर ऋषि अपने शिष्यो-सहित वहा से रवाना हो गये।

सारा विश्व भगवान् श्रीकृष्ण मे ही समाया हुआ है। इसलिए उनके चावल का एक कण खाने भर मे सारे ऋषियो की भूख मिट गई और वे तृप्त होकर चले गये।

: ४१ :

ज़हरीला तालाब

पाडवो के वनवास की अवधि पूरी होने को ही थी। बारह बरस समाप्त होने मे कुछ ही दिन रह गये थे।

पाडवो के आश्रम के पास ही एक गरीब ब्राह्मण की झोपड़ी थी। एक दिन एक हिरन उधर से आ निकला। झोपडी के बाहर अरणी की लकड़ी टगी थी। हिरन ने उसपर शरीर रगडकर खुजली मिटा ली और चल पडा। जाते समय अरणी की लकडी उसके सीग ही मे अटक गई।

काठ के चौकोर टुकडे पर मथनी-जैसी दूसरी लकडी से रगड़कर उन दिनो आग सुलगा लेते थे। इसको अरणी कहते थे।

सीग मे अरणी के अटक जाने से हिरन घबरा उठा और बडी तेजी से भागने लगा। यह देख ब्राह्मण चिल्लाने लगा और दौडकर पाडवो

के आश्रम में जाकर पुकार मचाई कि हमारी अरणी हिरन उठा ले गया है। अब मैं अग्निहोत्र के लिए अग्नि कैसे उत्पन्न करूंगा ?

ब्राह्मण पर तरस खाकर पांचो भाई हिरन का पीछा करने लगे। पाडव दौडे तो बड़े वेग से, पर वे हिरन के पास न पहुंच सके। हिरन कूदता, छलांगे मारता हुआ भागा और पांडवो को लुभाकर जंगल मे बड़ी दूर तक भटका ले गया और उनके देखते-देखते अचानक आखो से ओझल हो गया।

पांचो भाई थककर एक बरगद की छाह मे बैठ गये। प्यास के मारे सबके मह सूख रहे थे।

लेकिन सबको एक ही चिन्ता थी। नकुल ने बडे उद्विग्न भाव से युधिष्ठिर से कहा—"हमारे लिए यह कैसी लज्जा की बात है कि इस ब्राह्मण का इतना-सा भी काम हमसे न हो सका !"

नकुल को व्यथित देखकर भीमसेन बोला—"हमे तो उसी घडी उन पापियो का काम-तमाम कर देना चाहिए था जबकि वे द्रौपदी को सभा के बीच घसीट लाये थे ! लेकिन तब हम चुपचाप रहे, इसीका नतीजा है कि आज हमे ऐसे कष्ट झेलने पडे रहे है।" यह कहकर भीमसेन ने अर्जुन की ओर दुःखभरी निगाह से देखा।

अर्जुन बोल उठा—"ठीक कहते हो भैया भीम ! उस समय तो उस सूतपुत्र की कठोर बातें सुनकर भी मै कठपुतला-सा खडा रह गया था। उसीके फलस्वरूप अब हमारी यह गति हो रही है।"

युधिष्ठिर ने देखा कि थकावट और प्यास के कारण सबकी सहन-शीलता जवाब दे रही है। उनसे कुछ कहते न बना। उनको भी असह्य प्यास सताये जा रही थी। पर उसे वे सहन करके शांति से नकुल से बोले—"भैया ! जरा उस पेड पर चढकर देखो तो सही कि कही कोई जलाशय या नदी दिखलाई दे रही है ?"

नकुल ने पेड पर चढकर देखा और उतरकर कहा कि दूरी पर कुछ ऐसे पौधे दिखाई दे रहे है जो पानी के ही नजदीक उगते है। आसपास कुछ बगुले भी बैठे है। वही कही आसपास पानी अवश्य होना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा कि जाकर देखो और पानी मिले तो ले आओ। यह सुनकर नकुल तुरन्त पानी लाने चल पड़ा।

कुछ दूर चलने पर अन्दाज के मुताबिक नकुल को एक जलाशय मिला। वह बडा प्रसन्न हुआ। सोचा, पहले तो अपनी प्यास बुझा लू और फिर तरकस मे पानी भरकर भाइयों के लिए ले जाऊंगा। यह सोचकर वह पानी में उतरा। पानी स्वच्छ था। उसने चुल्लू मे पानी लिया और उसे पीना ही चाहता था कि इतने में यह आवाज आई—"माद्री के पुत्र! दु साहस न करो! यह जलाशय मेरे अधीन है। पहले मेरे प्रश्नो का उत्तर दो। फिर पानी पियो।"

नकुल चौक पड़ा। पर उसे प्यास इतनी तेज लगी थी कि उस वाणी की परवाह न करके चुल्ल से पानी पी लिया। पानी पीकर किनारे पर चढते ही उसे कुछ चक्कर-सा आया और वह गिर पड़ा।

बडी देर तक नकुल के न लौटने पर युधिष्ठिर चिन्तित हुए और सहदेव को भेजा। सहदेव जलाशय के नजदीक पहुंचा तो नकुल को जमीन पर पडा देखा। उसने सोचा कि हो-न-हो, किसी ने भाई को मार डाला है। पर उसे भी प्यास इतनी तेज लगी थी कि वह ज्यादा कुछ सोच न सका। पानी पीने के लिए वह जलाशय में उतरा। वह पानी पीने को ही था कि पहले-जैसी वाणी सुनाई दी—"सहदेव! यह मेरा जलाशय है। मेरे प्रश्नो का जवाब देने के बाद ही तुम पानी पी सकते हो।"

सहदेव भी प्यास के मारे इतना व्याकुल हो रहा था कि उसने वाणी की चेतावनी पर ध्यान न देते हुए पानी पी लिया और किनारे पर चढते-चढते अचेत होकर नकुल के पास ही गिर पडा।

जब सहदेव भी बहुत देर तक न लौटा तो युधिष्ठिर घबराकर अर्जुन से बोले—"अर्जुन! दोनों भाई पानी लेने गये है। अबतक क्यों नहीं लौटे? जाकर देखो तो उनके साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई? और लौटते समय तरकस में पानी भी लेते आना।"

अर्जुन बडी तेजी से चला। तालाब के किनारे पर दोनो भाइयों को मृत पडा देखा तो चौंक पड़ा। उसे अचरज हो रहा था और दुःख भी! वह नही समझ पाया कि इनकी मृत्यु का कारण क्या है। यही सोचते

हुए अर्जुन भी पानी पीने के लिए जलाशय मे उतरा कि इतने मे वही वाणी सुनाई दी—"अर्जुन ! मेरे प्रश्नो का उत्तर देने के बाद ही प्यास बुझा सकते हो। यह तालाब मेरा है। मेरी बात न मानोगे तो तुम्हारी भी वही गति होगी जो तुम्हारे इन दो भाइयो की हुई है।"

अभिमानी अर्जुन यह सुनकर गुस्से से भर गया। धनुष तानकर ललकारा—"कौन हो तुम ? सामने आकर रोको, नही तो यह लो। इन्ही बाणो से तुम्हारे प्राण-पखेरू उडा देता हूं।" बात खत्म भी न होने पाई थी कि अर्जुन ने शब्द-भेदी बाण छोडने शुरू कर दिये। जिधर से आवाज सुनाई दी उसी ओर निशाना लगाकर वह तीर चलाता रहा; किन्तु उन बाणो का कोई भी असर नही हुआ। जरा देर मे फिर से आवाज आई—"तुम्हारे बाण मुझे छू तक नही सकते। मै फिर से कहे देता हू, मेरे प्रश्नो का पहले उत्तर दो और फिर पानी पियो, नही तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।"

अपने बाणो को बेकार होते देखकर अर्जुन के क्रोध की सीमा न रही। उसने सोचा कि यहा तो बडी जबरदस्त लडाई लडनी होगी। इससे पहले अपनी प्यास तो बुझा ही लू। फिर लड लिया जायगा। यह सोच-कर अर्जुन ने जलाशय मे उतरकर पानी पी लिया और किनारे आते-आते चारो खाने चित्त होकर गिर पड़ा।

उधर तीनो भाइयो की बाट जोहते-जोहते युधिष्ठिर बडे व्याकुल हो उठे। भीमसेन से चिन्तित स्वर मे बोले—"भैया भीमसेन ! न जाने अर्जुन भी क्यो नही लौटा ! जरा तुम्ही जाकर देखो कि तीनो भाइयो को क्या हो गया है। लौटती बार पानी भी भर लाना। प्यास सही नही जा रही है। समय का रुख हमारे विपरीत ही मालूम होता है। जरा होशियारी से जाना, भाई ! तुम्हारा भला हो।"

युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर भीमसेन तेजी से जलाशय की ओर बढा। तालाब के किनारे पर देखा कि तीनो भाई मरे-से पड़े है। देख-कर भीमसेन का कलेजा टूक-टूक होने लगा। सोचा, यह किसी यक्ष की करतूत मालूम होती है। जरा पानी पी लेने के बाद देखता हूं कि कौन ऐसा बली है जो मेरे रास्ते मे आवे।

यह सोचकर भीमसेन तालाब मे उतरना ही चाहता था कि आवाज आई--"भीमसेन ! मेरे प्रश्नो का उत्तर दिये बिना पानी पीने का साहस न करो। यदि मेरी बात न मानोगे तो तुम्हारी भी अपने भाइयों-जैसी गति होगी ।"

"मुझे रोकनेवाला तू कौन होता है ?" कहता हुआ भीमसेन बेधड़क तालाब मे उतर गया और पानी पी लिया। पानी पीते ही और भाइयो की तरह वह भी वही ढेर हो गया।

उधर युधिष्ठिर अकेले बैठे-बैठे घबराने लगे। बडे ताज्जुब की बात है कि कोई भी अबतक नही लौटा ! कभी ऐसी बात हुई नही ! आखिर भाइयो को हो क्या गया ? क्या कारण है कि अभी तक लौटे नही ? कही किसी ने उन्हे शाप तो नही दे दिया ? या जल की खोज मे जगल मे इधर-उधर भटक तो नही गये ? मै ही चलकर देखू कि बात क्या है ? मन-ही-मन यह निश्चय करके युधिष्ठिर भाइयो को खोजते हुए जलाशय की ओर चल पडे।

: ४२ :

यक्ष-प्रश्न

निर्जन वन था। आदमियो का कही नाम-निशान न था। हिरन, सूअर आदि जानवर इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे वन में से होते हुए युधिष्ठिर उसी विषैले तालाब के पास जा पहुचे जिसका जल पीकर उनके चारो भाई मृत-से पडे थे। चारो ओर हरी-हरी घास बडी मनोरम थी। उस हरित-शैया पर चारों भाई ऐसे पडे थे जैसे उत्सव के समाप्त होने पर इन्द्र-ध्वजाए। यह देख युधिष्ठिर चौक पडे। उनके आश्चर्य और शोक की सीमा न रही। असह्य शोक के कारण उनकी आखो से आसू बह निकले।

राजाधिराज युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के शरीरो से लिपट गये और बिलख उठे--"भैया भीम ! तुमने कैसी-कैसी प्रतिज्ञाए की थी ?

क्या वे सब अब निष्फल हो जायगी ? वनवास के समाप्त होते-होते क्या तुम्हारा जीवन भी समाप्त हो गया ? देवताओं की भी बातें आखिर झूठी ही निकली !"

सब भाइयो की ओर देख वे बच्चो की तरह रो पड़े। वे बार-बार यह सोच-सोचकर विलाप कर उठते कि ऐसा कौन-सा शत्रु हो सकता है जिसमे इन चारो के प्राण लेने की सामर्थ्य थी ?

फिर अपने आपको उलाहना देते हुए कहने लगे—"मेरा कलेजा भी कैसा पत्थर का है जो नकुल और सहदेव को इस भाति मरे पड़े देखकर टूक-टूक नही हो जाता ! अब इस ससार मे मुझे क्या करना है जो मै जीता रहूं ?"

कुछ देर यो विलाप करने के बाद युधिष्ठिर ने बड़े ध्यान से भाइयो के शरीरो को देखा और अपने आप से कहने लगे—"यह तो कोई माया-जाल-सा लगता है। इनके शरीरो पर कही कोई घाव नही दिखाई देता ! चेहरो पर कोई परिवर्त्तन नही आया है। ऐसे दीखते है जैसे सोये पड़े हो। आसपास जमीन पर किसी शत्रु के पाव के निशान भी तो नही नजर आते। हो सकता है, यह भी दुर्योधन का ही कोई षड्यत्र हो। सभव है, पानी में विष मिला हो।"

ऐसा सोचते-सोचते युधिष्ठिर भी प्यास से प्रेरित होकर तालाब मे उतरने लगे। इतने में वही वाणी सुनाई दी—"सावधान ! तुम्हारे भाइयो ने मेरी बात की परवाह न करके पानी पिया था। तुम भी वही भूल न करना। यह तालाब मेरे अधीन है। मेरे प्रश्नो के उत्तर दो और फिर तालाब में उतरकर प्यास बुझाओ।"

युधिष्ठिर ने ताड लिया कि कोई यक्ष बोल रहा है। उन्होंने बात मान ली और बोले—"आप प्रश्न कर सकते हैं।"

यक्ष ने प्रश्न किया—सूर्य किसकी प्रेरणा (आज्ञा) से प्रतिदिन उगता है ?

उत्तर—ब्रह्म (परमात्मा) की।

प्र०—मनुष्य का कौन सदा साथ देता है ?

उ०—धैर्य ही मनुष्य का साथी होता है।

प्र०—कौन-सा ऐसा शास्त्र (विद्या) है जिसका अध्ययन करके मनुष्य बुद्धिमान बनता है ?

उ०—कोई भी ऐसा शास्त्र नही। महान लोगो की सगति से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है।

प्र०—भूमि से भारी चीज क्या है ?

उ०—सन्तान को कोख मे घरनेवाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र०—आकाश से भी ऊचा कौन है ?

उ०—पिता।

प्र०—हवा से भी तेज चलनेवाला कौन है ?

उ०—मन।

प्र०—घास से भी तुच्छ कौन-सी चीज होती है ?

उ०—चिन्ता।

प्र०—विदेश जानेवाले का कौन मित्र होता है ?

उ०—विद्या।

प्र०—घर ही मे रहनेवाले का कौन साथी होता है ?

उ०—पत्नी।

प्र०—मरणासन्न वृद्ध का मित्र कौन होता है ?

उ०—दान; क्योकि वही मृत्यु के बाद अकेले चलनेवाले जीव के साथ-साथ चलता है।

प्र०—बरतनो मे सबसे बडा कौन-सा है ?

उ०—भूमि ही सबसे बडा बरतन है जिसमे सब कुछ समा सकता है।

प्र०—सुख क्या है ?

उ०—सुख वह चीज है जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र०—किसके छूट जाने पर मनुष्य सर्व-प्रिय बनता है ?

उ०—अहंभाव से उत्पन्न गर्व के छूट जाने पर।

प्र०—किस चीज के खो जाने से दु:ख नही होता ?

उ०—क्रोध के खो जाने से।

प्र०—किस चीज को गंवाकर मनुष्य धनी बनता है ?

उ०—लालच को।

प्र०—युधिष्ठिर ! निश्चित रूप से बताओ कि किसीका ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर करता है ? उसके जन्म पर, विद्या पर या शील-स्वभाव पर ?

उ०—कुल या विद्या के कारण ब्राह्मणत्व प्राप्त नही हो जाता। ब्राह्मणत्व तो शील-स्वभाव ही पर निर्भर होता है। जिसमें शील न हो वह ब्राह्मण नही हो सकता। जिसमे बुरे व्यसन हों वह चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा क्यो न हो, ब्राह्मण कहला नही सकता। चारों वेदों को पार करके भी कोई चरित्र-भ्रष्ट हो तो उसे नीच ही समझना चाहिए।

प्र०—संसार मे सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है ?

उ०—हर रोज आखों के सामन कितन ही प्राणियों को मृत्यु के मुह में जाते देखकर भी बचे हुए प्राणी जो यह चाहते है कि हम अमर रहे, यही महान् आश्चर्य की बात है।

इसी प्रकार यक्ष ने कई प्रश्न किये और युधिष्ठिर ने उन सबके ठीक-ठीक उत्तर दे दिये।

अन्त में यक्ष बोला—"राजन् ! मै तुम्हारे मृत भाइयों मे से एक को जिला सकता हूं। तुम जिस किसी को भी जिलाना चाहो वह जीवित हो जायगा।"

युधिष्ठिर ने पल भर सोचा कि किसे जिलाऊं ? और जरा देर रुककर बोले—"जिसका रग सावला आखें कमल-सी, छाती विशाल और बाहे लम्बी-लम्बी है और जो तमाल के पेड़-सा गिरा पडा है, वही मेरा भाई नकुल जी उठे।"

युधिष्ठिर के इस प्रकार बोलते ही यक्ष ने उनके सामने प्रकट होकर पूछा—"युधिष्ठिर ! दस हजार हाथियों के बलवाले भीमसेन को छोड़-कर नकुल को तुमने क्यो जिलाना ठीक समझा ? मैंने तो सुना था कि तुम भीम को ही ज्यादा स्नेह करते हो। और नही तो कम-से-कम अर्जुन को तो जिला लेते जिसकी रणकुशलता ही तुम्हारी रक्षा करती रही है। तब क्या कारण है कि इन दोनों भाइयों को छोडकर नकुल को तुम जिलाना चाहते हो ?"

युधिष्ठिर ने कहा—"यक्षराज ! मनुष्य की रक्षा न तो भीम से होती है, न अर्जुन से। धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है और विमुख होने पर धर्म ही से मनुष्य का नाश भी होता है। मैंने जो नकुल को जिलाना चाहा वह सिर्फ इसी कारण कि मेरे पिता की दो पत्नियो मे से—कुन्ती का एक पुत्र मै तो बचा हुआ हू, मै चाहता हू कि माद्री का भी एक पुत्र जी उठे, जिससे हिसाब बराबर हो जाय। अत आप कृपाकर नकुल को जिला दे।"

"पक्षपात से रहित मेरे प्यारे पुत्र ! तुम्हारे चारो ही भाई जी उठे।" यक्ष ने वर दिया।

यह यक्ष और कोई नही स्वयं धर्मदेवता थे। उन्होने ही हिरन का रूप धरकर पाण्डवों को भुलाया था। उनकी इच्छा हुई कि अपने पुत्र युधिष्ठिर को देखकर अपनी आखे तृप्त कर ले और उसके गुणो और योग्यता की परीक्षा भी ले ले।

उन्होंने युधिष्ठिर के सद्‌गुणो से मुग्ध होकर उन्हे छाती मे लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—

"बारह बरस के वनवास की अवधि पूरी होने मे अब थोडे ही दिन बाकी रह गये हे। बारह मास जो तुम्हे अज्ञातवास करना है वह भी सफलता मे पूरा हो जायगा। तुम्हे और तुम्हारे भाइयो को कोई भी नही पहचान सकेगा। तुम अपनी प्रतिज्ञा सफलता के साथ पूरी करोगे।" इतना कहकर धर्मदेवता अन्तर्द्धान हो गये।

●

वनवास की भारी मुसीबते पाण्डवो ने धीरज के साथ झेल ली। अर्जुन अपने पिता इन्द्रदेव से दिव्यास्त्र प्राप्त करके वापस आगया। भीमसेन ने भी सुगधित फूलोवाले सरोवर के पास भाई हनुमान से भेट कर ली थी और उनका आलिगन प्राप्त करके दस गुना अधिक शक्तिशाली हो गया था।

जहरीले तालाब के पास युधिष्ठिर ने स्वय अपने पिता धर्मदेवता के दर्शन किये और उनसे गले मिलने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया था। पिता के समान ही पुत्र भी धर्मात्मा हुए।

जो यह पवित्र कथा सुनेगा उसका मन कभी अधर्म पर उतारू नही होगा, न मित्रो मे फूट डालने या दूसरो का धन हरने पर ही उद्यत होगा। इस कथा को सुननेवाले पराई स्त्री या पुरुष की चाह नही करेगे। न तुच्छ वस्तुओ की रक्षा ही करेगे।

: ४३ :

अनुचर का काम

वनवास की अवधि पूरी होने पर युधिष्ठिर अपने आश्रम के साथी ब्राह्मणो से दुख के साथ बोले—

'ब्राह्मण देवताओ! धृतराष्ट्र के पुत्रो के जाल मे फसकर यद्यपि हम राज्य से वचित हो चुके थे और हमारी हालत दीन-दरिद्रो की-सी हो चकी थी फिर भी आप लोगो के सत्सग से इतने दिन वन में आनन्द-पूर्वक बीते। अब तेरहवा बरस शुरू होने को है। प्रतिज्ञा के अनुसार हमे कही एक बरस तक छिपकर रहना होगा कि जिससे दुर्योधन के गुप्तचर हमारा पता न लगा सके। इस कारण आपसे हमे बिछुडना पड रहा है। भगवान जाने कब हम अपना राज्य फिर प्राप्त करेगे और शत्रुओ के भय से मुक्त होकर आप लोगो के सत्सग मे दिन बितायेंगे! आपसे प्रार्थना है कि हमे आशीष देकर विदा करे। हमे ऐसे लोगो से बचकर रहना होगा जो धृत-राष्ट्र के पुत्रो के भय से या उनके प्रलोभन मे आकर हमारा पता बता सके।"

इतने दिनो वन मे साथ रहनेवाले ब्राह्मणो से ये बाते कहते हुए युधि-ष्ठिर का दिल भर आया। पुरोहित धौम्य युधिष्ठिर को सात्वना देते हुए बोले—"वत्स, इतने बडे शास्त्रज्ञ होकर इस तरह दिल छोटा करना तुम्हे शोभा नही देता। धीरज धरो और आगे जो-कुछ करना है उसपर ध्यान दो। विपत्ति तो सबपर पडती है। तुम जानते ही हो कि पुराने जमाने मे स्वयं देवराज इन्द्र को दैत्यो के धोखे में आने के कारण राज्यच्युत होना पड़ा था और निषद् देश मे ब्राह्मण का भेष बनाकर वे रहे थे। किन्तु देवराज

छिपे-ही-छिपे ऐसे उपाय भी करते रहे जिससे वे आगे जाकर शत्रुओ की शक्ति तोड़ने में सफल हुए। तुम्हे भी ऐसा ही कुछ करना होगा। ससार की रक्षा के लिए स्वयं भगवान् विष्णु को साधारण मनुष्यों की ही भाति अदिति के गर्भ में रहना और जन्म लेना पडा था। अपना उद्देश्य साधने के लिए उन्होने वे सब कष्ट झेले और अत मे सम्राट् महाबली से राज्य छीनकर मनुष्यमात्र की रक्षा की। भगवान् नारायण को भी वृत्रासुर के वध के लिए इन्द्र के वज्र में प्रवेश करके छिपना पडा था। इसी प्रकार देवताओ का काम बनाने के लिए अग्नि को जल में छिपकर रहना पडा था। रोज हम देखते है कि भगवान् सूर्य भी तो प्रतिदिन पृथ्वी के उदर में जैसे विलीन हो जाते हैं और फिर निकलते हैं ! भगवान् विष्णु ने महाबली रावण का वध करने की खातिर महाराज दशरथ के यहा मनुष्य-योनि मे जन्म लेकर बरसो तक कितने ही भारी कष्ट उठाये थे। इसी तरह कितने ही महान् लोगो को छिपकर रहना पड़ा है और उन्होने अन्त में अपना उद्देश्य प्राप्त किया है। उन्ही की भाति कार्य करने पर तुम विजय प्राप्त करोगे और भाग्यवान बनोगे। किसी तरह की चिन्ता न करो।"

युधिष्ठिर ने ब्राह्मणो की अनुमति लेकर उन्हे और अपने परिवार के और लोगो से कहा कि वे नगर को लौट जाय। युधिष्ठिर की बात मानकर सब लोग नगर लौट आये और यह खबर उड गई कि पाण्डव हम लोगो को आधी रात में सोता छोडकर न जाने कहा चले गए। यह सुनकर लोगो को बडा दुख हुआ।

इधर पाण्डव वन के एक एकान्त स्थान मे बैठकर आगे के कार्यक्रम पर सोच-विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा—"अर्जुन ! तुम लौकिक व्यवहार अच्छी तरह जानते हो। बताओ कि यह तेरहवा बरस किस देश मे और किस तरह बिताया जाय ?"

अर्जुन ने जवाब दिया—"महाराज ! स्वयं धर्मदेव ने इसके लिए आपको वरदान दिया है। सो इसमे सन्देह नही कि हम बारह महीने बडी सुगमता के साथ इस प्रकार बिता सकेगे कि जिसमें किसी को हमारा असली परिचय प्राप्त न हो सके। अच्छा यही होगा कि हम सब एक साथ ही रहें। कौरवों के देश के आसपास पांचाल, मत्स्य, शाल्व, वैदेह, बाल्हिक,

दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितन ही देश है। इनमें से आप जिसे पसन्द करें वहीं जाकर रह जायंगे। यदि मुझसे पूछा जाय तो मै कहूंगा कि मत्स्य के देश में जाकर रहना ठीक होगा। इस देश के अधीश राजा विराट है। विराट का नगर बहुत ही सुन्दर और समृद्ध है। मेरी तो ऐसी ही राय होती है। आगे आप जो उचित समझें।"

युधिष्टिर ने कहा—"मत्स्याधिपति राजा विराट को तो मै भी जानता हूं। वे बड़े शक्ति-सपन्न हैं। हमें चाहते भी बहुत ह। धर्म पर चलनेवाले है और वयोवद्ध है। दुर्योघन की बातो में भी वे आनेवाले नही है। अत. मै भी यही उचित समझता हूं कि राजा विराट के यहा छिपकर रहा जाय।"

"यह तो तय हुआ—लेकिन यह भी तो निश्चय करना है कि हम विराट के यहां रहकर काम कौन-सा करेंगे?"—अर्जुन ने पूछा और यह पूछते हुए वह शोक में आतुर हो उठा। यह सोचकर उसका जी भर आया कि जिन महात्मा युधिष्ठिर को कपट छू तक न गया था, जिन्होने राजसूय-महायज्ञ करके सुयश एवं राजाधिराज की पदवी पाई थी, उन्ही को छद्मवेष में रहकर एक दूसरे राजा के यहां नौकरी करनी पडेगी।

अर्जुन का प्रश्न सुनकर युधिष्टिर कहने लगे—"मैने सोचा है कि राजा विराट से प्रार्थना करूं कि मुझे अपने दरबारी काम-काज के लिए रख लें। राजा के साथ मै चौपड़ खेला करूंगा और उनका मन बहलाया करूंगा। संन्यासी का-सा भेष बनाकर कंक के नाम से मैं राजा के यहा रहूंगा। चौपड खेलने के अलावा राजपण्डित का भी काम मै कर लूगा। ज्योतिष, शकुन, नीति आदि शास्त्रो तथा वेद-वेदांगो का मुझे जो ज्ञान है, उससे राजा को हर तरह से प्रसन्न रखूगा। साथ ही सभा में राजा की सेवा-टहल भी कर लूंगा। कह दंगा कि राजा युधिष्ठिर का मै मित्र रह चुका हूं और सारे शास्त्र उन्ही से सीखे है। मैं यह सब बडी सावधानी से कर लूगा जिससे राजा विराट को मुझपर जरा भी सन्देह न हो। तुम लोग मेरी चिन्ता न करना।"

अपने बारे में यह कहने के बाद युधिष्ठिर ने भीम से पूछा—

"भीमसेन ! राजा विराट के यहां तुम कौन-सा काम करोगे ?" यह पूछते-पूछते युधिष्ठिर की आखे भर आई। गद्गद स्वर में कहने लगे— "यक्षो और राक्षसो को कुचलने वाले भीम ! तुम्हीने उस ब्राह्मण की खातिर बकासुर का वध करके सारी एकचक्रा नगरी को बचाया था। हिडिंबासुर का तुम्हीने वध किया था। जटासुर का वध करके हमें जिलाया था। यह अनुपम बल, यह अदम्य क्रोध और यह विख्यात वीरता लेकर तुम कैसे मत्स्यराज के यहा दबकर रह सकोगे और कौन-सी नौकरी करोगे ?"

भीमसेन बोला—"भाई साहब ! आप अच्छी तरह जानते है कि मै रसोई बनाने के काम मे बड़ा ही कुशल हूं। इसलिए मेरा खयाल है कि राजा विराट के यहा मै रसोइया बनकर रह सकता हूं। ऐसे स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर राजा विराट को खिलाऊगा जो उन्होने कभी खाये न होगे। मेरे काम से निश्चय ही वे बडे खुश होंगे। जलाने के लिए जंगल से लकडी चीरकर मै ले आया करूंगा। इसके अलावा राजा के यहा जो पहलवान आया करेंगे उनके साथ कुश्ती लडा करूंगा और उन्हे पछाड कर राजा का मन बहलाया करूगा।"

भीमसेन के कुश्ती का नाम लेने से युधिष्ठिर का मन जरा विचलित हो गया। उन्हे इस बात का भय था कि भीमसेन कुश्ती लडने मे कही कोई अनर्थ न कर बैठे। भीम ने यह बात तुरन्त ताड़ ली और समझाकर बोला—"भाई साहब, आप बेफिक्र रहिये। मै किसी को जान से नही मारूगा। हा, जरा उनकी हड्डिया चटखाकर उन्हे सताऊंगा जरूर, लेकिन किसी को खत्म नही करूंगा। कभी-कभी हठीले बैलो, भैंसो और जगली जानवरो को काबू मे करके भी विराट का मन बहलाया करूगा।"

इसके बाद युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा—"भैया अर्जुन, तुम्हे कौन-सा काम करना पसन्द है ? तुम्हारी वीरता और कान्ति तो छिपाये नही छिप सकती। कैसे उसे छिपा सकोगे ?"

अर्जुन बोला—"भाई साहब, मैं विराट के रनवास में रानियो व राजकुमारियो की सेवा-टहल किया करूंगा। उर्वशी से मुझे नपुन्सकत्व का शाप भी मिला है। जब मै देवराज के यहां गया हुआ था, उर्वशी ने

मुझसे प्रेम-याचना की थी। मैंने यह कहकर इनकार कर दिया कि आप मेरे लिए माता के समान है। इससे नाराज होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तुम्हारा पुरुषत्व नष्ट हो जाय। इसके बाद देवराज इन्द्र ने अनुग्रह करके मुझे बताया कि, तुम जब चाहो तभी, केवल एक ही बरस के लिए उर्वशी के शाप का यह प्रभाव तुमपर रहेगा। वही शाप इस समय हमारा काम देगा। मै सफेद शख की चूडिया पहन लूगा। स्त्रियो की भाति चोटी गूथ लूगा और कचुकी भी पहन लूगा। इस प्रकार विराट के अन्त पुर में रहकर स्त्रियो को नाचना और गाना भी सिखलाऊंगा। कह दूगा कि मैंने युधिष्ठिर के रनवास में द्रौपदी की सेवा मे रहकर यह हुनर सीख लिया है।" यह कहकर अर्जुन द्रौपदी की ओर देखकर मुसकरा दिया।

अर्जुन की बात सुनकर युधिष्ठिर फिर उद्विग्न हो उठे। वे बोले— "दैव की गति कैसी है! जो कीर्त्ति और पराक्रम मे वासुदेव के समान है, जो भरतवश का रत्न है और जो सुमेरु पर्वत के समान गर्वोन्नत है, उसी अर्जुन को राजा विराट के पास नपुसक बनकर जाना पडे और रनवास में नौकरी करने की प्रार्थना करनी पडे! क्या हमारे प्रारब्ध मे यह भी बदा था?"

इसके बाद युधिष्ठिर की दृष्टि नकुल और सहदेव पर पडी। सन्तप्त होकर पूछा—"भैया नकुल! तुम्हारा कोमल शरीर यह दुःख कैसे उठा सकेगा? बताओ तुम कौन-सा काम करना चाहोगे?"

नकुल ने कहा—"मै विराट के अस्तबल मे काम करूगा। घोड़ो को सधाने और उनकी देख-रेख करने मे मेरा मन लग जायगा। घोड़ो के इलाज के बारे मे मैंने काफी ज्ञान प्राप्त किया है। किसी भी घोडे को मैं काबू मे ला सकता हू। घोडो को, चाहे वे सवारी के हो चाहे रथ-जैसे वाहनो में जोतने के लिए हो, उन्हे सधाने मे मुझे निपुणता प्राप्त है। विराट से कह दूगा कि पाण्डवो के यहा मैं अश्वपाल के काम पर लगा हुआ था। निश्चय ही मुझे अपनी पसन्द का काम मिल जायगा।"

अब सहदेव की बारी आई। "बुद्धि मे बृहस्पति तथा नीति-शास्त्र की निपुणता में शुक्राचार्य ही जिसकी समता कर सकते है और मत्रणा देने में जिसका कोई सानी नही रख सकता, ऐसा मेरा छोटा भाई सहदेव क्या करेगा?"—युधिष्ठिर ने रुद्धकंठ से पूछा।

सहदेव ने कहा—"मेरी इच्छा है कि मै तन्तिपाल का नाम रखकर विराट के चौपायो की देख-भाल करने के काम में लग जाऊं। मै विराट के गाय-बैलों को किसी तरह की बीमारी न होने दूगा और जगली जानवरो से उनकी रक्षा किया करूंगा। ऐसी कुशलता के साथ उनकी देखभाल किया करूंगा कि जिससे मत्स्यराज की गायें संख्या मे बढती जायं, हृष्ट-पुष्ट हो और अधिक दूध भी देने लगे। बैल और सांडो के लक्षणो से भी में भलीभाति परिचित हूं।"

इसके बाद युधिष्ठिर द्रौपदी से पूछना चाहते थे कि तुम कौन-सा काम कर सकोगी? किन्तु उनसे पूछते न बना। मुह से शब्द निकलते नही थे। वे मूक-से बने रहे। जो प्राणो से भी प्यारी है, माता के समान जिसकी पूजा और रक्षा होनी चाहिए, वह सुकुमार राजकुमारी किसीकी कैसे और कौन-सी नौकरी कर सकेगी! युधिष्ठिर को कुछ न सूझा। मन-ही-मन व्यथित होकर रह गये।

युधिष्ठिर के मन की व्यथा द्रौपदी ताड गई और स्वय ही बोल उठी—"महाराज, आप मेरे कारण शोकातुर कदापि न हो! मेरी ओर से निश्चिन्त रहे। सैरन्ध्री बनकर मै राजा विराट के रनवास में काम कर लूंगी। रानियो और राजकुमारियो की सहेली बनकर उनकी सेवा-टहल भी करती रहूंगी। अपनी स्वतत्रता व सतीत्व पर जरा भी आच न आने दूगी। राजकुमारियो की चोटी गूथने और उनके मनोरजन के लिए हसी-खुशी से बाते करने के काम मे लग जाऊगी। मै कहूगी कि सम्राट् युधिष्ठिर के राजमहल में महारानी द्रौपदी की सेवा-शुश्रूषा करती रही हू। इस प्रकार राजा विराट के रनवास मे सेवा करती हुई छिपी रहूगी।"

यह सुनकर युधिष्ठिर मुग्ध हो गए। द्रौपदी की सहनशीलता की प्रशसा करते हुए बोले—"धन्य हो कल्याणी! वीर-वंश की बेटी हो तुम! तुम्हारी ये मगलकारिणी बाते तुम्हारे कुल के ही अनुरूप है!"

●

पाण्डवों के इस प्रकार निश्चय कर चुकने पर धौम्य मुनि उनको आशीर्वाद व उपदेश देते हुए बोले—"किसी राजा के यहां नौकरी करते हुए बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। राजा की सेवा में तत्पर रहना

चाहिए, किन्तु अधिक बातें न करनी चाहिए। राजा के पूछने ही पर कुछ सलाह देनी चाहिए। उसके बिना पूछे आप ही मंत्रणा देने लगना राजसेवक के लिए उचित नही। समय पाकर राजा की स्तुति करनी चाहिए। मामूली-से-मामूली काम के लिए भी राजा की अनुमति ले लेनी चाहिए। राजा मानो मनुष्य के रूप में आग है। उसके न तो बहुत नजदीक जाना चाहिए, न बहुत ही दूर हट जाना चाहिए। मतलब यह कि राजा से न तो अधिक हेल-मेल रखना चाहिए, न उसकी लापरवाही ही करनी चाहिए। राजसेवक चाहे कितना ही विश्वस्त क्यो न हो, कितने ही अधिकार उसे क्यो न प्राप्त हो, उसको चाहिए कि सदा पदच्युत होने के लिए तैयार रहे और दरवाजे की ही ओर देखता रहे। राजाओ पर भरोसा रखना नासमझी है। यह समझकर कि अब तो राज-स्नेह प्राप्त हो गया है, उसके आसन पर बैठना या उसके वाहनो पर चढना अनुचित है। राजसेवक को चाहिए कि वह कभी सुस्ती न करे और अपने मन पर काबू रखे। राजा चाहे गौरवान्वित करे चाहे अपमानित, सेवक को चाहिए कि अपना हर्ष या विषाद प्रकट न होने दे।

"भेद की जो बाते कही या की जाय उन्हे बाहर किसीसे न कहे, उन्हे पचा लेना चाहिए। प्रजाजनो से रिश्वत न लेनी चाहिए। किसी दूसरे सेवक से जलना न चाहिए। हो सकता है, राजा सुयोग्य व्यक्तियों को छोडकर निरे मूर्खों को ऊचे पदो पर नियुक्त करे। इससे जी छोटा न करना चाहिए। उनसे खूब चौकन्ना रहना चाहिए।"

इस प्रकार राजसेवको के ध्यान देने योग्य कितनी ही बातें पाण्डवों को समझाने के बाद पुरोहित धौम्य ने उन्हे आशीर्वाद दिया और बोले—"पाण्डु-पुत्रो! एक बरस इस भाति विराट के यहा सेवक बनकर रहना और धीरज से काम लेना। इसके बाद तुम्हारा राज्य फिर तुम्हारे हाथ मे आ जायगा और तुम सुखपूर्वक राज करते हुए जीते रहोगे।"

: ४४ :

अज्ञातवास

युधिष्ठिर ने गेरुआ वस्त्र पहना और सन्यासी का भेस धर लिया। अर्जुन के तो शरीर मे ही नपुसक के-से परिवर्त्तन हो गये। और सबने भी अपना-अपना भेष इस प्रकार बदल लिया कि कोई उन्हे पहचान न सके, किंतु शकल-सूरत के बदल जाने पर भी क्षत्रियो की-सी स्वाभाविक काति और तेज भला कहां छिप सकता था? राजा विराट के यहा चाकरी करने गये तो विराट ने उन्हे अपना नौकर बनाकर रखना उचित न समझा। हर एक के बारे मे उनका यही विचार हुआ कि ये तो राज करने योग्य प्रतीत होते है। मन मे शका तो हुई, पर पाडवो के बहुत आग्रह करने और विश्वास दिलाने पर राजा ने उन्हे अपनी सेवा मे ले लिया। पाडव अपनी-अपनी पसन्द के कामो पर नियुक्त कर लिये गए।

युधिष्ठिर कक के नाम से विराट के दरबारी बन गए और राजा के साथ चौपड खेलकर दिन बिताने लगे। भीमसेन रसोइयो का मुखिया बनकर रह गया। वह कभी-कभी मशहूर पहलवानो से कुश्ती लडकर या हिंस्र जन्तुओ को वश मे करके राजा का दिल बहलाया करता था।

अर्जुन बृहन्नला के नाम से रनिवास की स्त्रियो को—खासकर विराट की कन्या उत्तरा और उसकी सहेलियो एवं दास-दासियो को नाच, गाना और बाजा बजाना सिखलाने लगा।

नकुल घोडो को सधाने, उनकी बीमारियों का इलाज करने और उनकी देखभाल करने मे अपनी चतुरता का परिचय देते हुए राजा को खुश करता रहा।

सहदेव गाय-बैलो की देखभाल करता रहा।

पांचालराज की पुत्री द्रौपदी, जिसकी सेवा-टहल के लिए कितनी ही दासिया रहती थी, अब अपने पतियो की प्रतिज्ञा पूरी करने के हित दूसरी रानी की आज्ञाकारिणी दासी बन गई। विराट की पत्नी सुदेष्णा की सेवा-शुश्रूषा करती हुई रनिवास में सैरन्ध्री का काम करने लगी।

●

रानी सुदेष्णा का भाई कीचक बड़ा ही बलिष्ठ और प्रतापी वीर था। मत्स्य देश की सेना का वही नायक बना हुआ था और अपने कुल के लोगों को साथ लेकर कीचक ने बूढे विराटराज की शक्ति और सत्ता खूब बढा दी थी। कीचक की धाक लोगो पर जमी हुई थी। लोग कहा करते थे कि मत्स्य देश का राजा तो कीचक है, विराट नही। यहा तक कि स्वयं विराट भी कीचक से डरा करते थे और उसका कहा मानते थे।

कीचक को अपने बल और प्रभाव का बडा घमण्ड था। ऊपर से राजा विराट ने भी उसे सिर चढा रखा था ! इस कारण उसकी बुद्धि फिर गई। इधर जब से द्रौपदी पर उसकी नजर पडी, उसके मन की वासना और प्रबल हो उठी। उसने सोचा--आखिर दासी ही तो है। इसे सहज ही मे राजी कर लिया जा सकता है। इस विचार से कीचक ने कई बार सती द्रौपदी के साथ छेड-छाड करने की चेष्टा की।

कीचक की इन हरकतो से द्रौपदी बडी कुण्ठित हो उठी। किंतु किसी से कुछ कहते भी न बन पड़ा। सकोच के मारे रानी सुदेष्णा से भी कुछ कह न सकी। हा, उसने इतनी बात अवश्य फैला रखी थी कि मेरे पति गन्धर्व हैं। जो भी मुझे बुरी नजर से देखने या छेड़ने की कोशिश करेगा उसकी मेरे पति अच्छी तरह खबर लेंगे--गुप्त रूप से हत्या तक कर देंगे। द्रौपदी के सतीत्व, शील-स्वभाव और तेज को देखकर सबने उसकी बातों पर विश्वास कर लिया था, किंतु धूर्त्त कीचक को तो गन्धर्वों का भी डर न था। वह अपनी हरकतो से बाज नही आया। कितनी ही बार उसने द्रौपदी से छेड़-छाड़ की। जब किसी तरह काम बनता न दीखा तो उसने अपनी बहन रानी सुदेष्णा का सहारा लिया। वह गिडगिड़ाकर बोला--"बहन ! जबसे मेरी नजर तुम्हारी सैरन्ध्री पर पडी है, मुझे न दिन को चैन है, न रात को नींद। मुझपर दया करके किसी-न-किसी उपाय

से तुम उसे मेरी इच्छा के अनुकूल बना दो तो बड़ा उपकार हो।" सुदेष्णा ने उसे बहुतेरा समझाया; पर कीचक अपने हठ से न टला। अन्त में विवश होकर सुदेष्णा ने अनमने मन से कीचक की सहायता करना स्वीकार कर लिया। भाई और बहन दोनों ने मिलकर द्रौपदी को फंसाने का कुचक्र रच लिया।

इस कुमंत्रणा के अनुसार एक रात कीचक के भवन में बडे भोज का आयोजन किया गया और मदिरा तैयार की गई। रानी सुदेष्णा ने द्रौपदी को एक सुन्दर सोने का कलश देते हुए कहा—"भैया के यहां बड़ी अच्छी किस्म की मदिरा तैयार की गई है। वहां जाओ और यह कलश भरकर ले आओ।"

सुनकर द्रौपदी का कलेजा धडक उठा। बोली—"इस अंधेरी रात मे मैं कीचक के यहा अकेली कैसे जाऊं? महारानी, मुझे डर लगता है। आपकी कितनी ही और दासियां है। उनमे से किसी को भेज दीजिए।"

इस तरह द्रौपदी ने बड़ी मिन्नतें कीं; किंतु सुदेष्णा न मानी। क्रोध करती हुई बोली—"तुम्ही को जाना पड़ेगा। यही मेरी आज्ञा है। और किसी को नही भेजा जा सकता। जाओ।" विवश होकर द्रौपदी को जाना पडा।

कीचक ने वैसा ही व्यवहार किया जिसका द्रौपदी को डर था। कामाध कीचक ने द्रौपदी को छेडा, उससे आग्रह किया, मिन्नतें की और फिर बहुत तग किया।

द्रौपदी बोली—"सेनापति, आप राजकुल के हैं और मैं एक नीच नौकरानी। फिर आप मुझे कैसे चाहने लगे? यह अधर्म करने पर क्यो तुले हुए है? मै ब्याही हुई पराई स्त्री हूं। इस कारण आपसे प्रार्थना है कि सावधान ही रहे। यदि आपने मेरा स्पर्श भी किया तो आपका सर्व-नाश हो जायगा। ध्यान रहे मेरे रक्षक गन्धर्व लोग है। वे क्रोध में आ गये तो आपका प्राण ही लेकर छोड़ेंगे।"

अनुनय-विनय और आग्रह से काम न बनते देखकर दुष्ट कीचक ने बलपूर्वक अपनी इच्छा पूरी करनी चाही और द्रौपदी का हाथ पकड़कर खीच लिया। द्रौपदी ने मधुकलश वहीं पटक दिया और झटका मार कर

कीचक से हाथ छुड़ाकर राजसभा की ओर भागने लगी। गुस्से से भरा कीचक उसका पीछा करने लगा। द्रौपदी हरिणी की भाति भय-विह्वल होकर राजा की दुहाई मचाती भागी और राजसभा में पहुंच गई। इतने मे कीचक भी उसका पीछा करता हुआ वहा जा पहुंचा। अपनी शक्ति और पद के मद में अन्धा होकर भरी सभा में उसने द्रौपदी को ठोकर मारकर गिरा दिया और अपशब्द भी कहे। सारे सभासद् देखते रह गए। किसी की हिम्मत न पडी कि इस अन्याय का विरोध करे। मत्स्य देश के राजा तक को जिसने मुट्ठी मे कर लिया था ऐसे प्रभावशाली सेनापति के खिलाफ कुछ भी बोलने की किसी को हिम्मत न पडी। सबके-सब मारे डर के चुप्पी साधे बैठे रहे।

अपमानित द्रौपदी लज्जा और क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गई। अपनी हीन और नि:सहाय अवस्था पर उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसका धीरज टूट गया। अपना परिचय ससार को मिल जान से जो अनर्थ हो सकता था उसकी भी परवाह न करके रातोरात वह भीमसेन के पास चली गई और भीमसेन को सोते से जगाया। भीम चौककर उठ बैठा।

आसू बहाती और सिसकती हुई द्रौपदी उससे बोली--"भीम, मुझसे यह अपमान नही सहा जाता। नीच दुरात्मा कीचक का इसी घडी वध करना होगा। महारानी होकर भी मै अगर विराट की रानियो के लिए चन्दन घिसनेवाली दासी बनी तो यह तुम्ही लोगो की प्रतिज्ञा कायम रखने के लिए। तुम लोगो की खातिर ऐसे लोगो की सेवा-चाकरी कर रही हू जो आदर के योग्य नही हैं। मै हमेशा निर्भय रही हूं, यहां तक कि स्वयं कुंती देवी और तुमसे भी मै कभी नही डरी; किंतु आज यहां तक नौबत पहुच गई कि रनिवास मे हर घडी कापती हुई सबकी सेवा-टहल कर रही हू। मेरे इन हाथो को तो देखो।" कहकर द्रौपदी ने भीमसेन को अपने हाथ दिखलाये। भीमसेन ने देखा कि चन्दन घिसने के कारण द्रौपदी के कोमल हाथो मे छाले पडे हुए हैं। आतुर होकर उसने द्रौपदी के हाथो को अपने मुख पर रखकर प्रेम से दबा लिया।

भीमसेन ने द्रौपदी के आंसू पोछे और जोश में आकर बोला—"कल्याणी, अब मैं न तो युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का पालन करूंगा, न

अर्जुन की सलाह ही पर ध्यान दूगा। जो तुम कहोगी वही करूंगा। इसी घडी जाकर कीचक और उसके सारे भाई-बन्धुओ का काम-तमाम किए देता हूं।"—कहकर भीम फुरती से उठ खडा हुआ।

भीम को इस प्रकार एकदम उठते देख द्रौपदी सभल गई। उसने भीमसेन को सचेत करते हुए कहा कि उतावली मे कोई काम कर डालना ठीक नही। तब कुछ देर तक दोनो सोचते रहे और अन्त में यह निश्चय किया कि कीचक को धोखे से राजा की नृत्यशाला के किसी एकात स्थान मे रात को अकेले मे बुला लिया जाय और वही उसका काम-तमाम किया जाय।

अगले दिन सुबह जब कीचक ने द्रौपदी को देखा तो बोला—"सैरंध्री! तुम्हे कल मैंने सभा मे ठोकर मार कर गिराया था। सभा के सब लोग देख रहे थे, किंतु किसीका साहस न हुआ कि तुम्हे बचाने के लिए आगे बढे। सुनो, विराट मत्स्य-देश का राजा है सही; पर है नाममात्र का। असल मे तो मैं ही यहा का सब कुछ हू। यदि मेरी इच्छा पूरी करोगी तो महारानी का-सा पद व सुख भोगोगी और मैं तुम्हारा दास बनकर रहूगा। मेरी बात मान लो।"

द्रौपदी ने कुछ ऐसा भाव बताया मानो कीचक की बात उसे स्वीकार है। वह बोली—

"सेनापति! मैं आपकी बात मानने को राजी हू। मेरी बात पर विश्वास करे। मै सच कहती हू। यदि आप मुझे वचन दे कि आप मेरे साथ समागम की बात किसीको मालूम न होने देगे तो मैं आपके अधीन होने को तैयार हू। मै लोक-निन्दा से डरती हू और यह नही चाहती कि यह बात आपके साथी-सबंधियो को मालूम हो। बस इतनी-सी ही बात है।"

यह सुनकर कीचक मारे आनन्द के नाच उठा और द्रौपदी जो भी कुछ कहे उसे मानने के लिए तैयार होगया।

द्रौपदी बोली—"नृत्यशाला मे स्त्रिया दिन के समय नाच सीखती रहती है और रात को सब अपने-अपने घर चली जाती हैं। रात मे वहा कोई नही रहता। इसलिए आज रात को आप वही आकर मुझसे मिले।

मैं वहीं किवाड़ खुले रखकर खड़ी रहूंगी और वहीं मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूंगी।"

कीचक के आनन्द का ठिकाना न रहा।

रात हुई। कीचक स्नान करके खूब बन-ठनकर निकला और दबे पाव नृत्यशाला की ओर बढ़ा। किवाड खुले थे। कीचक जल्दी से अदर घुस गया ताकि कोई देख न ले।

नृत्यशाला मे अंधेरा था। कीचक ने गौर से देखा तो पलग पर कोई लेटा हुआ दिखाई दिया। अधेरे मे टटोलता हुआ पलग के पास पहुंचा। पलग पर भीमसेन सफेद रेशम की साडी पहने लेटा हुआ था। कीचक ने उसे सैरन्ध्री समझा और धीरे से उसपर हाथ फेरा। कीचक का हाथ फेरना था कि भीमसेन उसपर ऐसे झपटा जैसे हिरन पर शेर झपटता है। एक धक्के मे भीम ने कीचक को गिरा दिया और अधेरे मे ही दोनो मे कुश्ती शुरू होगई। कीचक ने यही समझा कि सैरन्ध्री के गन्धर्वों मे से किसी के साथ वह लड रहा है। वैसे कीचक भी कुछ कम ताकतवर नहीं था। उन दिनो कुश्ती लडने में भीम, बलराम और कीचक तीनो को एक समान ही निपुणता और यश प्राप्त था। इसलिए दोनो मे ऐसा द्वन्द्व होने लगा, जैसा प्राचीन काल मे बाली और सुग्रीव का हुआ बतलाते हैं।

कीचक बली था अवश्य; पर कहा भीम और कहा कीचक ! वह भीम के आगे ज्यादा देर ठहर न सका। जरा देर मे ही भीम ने कीचक की ऐसी गति बना दी कि उसका एक गोलाकार मास-पिड-सा बन गया। फिर द्रौपदी से विदा लेकर भीम रसोईघर में चला गया और नहा-धोकर आराम से सो रहा।

इधर द्रौपदी ने नृत्यशाला के रखवालो को जगाया और बोली—"कीचक हमेशा मुझे तग किया करता था। आज भी वह तंग करने आया था। तुम लोगो को मालूम है ही कि मेरे पति गधर्व हैं। उन्होने क्रोध मे आकर कीचक का वध कर दिया है। अधर्म के रास्ते चलने के कारण गन्धर्वों के हाथो तुम्हारे सेनापति वह मरे पडे है।"

रखवालों ने देखा कि वहां पर सेनापति कीचक नही, बल्कि खून से लथपथ एक मास-पिड पड़ा था।

: ४५ :

विराट की रक्षा

कीचक के वध की बात विराट के नगर मे फैली तो लोगों में बड़ा आतक छा गया। द्रौपदी के प्रति सब सशंक हो गये। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। कहने लगे कि सैरन्ध्री है भी तो बड़ी सुन्दर! जो उसकी ओर आकर्षित न हो वही गनीमत। और फिर इसके पति गंधर्व! किसीने आख उठाकर देखा कि यमराज के घर पहुंचा! इस कारण यह तो एक प्रकार से नगर के प्रजाजन और राज-घराने के लोगो पर मानो आफत के समान है। सबको यह डर बना रहेगा कि गधर्व नाराज होकर कही नगर पर कुछ आफत न ढा दें। इससे कुशल तो इसीमें है कि इस सैरंध्री को ही नगर से बाहर निकाल दिया जाय।

यह सोचकर कीचक के संबंधी व हितचिंतक सब रानी सुदेष्णा के पास गये और उससे प्रार्थना की कि सैरंध्री को किसी तरह नगर से निकाल दिया जाय।

सुदेष्णा ने द्रौपदी से कहा—"बहन! तुम बडी पुण्यवती हो। अबतक तुमने हमारे यहा जो सेवा की उसीसे हम सतुष्ट हो गईं। बस, अब इतनी दया करो कि हमारा नगर छोडकर चली जाओ। तुम्हारे गन्धर्व हमारे नगर पर न जाने कब और क्या आफत ढा दे!"

यह उस समय की बात है जब पाण्डवो के अज्ञातवास की अवधि पूरी होने में केवल एक ही महीना रह गया था। सुदेष्णा की बात सुनकर द्रौपदी बडी चिन्तित हो गई। बोली—"रानीजी! मुझसे नाराज न होइये। मैंने कोई अपराध नही किया। मुझे एक महीने की और मोहलत दीजिए। तबतक मेरे गन्धर्व पति कृत-कार्य हो जायगे। ज्यों ही उनका

उद्देश्य पूरा हो जायगा, मैं भी उनके साथ मिल जाऊंगी। इसलिए अभी मुझे काम पर से न निकालिये। मेरे पति गन्धर्वगण इसके लिए आपका और राजा विराट का बड़ा आभार मानेंगे।"

सुदेष्णा को डर था कि कहीं सैरंध्री नाराज न हो जाय और उसके पति और कोई आफत खड़ी न कर दें, इसलिए उसने यह बात मान ली।

●

जबसे पाण्डवो के बारह बरस के वनवास की अवधि पूरी हुई, तभी से दुर्योधन के गुप्तचरो ने पाण्डवो की खोज लगानी शुरू कर दी थी। कितने ही देशो, नगरो और गावो को छान डाला गया। कोई ऐसी जगह नही छोड़ी, जहा छिपकर रहा जा सकता था। महीनो इसी काम में लगे रहने पर भी जब पाडवो का कही पता न लगा तो हारकर वे दुर्योधन के पास लौट आये और बोले—

"राजकुमार! हमने पाण्डवो को खोजने में ऐसे स्थानों को भी ढूढा, जहा मनुष्य रह ही नही सकते। ऐसे-ऐसे जगल छान डाले जो झाड-झखाड़ से भरे हैं। कोई आश्रम ऐसा नही रहा जिसमें हमने उन्हे न खोजा हो। यहा तक कि पहाड की चोटियो तक को ढूढे बिना न छोडा। ऐसे नगरो मे जहा कि लोग भरे रहते हैं, हमने एक-एक से पूछकर पता लगाया, परन्तु फिर भी पाण्डवो का कही पता नही मिला। आप निश्चय माने कि पाण्डव अब खत्म हो चुके हैं।"

इन्ही दिनो हस्तिनापुर में कीचक के मारे जाने की खबर फैल गई। यह भी सुनने मे आया कि किसी स्त्री के कारण यह वध हुआ। यह खबर पाते ही दुर्योधन ने समझ लिया कि हो-न-हो कीचक का वध भीम ने ही किया होगा और वह भी द्रौपदी के कारण। महाबली कीचक को मारना सिर्फ दो ही व्यक्तियों के बूते का काम है; भीम और बलराम। बलराम का कीचक से कोई वैर नहीं। इसलिए निश्चय ही भीम ने कीचक को मारा होगा। दुर्योधन ने यह अदाज लगाया। उसने अपना यह विचार राजसभा मे भी प्रकट करते हुए कहा—"मेरा खयाल है कि पाडव विराट-नगर में ही कही छिपे हुए हैं। वैसे भी राजा विराट मेरी मित्रता अस्वीकार करते आये है। इस कारण हमें ऐसे उपाय करने चाहिए जिनसे

इस बात का ठीक-ठीक पता लग जाय कि पाण्डव विराट के यहां शरण लिए हुए हैं या नहीं। मुझे तो ठीक मालूम होता है कि मत्स्य-देश पर धावा कर देना चाहिए और विराट की गायों को चुरा लाना चाहिए। यदि पाण्डव वहीं हैं तो निश्चय ही विराट की तरफ से हमारे खिलाफ लड़ने आवेंगे। यदि हम अज्ञातवास की अवधि पूरी होने से पहले ही उनका पता लगा लें तो शर्त के अनुसार उन्हें बारह बरस के लिए और वनवास करना होगा। यदि पाण्डव विराट के यहां न भी हों तो भी हमारा कुछ बिगड़ेगा नहीं। हमारे तो दोनों हाथों लड्डू हैं।"

दुर्योधन की यह बात सुनकर त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा उठा और बोला—"राजन्! मत्स्यदेश के राजा विराट मेरे शत्रु हैं। कीचक ने भी मुझे बहुत तंग किया है। अब जबकि कीचक की मृत्यु हो चुकी है, मत्स्यराज की शक्ति नहीं के बराबर ही समझनी चाहिए। इस अवसर से लाभ उठाकर मैं उससे अपना पुराना वैर भी चुका लेना चाहता हूं। अतः मुझे इस बात की अनुमति दी जाय कि मैं मत्स्य-देश पर आक्रमण कर दूं।"

कर्ण ने सुशर्मा की बात का अनुमोदन किया और फिर सबकी राय से यह निश्चय किया गया कि विराट के राज्य पर दोनों ओर से आक्रमण किया जाय। राजा सुशर्मा अपनी सेना लेकर मत्स्य-देश पर दक्षिण की ओर से हमला करें और जब विराट अपनी सेना लेकर उसका मुकाबला करने जाय तब ठीक इसी मौके पर उत्तर की ओर से दुर्योधन अपनी सेना लेकर अचानक विराट-नगर पर छापा मार दें।

इस योजना के अनुसार राजा सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से मत्स्य-देश पर आक्रमण कर दिया। मत्स्य-देश के दक्षिणी हिस्से में त्रिगर्तराज की सेना छा गई और गायों के झुण्ड-के-झुण्ड सुशर्मा की फौज ने हथिया लिए, लहलहाते खेत उजाड़ डाले, बाग-बगीचों को तबाह कर दिया। ग्वाले और किसान जहां-तहां भाग खड़े हुए और राजा विराट के दरबार में जाकर दुहाई मचाने लगे। विराट को बड़ा खेद हुआ कि महाबली कीचक ऐसे अवसर पर नहीं रहा।

उन्हें चिन्तातुर होते देखकर कंक (युधिष्ठिर) ने उनको सांत्वना देते हुए कहा—"राजन्! चिन्ता न करें। यद्यपि मैं संन्यासी ब्राह्मण

हूं फिर भी अस्त्र-विद्या सीखा हुआ हू। मैंने सुना है कि आपके रसोइये वल्लभ, अश्वपाल ग्रंथिक और ग्वाला ततिपाल भी बडे कुशल योद्धा हैं। मै कवच पहनकर रथारूढ होकर युद्ध-क्षेत्र मे जाऊगा। आप भी उनको आज्ञा दे दे कि रथारूढ होकर मेरे साथ चले। सबके लिए रथ और शस्त्रास्त्र देने की आज्ञा दीजिए।"

यह सुन विराट बडे प्रसन्न हो गए। उनकी आज्ञानुसार चारो वीरो के लिए रथ तैयार होकर आ खडे हुए। अर्जुन को छोड बाकी चारो पाण्डव उनपर चढकर विराट और उसकी सेना समेत सुशर्मा से लडने चले गए।

राजा सुशर्मा और राजा विराट की सेनाओ मे घोर युद्ध हुआ। दोनो ओर के असख्य सैनिक खेत रहे। सुशर्मा ने अपने साथियो-समेत विराट को घेर लिया और विराट को रथ से उतरने पर विवश कर दिया। अन्त मे सुशर्मा ने विराट को कैद करके अपने रथ पर बिठा लिया और विजय का शख बजाते हुए अपनी छावनी में चला गया। जब राजा विराट ही बन्दी कर लिए गए तो उनकी सारी सेना तितर-बितर हो गई। सैनिक जान लेकर भागने लगे।

यह हाल देखकर युधिष्ठिर भीमसेन को आज्ञा देते हुए बोले—"भीम! अब तुम्हे जी लगाकर लडना होगा। लापरवाही से काम नही चलेगा। अभी विराट को छुडा लाना होगा, तितर-बितर हो रही सेना इकट्ठी करनी होगी और सुशर्मा का दर्प चूर करना होगा।"

युधिष्ठिर की बात पूरी भी न होने पाई थी कि इतने मे भीमसेन एक भारी वृक्ष उखाडने लग गया। युधिष्ठिर ने उसको रोककर कहा—"यदि तुम सदा की भाति पेड उखाड़ने और सिह की-सी गर्जना करने लग जाओगे तो शत्रु तुम्हे तुरन्त पहचान लेगा। इसलिए और लोगो की ही भाति रथ पर बैठ हुए धनुष-बाण के सहारे लड़ना ठीक होगा।"

आज्ञा मानकर भीमसेन रथ पर से ही सुशर्मा की सेना पर बाणो की बौछार करने लगा। थोड़ी देर की लड़ाई के बाद भीम ने विराट को छुडा लिया और सुशर्मा को कैद कर लिया। मत्स्यदेश की सेना

जो डर के मारे भाग गई थी, समर-भूमि में फिर से आ डटी और उसने सुशर्मा की सेना पर विजय प्राप्त कर ली।

सुशर्मा की पराजय की खबर जब विराट-नगर पहुंची तो लोगो के उत्साह और आनन्द की सीमा न रही। नगरवालों ने नगर को खूब सजा-कर आनन्द मनाया और विजयी राजा विराट के स्वागत के लिए शहर के बाहर चले। इधर नगर के लोग विजय की खुशिया मना रहे थे और राजा की बाट जोह रहे थे कि उधर उत्तर की ओर से दुर्योधन की एक बडी सेना ने विराट-नगर पर अचानक धावा बोल दिया और ग्वालों की बस्तियो में तबाही मचानी शुरू कर दी। कौरव-सेना ऊधम मचाती हुई असख्य गायो और पशुओ को भगा ले जाने लगी। बस्तियो मे हाहा-कार मच गया। ग्वालो का मुखिया राजभवन की ओर भागा और राज-कुमार उत्तर के आगे दुहाई मचाई।

बोला—"दुहाई है राजकुमार की ! हमपर भारी विपदा आ गई है। कौरव-सेना हमारी गाये भगा ले जा रही है। सुशर्मा से लडने राजा दक्षिण की ओर गये हुए हैं। हमारा बचाव करनेवाला और कोई नही रहा। आप ही हमे इस आफत से बचावे। आप राजकुमार हैं। आप ही का कर्त्तव्य है कि हमारी गाये शत्रु के हाथ से छुडा लाय और राज-वश की लाज रखे।"

रनिवास की स्त्रियो और नगर के प्रमुख लोगो के सामने ग्वालो के मुखिया ने जब उत्तर को अपना दुखडा सुनाया तो राजकुमार जोश मे आगया। बोला—"घबराने की कोई बात नही। यदि मेरा रथ चलाने योग्य कोई सारथी मिल जाय तो मै अकेला ही जाकर शत्रु-सेना के दात खट्टे कर दूगा और एक-एक गाय छुडा लाऊगा। ऐसा कमाल का युद्ध करूगा कि लोग भी विस्मित होकर देखते रह जायगे। कहेगे—"कही यह अर्जुन तो नही है।"

इस समय द्रौपदी अन्त.पुर में ही थी। उत्तर की बात सुनकर राज-कुमारी उत्तरा के पास दौडी गई और बोली—"राजकन्ये ! देश पर विपदा आई है। ग्वाले लोग घबराये हुए राजकुमार के आगे दुहाई मचा रहे है कि कौरवो की सेना उत्तर की ओर से नगर पर हमला कर रही है

और मत्स्यदेश की सैकड़ों-हजारों गायें लूट ली हैं। राजकुमार देश के बचाव के लिए युद्ध में जाने को तयार हैं; किन्तु कोई सुयोग्य सारथी नही मिलता। इसीसे उनका जाना अटका हुआ है। आपकी बृहन्नला रथ चलाना जानती है। जब मैं पाडवो के रनिवास मे काम किया करती थी तो उस समय सुना था कि बृहन्नला कभी-कभी अर्जुन का रथ हांक लेती थी। यह भी सुना था कि अर्जुन ने उसे धनुर्विद्या भी सिखलाई है। इसलिए आप अभी बृहन्नला को आज्ञा दें कि राजकुमार उत्तर की सारथी बन जाय और मैदान मे जाकर कौरव-सेना को रोके।"

राजकुमारी उत्तरा अपने भाई के पास जाकर बोली—"भैया, यह बृहन्नला रथ हांकने मे बड़ी चतुर मालूम होती है। हमारी सैरध्री कहती है—बृहन्नला पाण्डव-वीर अर्जुन की सारथी रह चुकी है। तो फिर क्यो नही उसीको ले जाकर नगर की रक्षा करने का प्रयत्न करते ?"

उत्तर ने बात मान ली। उत्तरा तुरन्त नृत्यशाला मे दौडी गई और बृहन्नला (अर्जुन) से अनुरोध करके कहा—"बृहन्नला ! मेरे पिता की सपत्ति और गायो को कौरव-सेना लूटकर ले जा रही है। दुष्टो ने ऐसे समय पर आक्रमण किया है कि जब राजा नगर मे नही हैं। सैरध्री कहती है कि तुम्हे अस्त्र-शस्त्र चलाना आता है और तुम अर्जुन का रथ हाक चुकी हो तो तुम्ही राजकुमार उत्तर का रथ हाक ले जाओ न ?"

अर्जुन थोडी देर तक तो हा-न करता रहा; पर बाद मे उसने मान लिया। कवच हाथ में लेकर उलटी तरफ से पहनने लगा मानो कुछ जानता ही न हो। यह देखकर अन्त पुर की स्त्रिया खिलखिला उठी। कुछ देर तक अर्जुन यो ही विनोद करता रहा और स्त्रियो को हसाता रहा, लेकिन जब वह घोडो को रथ मे जोतने लगा तो एक मजे हुए सारथी के समान दिखाई दिया। राजकुमार उत्तर के रथ पर बैठ जाने के बाद वह भी बैठ गया और घोड़ो की रास बडी कुशलता से थाम ली और जैसे ही घोडो को चलने का इशारा किया और रथ चल पडा तो उसकी कुशलता देखकर रनिवास की स्त्रिया आश्चर्यचकित रह गई। सिंह की ध्वजा फहराता हुआ रथ बडी शान से कौरव-सेना का सामना करने चल पडा।

जाते-जाते बृहन्नला ने कहा—"राजकुमार अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। शत्रुओं के वस्त्र हरण करके तुम सबको विजय-पुरस्कार के रूप में लाकर दूंगी।"

यह सुनकर अन्तःपुर की स्त्रिया जयजयकार कर उठी।

: ४६ :

राजकुमार उत्तर

बृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर जब नगर से चला तो उसका मन उत्साह से भरा था। वह बार-बार कहता था, "तेजी से चलाओ। जिधर कौरव-सेना गाये भगा ले जा रही है उसी ओर चलाओ रथ को।"

घोडे भी बडे वेग से चले। दूर कौरवों की सेना दिखाई देने लगी। धूल उडकर आकाश तक छाई हुई थी। उस धूल के परदे के पीछे विशाल सागर की भाति चारो दिशाओ मे व्याप्त कौरवो की विशाल सेना खडी थी। राजकुमार ने उस विराट सेना को देखा जिसका सचालन भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और दुर्योधन-जैसे महारथी कर रहे थे।

देखकर उत्तर के रोगटे खड़े हो गए। कंपकपी होने लगी। वह सभल न सका। भय-विह्वल होकर दोनो हाथो से अपनी आखें मूद ली। उससे यह देखा भी नही गया।

बोला—"इतनी बडी सेना से मैं अकेला कैसे लडू? मुझमे इतनी योग्यता कहा जो कौरवो से पार पा सकू? राजा तो मेरे पिता है और वे सुशर्मा से युद्ध करने के लिए अपनी सारी सेना लेकर दक्षिण की तरफ चले गए है। इधर नगर का बचाव करनेवाला कोई न रहा। मै अकेला हू। न तो सेना है, न कोई सेनानायक ही। तुम्ही बताओ, इन बडे-बडे प्रसिद्ध योद्धाओं से मैं छोटा-सा असहाय बालक लडू भी तो कैसे? बृहन्नला, रथ लौटा लो और वापस चली चलो।"

अर्जुन (बृहन्नला) हस पडा। बोला—"राजकुमार उत्तर! वहा स्त्रियो के सामने तो बड़ी शेखी बघार रहे थे। बिना कुछ आगा-पीछा सोचे मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए चल पड़े थे और प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठे थे। नगर के लोग तुम्हारे ही भरोसे है। सैरध्री ने मेरी तारीफ कर दी और तुम राजी हो गए। मै भी तुम्हारी बहादुरी की बाते सुन साथ चलने को तैयार हो गई। अब अगर हम गायें छुडाये बगैर वापस लौट जायेगे तो लोग हमारी हसी उडायेगे। इससे मै तो नही लौटूगी। तुम घबराओ मत। डटकर लडो।"

रथ बडे वेग से जा रहा था। बृहन्नला ने उसे रोकने की कोशिश नही की और रथ शत्रु-सेना के नजदीक पहुच गया। यह देख उत्तर का जी और घबरा उठा।

"तुम रथ रोकती क्यो नही? यह मेरे बस क काम नही है। मै लडूगा नही। कौरव जितनी चाहे गाये भगा ले जाय। स्त्रिया मेरी हसी उडाय तो भले ही उडायं। लडने मे आखिर लाभ ही क्या है? मैं लौट जाऊगा। रथ मोड लो। वरना मै अकेले पैदल ही चल पडूगा।" कहते-कहते उत्तर ने धनुष-बाण फेक दिये और चलते रथ से कूद पडा। घबराहट के मारे वह आपे मे न रहा और पागलो की भाति नगर की ओर भागने लगा।

"राजकुमार! ठहरो, भागो मत। क्षत्रिय होकर तुम्हे ऐसा नही करना चाहिए।" कहता हुआ बृहन्नला के रूप मे अर्जुन भागते हुए राजकुमार का पीछा करने लगा। उसकी लम्बी चोटी नाग-सी फहराने लगी। साडी अस्त-व्यस्त होकर हवा मे उडने लगी। आगे-आगे उत्तर और पीछे-पीछे बृहन्नला। उत्तर बृहन्नला की पकड मे नही आ रहा था और रोता हुआ इधर-उधर भाग रहा था। सामने कौरवो की सेना के वीर आश्चर्य-चकित हो यह दृश्य देख रहे थे। उन्हे हसी भी आ रही थी।

आचार्य द्रोण के मन मे कुछ शका हुई। बोले—"कौन हो सकता है यह? वेश-भूषा तो स्त्रियो की-सी है, पर चाल-ढाल तो पुरुष की-सी दिखाई देती है, कही अर्जुन तो नही है?"

कर्ण ने जवाब दिया—"अर्जुन नही हो सकता और अगर हुआ भी तो क्या? अकेला ही तो है! दूसरे भाइयो के बिना अकेला अर्जुन हमारा कुछ नही बिगाड सकता। पर इतनी दूर की क्यो सोचे? बात यह है कि राजा विराट राजकुमार को नगर मे अकेले छोडकर अपनी सारी सेना लेकर सुशर्मा के विरुद्ध लडने गया मालूम होता है। राजकुमार तो अभी बालक ही है। रनिवास मे सेवा-टहल करनेवाले हीजड़े को सारथी बना लिया और हमसे लडने चला आया है।"

बृहन्नला ने थोडी देर की भाग-दौड के बाद उत्तर को घेरकर पकड लिया और रथ पर बैठा लिया। लेकिन उत्तर तो बिलकुल डर गया था और काप रहा था। उसने बृहन्नला से कहा—"मुझे छोड दो। मै तुम्हे बहुत धन दूगा, वस्त्र दूगा। मुह-मागी वस्तु दूगा। तुम बहुत अच्छी हो। मुझे नगर चले जाने दो। अपनी मा का मै एक ही बेटा हू। लडाई मे मुझे कुछ हो गया तो वह मर जायगी। उसने मुझे बडे प्रेम से पाला है। मै बालक ही तो हू। बचपना करके वहा बडी-बडी बाते कर गया। मैने कोई लडनेवाली सेना देखी थोडे थी। अब यह देखकर तो मेरे प्राण ही निकले जा रहे है। बृहन्नला, मुझे बचाओ इस सकट से! मै तुम्हारा बडा उपकार मानूगा।"

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को बहुत भयभीत और घबराया हुआ जानकर बृहन्नला ने उसे समझाते हुए और उसका हौसला बढाते हुए कहा—

"राजकुमार, घबराओ नही। तुम तो सिर्फ घोडो की रास सभाल लो। इन कौरवो से मैं अकेली ही युद्ध कर लूगी। तुम केवल रथ हाकते जाओ। इसमे जरा भी मत डरो। विजय तुम्हारी ही होगी। भाग जाने से तुमको कोई लाभ न होगा। निर्भय होकर डटे रहोगे तो मै अपने प्रयत्न से सारी सेना को तितर-बितर कर दूगी और तुम्हारी गाये भी छुडा लाऊगी। तुम यशस्वी विजेता प्रसिद्ध होगे।" कहकर अर्जुन ने उत्तर को सारथी के स्थान पर बैठाकर रास उसके हाथ मे पकड़ा दी। राजकुमार ने रास पकड ली। तब अर्जुन ने उससे कहा—"रथ को नगर के बाहर श्मशान के पास जो शमी का वृक्ष है उधर ले चलो।" और रथ उधर तेजी के साथ चल पडा।

आचार्य द्रोण यह सब दूर से देख रहे थे। उनको विश्वास हो रहा था कि नपुसक के भेस मे यह अर्जुन ही है। उन्होने यह बात इशारे से भीष्म को जता दी।

यह चर्चा सुन दुर्योधन कर्ण से बोला—"हमे इस बात से क्या मतलब कि यह औरत के भेस मे कौन है ? मान ले कि यह अर्जुन ही है। फिर भी हमारा तो उनसे काम ही बनता है। शर्त के अनुसार और बारह बरस का वनवास भुगतना पडेगा।"

उधर शमी वृक्ष के पास पहुंचकर बृहन्नला ने उत्तर से कहा—"राजकुमार ! तुम्हारी जय हो ! अब तुम एक काम करो। रास छोड दो और रथ से उतरकर इस शमी वृक्ष पर चढ जाओ। ऊपर एक गठरी मे कुछ हथियार टगे है, उन्हे उतार लाओ।"

उत्तर को यह बात एक पहेली-सी लगी। वह कुछ समझ ही न पाया। बृहन्नला ने उसे फिर समझाकर कहा—"रथ मे जो तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र है वे मेरे काम के नही है। इस पेड पर पाडवो के दिव्यास्त्र बंध रखे है। वही गठरी उतार लाओ।"

उत्तर नाक-भौ सिकोडकर बोला—"लोग तो कहते है कि इस शमी के पेड पर किसी बूढी भीलनी की लाश टगी है। लाश को भला मै कैसे छू सकता हू ? ऐसा घृणित काम मुझसे कैसे करा रही हो ? तुम भूल गई कि मै कौन हूं ?"

बृहन्नला ने कहा—"राजकुमार, मै बिलकुल ठीक कहती हू। वहा जो टंगा है वह किसी की लाश नही है ! मुझे मालूम है कि यहा पाडवो के हथियारो की गठरी है। तुम नि शक होकर पेड पर चढ जाओ और उसे ले आओ। अब देर न करो।"

लाचार होकर उत्तर पेड पर चढा। उसपर जो गठरी टगी थी उसे लेकर मुह बनाते हुए नीचे उतर आया। गठरी चमडे मे लपेट कर बंधी हुई थी। बृहन्नला ने जैसे ही बधन खोला तो उसमे से सूर्य की भाति जगमगाने वाले दिव्यास्त्र निकले।

उन शस्त्रो की जगमगाहट देखकर उत्तर चकाचौध मे रह गया। बाद मे सभलकर उन दिव्यास्त्रो को बडे कौतूहल के साथ एक-एक करके

स्पर्श किया। स्पर्श करने मात्र मे उत्तर का भय जाता रहा! उसमे वीरता की बिजली-सी दौड गई। उत्तर ने उत्साहित होकर पूछा--"बृहन्नला! सचमुच बताओ ये धनुप-बाण और खड्ग क्या पाडवों के है? मैंने तो सुना था कि वे राज्य से वचित होकर जंगल मे चले गये थे और फिर आगे उनका कोई पता नही चला। क्या तुम पाण्डवो को जानती हो? कहा है वे?"

तब अर्जुन ने राजकुमार उत्तर को अपना और अपने भाइयों तथा द्रौपदी का असली परिचय दिया और बोला--"राजा विराट की सेवा करनेवाले कक ही युधिष्ठिर है। रसोइया वल्लभ, जो तुम्हारे पिता की भोजनशाला का आचार्य है, भीमसेन है। जिसका अपमान करने के कारण कीचक को मृत्यु के मुह मे जाना पडा था वही सैरध्री पाचाल-नरेश की यशस्विनी पुत्री द्रौपदी है। अश्वपाल ग्रथिक और ग्वाले का काम करनेवाले ततिपाल और कोई नही, नकुल एव सहदेव ही है। और मै हू अर्जुन। इसलिए राजकुमार! घबराओ नही। अभी मेरी वीरता का परिचय पा लोगे। भीष्म, द्रोण और अश्वत्थामा के देखते-देखते कौरव-सेना को हरा दूगा और सारी गाये छुडा लाऊगा और तुम बडे यशस्वी बनोगे।"

यह सुनते ही उत्तर हाथ जोडकर अर्जुन को प्रणाम करके बोला--"पार्थ! आपके दर्शन पाकर मै कृतार्थ हुआ। क्या सचमुच ही मै अब यशस्वी धनजय को अपनी आखों देख रहा हू? जिन्होने मुझ कायर मे वीरता का सचार किया क्या वे विजयी अर्जुन ही है? नासमझी के कारण मुझसे जो भूल हुई उसे क्षमा करे।"

कौरव-सेना को देखकर उत्तर फिर घबरा न जाय, इसलिए उसका हौसला बढाते हुए अर्जुन पहले के अनेक विजयी युद्धो की कथा सुनाता जाता था। इस प्रकार उत्तर को धीरज बधा और उसका हौसला बढाकर अर्जुन ने कौरव-सेना के सामने रथ ला खडा किया। दोनो हाथो से भगवान को प्रणाम किया। हाथो की चूडिया उतार फेकी और चमडे के अगुलित्राण पहन लिए। खुले लम्बे केश सवारकर कपडे से कसकर बांध लिये। पूर्व की ओर मुह करके अस्त्रो का ध्यान किया और रथ पर आरूढ होकर

गाण्डीव-धनुष सभाल लिया; और डोरी चढाकर तीन बार जोर से टकार दिया। गाण्डीव की टंकार से दसो दिशाये गूज उठी। कौरव-सेना के वीर वह टंकार सुनते ही पुकार उठे—"अरे, यह तो अर्जुन के गाण्डीव की टकार है!" कौरव-सेना टकार-ध्वनि से स्वस्थ होने भी न पाई थी कि अर्जुन ने खड़े होकर अपने देवदत्त नामक शख की ध्वनि की जिससे कौरव-सेना थर्रा उठी। उसमें खलबली मच गई कि पाडव आ गये।

: ४७ :

प्रतिज्ञा-पूर्ति

अर्जुन का रथ जब धीर-गभीर घोष करता हुआ आगे बढा तो धरती हिलने लगी। गाण्डीव-धनुष की टकार सुनकर कौरव-सेना के वीरो का कलेजा काप उठा।

यह देखकर द्रोण ने कहा—"सेना की व्यूह-रचना सुव्यवस्थित रूप से कर लेनी होगी। इकट्ठे रहकर सावधानी के साथ युद्ध करना होगा। मालूम होता है यह तो अर्जुन आ गया है।"

आचार्य की शका और घबराहट दुर्योधन को ठीक न लगी। वह कर्ण से बोला—"पाडव जुए के खेल मे जब हार गये थे तो शर्त के अनुसार उन्हे बारह बरस वनवास और एक बरस अज्ञातवास में बिताना था। अभी तेरहवा बरस पूरा नही हुआ है और अर्जुन हमारे सामने प्रकट हो गया है। तो फिर भय किस बात का? शर्त के अनुसार पाडवो को फिर बारह बरस वनवास और एक बरस अज्ञातवास मे बिताना होगा। आचार्य को तो चाहिए कि वे आनन्द मनावें। पर वे तो भय-विह्वल हो रहे हैं। बात यह है कि पडितो का स्वभाव ऐसा ही होता है। दूसरो का दोष निकालने में ही वे चतुरता का परिचय देते हैं। अच्छा यही होगा कि उन्हे पीछे ही रखकर हम आगे बढें और सेना का सचालन करे।"

कर्ण ने दुर्योधन की हां-में-हां मिलाते हुए कहा—"अजीब बात है कि सेना के योद्धा भय के मारे काप रहे हैं जबकि उन्हे दिल खोलकर लड़ना

चाहिए। आप लोग यही रट लगा रहे हैं कि सामने जो रथ आ रहा है उसपर अर्जुन धनुष ताने बैठा है। पर वहां अर्जुन के बजाय परशुराम हों तो भी हम डरें क्यो? मै तो अकेला ही जाकर उसका मुकाबला करूंगा और दुर्योधन को उस दिन जो वचन दिया था उसे आज पूरा करके दिखाऊगा। सारी कौरव-सेना और उसके सभी सेनानायक भले ही खडे देखते रहे, चाहे गायों को भगा ले जायं; मै अन्त तक डटा रहूंगा और अगर वह अर्जुन हुआ तो अकेला ही उससे निबट लूगा।"

कर्ण को यो दम भरते देख कृपाचार्य झल्लाकर बोले—"कर्ण! मूर्खता की बाते न करो। हम सबको एक साथ मिलकर अर्जुन का मुकाबला करना होगा, उसे चारो ओर से घेर लेना होगा। नही तो हमारे प्राणो की खैर नही। तुम अकेले ही अर्जुन के सामने जाने का साहस न करो।"

यह सुन कर्ण को गुस्सा आगया। वह बोला—"आचार्य तो अर्जुन की प्रशंसा करते कभी थकते नही। अर्जुन की शक्ति को बढा-चढाकर बताने की इन्हे एक आदत-सी पड़ गई है। न मालूम यह भय के कारण है या यह कि अर्जुन को ये अधिक प्यार करते है इस कारण है। जो हो, जो डरपोक है या जो केवल पेट पालने के लिए राजा के आश्रित है, वे भले ही हाथ-पर-हाथ धरे खड़े रहे—न करें युद्ध या वापस लौट जाय। मै अकेला ही डटा रहूंगा। जो वेदो की तो दुहाई देते है और शत्रु की प्रशसा करते रहते है उनका यहा काम ही क्या है?"

जब कर्ण ने आचार्य की यो चुटकी ली तो कृपाचार्य के भानजे अश्वत्थामा से न रहा गया। वह बोला—"कर्ण! अभी तो हम गाये लेकर हस्तिनापुर जा नही पहुचे है। किया तो तुमने कुछ नही और कोरी डीगे मारने मे समय गवा रहे हो। हम भले ही क्षत्रिय न हो, वेद और शास्त्र रटनेवाले ही हो; पर राजाओं को जुए मे हराकर उनका राज्य जीतने की बात किसी भी शास्त्र मे हमने न देखी है, न पढी है। फिर जो लोग युद्ध जीतकर भी राज्य प्राप्त करते है वे भी अपने मुह अपनी तारीफ नही करते। तुम लोगो ने कौन-सा भारी पहाड उठा लिया जो ऐसी शेखी बघार रहे हो? अग्नि चुपचाप सब चीजों को पकाता

है, सूर्य चुपचाप प्रकाश फैलाता है और पृथ्वी अखिल चराचर का भार वहन करती है। फिर भी ये सब अपनी प्रशंसा आप नही करते। तब जिन क्षत्रिय वीरो ने जुआ खेलकर राज्य जीत लिया है, उन्होंने कौन-सा ऐसा पराक्रम किया है जो अपने मुह अपनी प्रशसा करते फूले नही समाते ? शिकारी जैसे जाल फैलाकर चिडियो को फसाता है उसी प्रकार जिन लोगो ने कुचक्र का जाल फैलाकर पाण्डवो का राज्य छीन लिया है, वे कम-से-कम अपने मुह अपनी प्रशंसा तो न करे ! अरे कर्ण ! अरे दुर्योधन ! तुम लोगो ने अभी तक किस लडाई मे पाण्डवो को हराया है ? एक वस्त्र पहनी हुई द्रौपदी को सभा में खीच लाने वाले वीरो ! तुम लोगो ने उसे किस युद्ध मे जीता था ? लेकिन होशियार हो जाओ। आज यहा कोई चौपड का खेल नही होनेवाला कि पासा फेका और राज हथिया लिया। आज तो अर्जुन के साथ लडाई मे दो-दो हाथ करने है। अर्जुन का गाण्डीव चौपड की गोटे नही फेकेगा, बल्कि पैने बाणो की बौछार करेगा। यहा शकुनि की कुचाले काम न देगी। यह खेल नही—युद्ध है।"

इस प्रकार कौरव-सेना के वीर आपस मे ही झगडने लगे। यह देख भीष्म बडे खिन्न हुए। वे बोले—"बुद्धिमान व्यक्ति कभी अपने आचार्य का अपमान नही करते। योद्धा को चाहिए कि देश और काल को भली-भाति देखते हुए उसके अनुसार युद्ध करे। कभी-कभी बुद्धिमान लोग भी भ्रम मे पड जाते है। समझदार दुर्योधन भी क्रोध के कारण भ्रम मे पडा हुआ है और पहचान न पाया है कि सामने जो खडा है वह अर्जुन है। अश्वत्थामा ! कर्ण ने जो-कुछ कहा, मालूम होता है, वह आचार्य को उत्तेजित करने ही के लिए कहा था। तुम उसकी बातो पर ध्यान न दो। द्रोण, कृप एव अश्वत्थामा इसको क्षमा कर दे। चारो वेदो का ज्ञान एव क्षत्रियोचित तेज आचार्य द्रोण एवं उनके पुत्र अश्वत्थामा को छोडकर और किसमें एक साथ पाया जा सकता है ? परशुराम को छोड-कर द्रोणाचार्य की बराबरी करनेवाला और कौन-सा ब्राह्मण है ? यह आपस मे वैर-विरोध या झगडे का समय नही है। अभी तो सबको एक साथ मिलकर शत्रु का मुकाबला करना है।"

पितामह के इस प्रकार समझाने पर कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीर जो उत्तेजित हो रहे थे, शांत हो गये।

सबको शान्त देखकर भीष्म दुर्योधन से फिर बोले—"बेटा दुर्योधन, अर्जुन प्रकट हो गया वह ठीक है। पर प्रतिज्ञा का समय कल ही पूरा हो चुका। चन्द्र और सूर्य की गति, वर्ष, महीने और पक्ष विभाग के पारस्परिक सबध को अच्छी तरह जाननेवाले ज्योतिषी मेरे कथन की पुष्टि करेगे। तुम लोगो के हिसाब मे कुछ भूल हुई है। प्रत्येक वर्ष के एक-जैसे महीने नही होते। मालूम होता है कि तुम लोगो की गणना मे कुछ भूल है। इसीलिए तुम्हे भ्रम हुआ है। ज्योही अर्जुन ने गाण्डीव धनुष की टकार की, मै समझ गया कि प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो गई। दुर्योधन! युद्ध शुरू करने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना होगा कि पाण्डवो के साथ सधि कर ले या नही। यदि सधि करने की इच्छा है तो उसके लिए अभी समय है। बेटा, खूब सोच-विचार कर बताओ कि तुम न्यायोचित सधि चाहते हो या युद्ध ?"

दुर्योधन ने कहा—"पूज्य पितामह! मै सधि नही चाहता। राज्य तो रहा दूर, मै तो एक गाव तक पाण्डवो को देने के लिए तैयार नही हू। इसलिए लडने की ही तैयारिया की जाय।"

यह सुन द्रोणाचार्य ने कहा—"सेना के चौथे हिस्से को अपनी रक्षा के लिए साथ लेकर राजा दुर्योधन हस्तिनापुर की ओर वेग से कूच कर दे। एक हिस्सा गायो को घेरकर भगा ले जाय। बाकी जो सेना रह जायगी उसे साथ लेकर हम पाचो महारथी अर्जुन का मुकाबला करे। ऐसा करने से ही राजा की रक्षा हो सकती है।"

आचार्य की आज्ञानुसार कौरव वीरो ने व्यूह-रचना कर ली।

उधर अर्जुन उत्तर से कह रहा था—"उत्तर! सामने की शत्रु-सेना मे दुर्योधन का रथ नही दिखाई दे रहा है। कवच पहने जो खडे है वे पितामह भीष्म है, लेकिन दुर्योधन कहा चला गया ? इन महारथियो की ओर से हटकर अपना रथ उधर ले चलो जिधर दुर्योधन हो। मुझे भय है कि दुर्योधन कही गाये लेकर आगे हस्तिनापुर की ओर न जा रहा हो।"

उत्तर ने रथ उसी ओर हाक दिया जिधर से दुर्योधन वापस जा रहा था। जाते-जाते अर्जुन ने गाण्डीव पर चढाकर दो-दो बाण आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की ओर इस तरह मारे जो उनके चरणो मे जाकर गिरे। इस प्रकार अपने बडो की वन्दना करके अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा किया।

पहले तो अर्जुन ने गाये भगा ले जाती हुई कौरव-सेना की टुकडी को पास जाकर जरा-सी देर मे तितर-बितर कर दिया और गायें छुडा ली। ग्वालो को गाये विराट-नगर की ओर लौटा ले जाने की आज्ञा देकर अर्जुन दुर्योधन का पीछा करने लगा।

अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देखकर भीष्म आदि सेना लेकर अर्जुन का पीछा करने लगे और शीघ्र ही उसे घेरकर बाणो की बौछार करने लगे। अर्जुन ने उस समय अद्भुत रण-कुशलता का परिचय दिया। पहले तो उसने कर्ण पर हमला करके उसे बुरी तरह घायल करके मैदान मे भगा दिया। इसके बाद द्रोणाचार्य की बुरी गत होते देख अश्वत्थामा आगे बढा और अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन ने जरा हटकर द्रोणाचार्य को खिसक जाने के लिए मौका दे दिया। मौका पाकर आचार्य जल्दी से खिसक गये। उनके चले जाने के बाद अर्जुन अब अश्वत्थामा पर टूट पडा। दोनो मे भयानक युद्ध होता रहा। अत मे अश्वत्थामा को हार माननी पडी। उसके बाद कृपाचार्य की बारी आई और वे भी हार खा गए। पाचो महारथी जब इस भाति परास्त हो गये तो फिर सेना किसके बल पर टिकती ! सारी कौरव-सेना को अर्जुन ने जल्दी ही तितर-बितर कर दिया। सैनिक अपनी जान लेकर भाग खडे हुए।

मानी भीष्म से यह न देखा गया। डरकर भागती हुई सेना को फिर से इकट्ठी करके वे द्रोणाचार्य आदि के साथ अर्जुन पर टूट पडे। भीष्म और अर्जुन मे ऐसा भीषण सग्राम हुआ कि देवता भी उसे देखने के लिए आकाश म इकट्ठे हो गये। चारो ओर से कौरव-महारथी अर्जुन पर वार करने लगे। अर्जुन ने भी उस समय अपने चारो ओर बाणो की ऐसी वर्षा की कि जिससे वह बरफ से ढके पर्वत के समान प्रतीत होने लगा।

इस भाति भीषण युद्ध करते हुए भी अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा करना न छोडा। पाचो महारथियो के अर्जुन को एकसाथ रोकने का प्रयत्न करने पर भी वह रोका न जा सका और आखिर दुर्योधन के निकट पहुंच ही गया। उसने दुर्योधन पर भीषण हमला कर दिया। दुर्योधन घायल होकर मैदान छोड भाग खडा हुआ। अर्जुन गरजकर बोला—"दुर्योधन! तुम्हे अपनी वीरता और यश का बडा घमण्ड था। अब जब वीरता दिखाने का समय आया तो भागते क्यों हो?" यह सुनकर दुर्योधन साप की तरह फुफकारता हुआ फिर आ डटा। भीष्म, द्रोण आदि कौरव-वीरो ने दुर्योधन को चारो तरफ से घेर लिया और अर्जुन की बाण-वर्षा से उसकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार बहुत देर तक घोर सग्राम होता रहा और हार-जीत का निर्णय होना कठिन हो गया। तब अर्जुन ने मोहनास्त्र का प्रयोग किया। इससे सारे कौरव-वीर पृथ्वी पर बेहोश होकर गिर पडे। अर्जुन ने उन सबके वस्त्र उतार लिये। उन दिनो की प्रथा के अनुसार शत्रु-पक्ष के सैनिको के वस्त्र-हरण कर लेना जीत का चिन्ह समझा जाता था।

जब दुर्योधन को होश आया तो भीष्म ने उससे कहा कि अब वापस हस्तिनापुर लौट चलना चाहिए। भीष्म की सलाह मानकर सारी सेना हार मानकर हस्तिनापुर की ओर लौट चली।

इधर युद्ध से लौटते हुए अर्जुन ने कहा—"उत्तर! अपना रथ नगर की ओर ले चलो। तुम्हारी गाये छुडा ली गई। शत्रु भी भाग खड हुए। इस विजय का यश तुम्ही को मिलना चाहिए। इसलिए चन्दन लगाकर और फूलो का हार पहनकर नगर मे प्रवेश करना।"

रास्ते मे शमी के वृक्ष पर अपने अस्त्रो को ज्यो-का-त्यों रखकर अर्जुन ने फिर से बृहन्नला का वेश धारण कर लिया और राजकुमार उत्तर को रथ पर बैठाकर सारथी के स्थान पर खुद बैठ गया। विराट-नगर की ओर कुछ दूतो को यह आज्ञा देकर भेज दिया कि जाकर घोषणा करे कि राजकुमार उत्तर की जय हुई।

: ४८ :

विराट का भ्रम

त्रिगर्त-राज सुशर्मा पर विजय प्राप्त करके राजा विराट नगर में वापस आये तो पुरवासियो ने उनका धूम-धाम से स्वागत किया। अन्त-पुर मे राजकुमार उत्तर को न पाकर राजा ने पूछताछ की तो स्त्रियों ने बडे उत्साह के साथ बताया कि कुमार कौरवो से लडने गये है। उन स्त्रियो की आखो में तो राजकुमार उत्तर कौरव-सेना की कौन कहे, सारे विश्व पर विजय पाने के योग्य था। इस कारण उनको इसकी चिन्ता या आश्चर्य कुछ नही था। उन्होने बडी बेफिक्री से राजकुमार के युद्ध में जाने की बात राजा से कही।

पर राजा तो यह सुनकर एकदम चौक पडे। उनके विशेष पूछने पर स्त्रियो ने कौरवो के आक्रमण आदि का सारा हाल सुनाया। यह सब सुनकर राजा का मन चितित हो उठा। दुखी होकर बोले—"राजकुमार उत्तर ने एक हीजडे को साथ लेकर यह बडे दुसाहस का काम किया है। इतनी बडी सेना के सामने आखे मूदकर कूद पडा! कहा कौरवों की विशाल सेना और उसके सेनापति और कहा मेरा सुकोमल प्यारा पुत्र! अबतक तो वह कभी का मृत्यु के मुह मे पहुच चुका होगा। इसमे कोई सदेह ही नही है।" कहते-कहते वृद्ध राजा का कण्ठ रुध गया।

फिर अपने मत्रियो को आज्ञा दी कि सेना इकट्ठी करके ले जाय और राजकुमार यदि जीते हो तो उन्हे किसी भी तरह सुरक्षित ले आय।

राजकुमार उत्तर के समाचार जानने के लिए सैनिको का एक दल तत्काल रवाना कर दिया गया।

राजा को इस प्रकार शोकातुर होते देखकर सयासी कक ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा—"आप राजकुमार की चिता न करें। बृहन्नला सारथी बनकर उनके साथ गई हुई है। बृहन्नला को आप नही जानते,

लेकिन मै जानता हू। जिस रथ की सारथी बृहन्नला होगी, उसपर चढ़कर कोई भी युद्ध मे जाय, उसकी अवश्य ही जीत होगी। इसलिए आपके पुत्र विजेता बनकर लौटेंगे। इसी बीच सुशर्मा पर आपकी विजय की भी खबर वहा पहुच चुकी होगी। कौरव-सेना मे भगदड मच जायगी। आप चिन्ता न करे।"

कक इस प्रकार बाते कर ही रहे थे कि इतने में उत्तर के भेजे हुए दूतो ने आकर कहा—"राजन्! आपका कल्याण हो! राजकुमार जीत गए। कौरव-सेना तितर-बितर कर दी गई। गायें लौटा ली गईं!"

सुनकर विराट आखे फाडकर देखते रह गये। उन्हे विश्वास ही न होना था कि अकेला उत्तर कौरवो को जीत सकेगा।

कंक ने उन्हे विश्वास दिलाकर कहा—"राजन्, सदेह न करे। दूतो का कहना सच ही होना चाहिए। जब बृहन्नला सारथी बनी उसी क्षण आपके पुत्र की जीत निश्चित हो चुकी थी। मै जानता हू कि देवराज इन्द्र और श्रीकृष्ण के सारथी भी बृहन्नला की बराबरी नही कर सकते। सो आपके पुत्र का जीत जाना कोई आश्चर्य की बात नही।"

पुत्र की विजय हुई यह जानकर विराट आनन्द और अभिमान के मारे फूले न समाये। उन्होने दूतो को अमूल्य रत्न एव धन पुरस्कार के रूप मे देकर खूब आनन्द मनाया।

मत्रियो एव अनुचरो को आज्ञा देकर कहा—"तुम लोग खूब आनद मनाओ। राजकुमार जीत गए है। नगर को खूब सजाओ। राजा सुशर्मा को मैने जो जीता, सो कोई बडी बात न थी। राजकुमार की महान् विजय के आगे मेरी जीत कुछ भी नही है। राजवीथियो मे ध्वजाए फहरा दो। मगल-वाद्य बजाने की आज्ञा दो। सिंहशिशु-से निडर और पराक्रमी मेरे प्रिय पुत्र का धूम-धाम से स्वागत हो, इसका प्रबध करो। घर-घर मे विजय का उत्सव मनाया जाय।"

इसके बाद राजा ने प्रसन्नता से अन्त पुर मे जाकर कहा—सैरध्री चौपड की गोटे तो जरा ले आओ। चलो कक महाराज, दो-दो हाथ चौपड खेल ले। आज खुशी के मारे मै पागल-सा हुआ जा रहा हूं। मेरी समझ मे नही आता कि अपना आनन्द कैसे व्यक्त करूं!"

दोनों खेलने बैठे। खेलते समय भी बाते होने लगी।

"देखा राजकुमार का शौर्य ? विख्यात कौरव-वीरो को मेरे बेटे ने अकेले ही लडकर जीत लिया!" विराट ने कहा।

"नि संदेह आपके पुत्र भाग्यवान है, नही तो बृहन्नला उनकी सारथी बनती ही कैसे?" कक ने कहा।

विराट झुझलाकर बोले--"संन्यासी! आपने भी क्या यह बृहन्नला-बृहन्नला की रट लगा रखी है? मै अपने कुमार की विजय की बात कर रहा हू और आप उस हीजडे के सारथी होने की बडाई करने लगे।"

यह सुन कक ने धीरज से कहा--"आपको ऐसा नही समझना चाहिए। बृहन्नला को आप साधारण सारथी न समझें। जिस रथ पर वह बैठी वह कभी विजय पाये बगैर लौटा ही नही। उसके चलाये हुए रथ पर चढकर साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी बडे-से-बडे योद्धाओ को सहज ही मे हरा सकता है।"

अब राजा से न रहा गया। अपने हाथ का पासा युधिष्ठिर (कक) के मुह पर दे मारा और बोला--"ब्राह्मण सन्यासी! खबरदार, जो फिर ऐसी बाते की। जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो?" पांसे की मार से युधिष्ठिर के मुख पर चोट आई और खून बहने लगा।

सैरंध्री जल्दी से अपने उत्तरीय से उनका घाव पोछने लगी। जब उत्तरीय खून से लथपथ हो गया तो पास रखे एक सोने के प्याले मे उसे निचोडने लगी।

"यह क्या कर रही हो? खून को प्याले मे क्यो निचोड रही हो?" विराट ने क्रोध से पूछा। अभी वे शात न हुए थे।

सैरंध्री ने कहा--"राजन्! सन्यासी के रक्त की जितनी बूदे नीचे जमीन पर गिर जायगी उतने बरस आपके राज्य मे पानी नही बरसेगा। इसी कारण मैने यह खून प्याले मे निचोड लिया है। कंक की महानता आप नही जानते।"

इतने मे द्वारपाल ने आकर खबर दी कि राजकुमार उत्तर बृहन्नला के साथ द्वार पर खड़े है। राजा से भेट करना चाहते हैं।

सुनते ही विराट जल्दी से उठकर बोले—"आने दो ! आने दो।" युधिष्ठिर ने इशारे से द्वारपाल को कहा कि सिर्फ राजकुमार को लाओ। बृहन्नला को नही।

युधिष्ठिर को भय था कि कही राजा के हाथो उनको जो चोट लगी है उसे देखकर अर्जुन गुस्से मे कोई गड़बडी न कर दे। यही सोच उन्होने द्वारपाल को ऐसा आदेश दिया।

राजकुमार उत्तर ने प्रवेश करके पहले अपने पिता को नमस्कार किया और फिर कक को प्रणाम करना ही चाहता था कि उनके मुख पर से खून बहता देखकर चकित रह गया। उसे अर्जुन से मालूम हो चुका था कि कक तो असल मे युधिष्ठिर ही है।

उसने पूछा—"पिताजी, इन धर्मात्मा को किसने यह पीडा पहुचाई ?"

विराट ने कहा—"बेटा ! जब मैं तुम्हारी विजय की खबर मे खुश होकर तुम्हारी प्रशसा करने लगा तो इन्होने ईर्ष्या के मारे बृहन्नला की प्रशसा करते हुए तुम्हारी वीरता और विजय की अवज्ञा की। यह मुझमे न सहा गया। इसलिए क्रोध मे मैंने चौपड के पासे फेक मारे। क्यो, तुम उदास क्यो हो गये, बेटा ?"

पिता की बात सुनकर उत्तर काप गया। उसके भय और चिन्ता की सीमा न रही। बोला—"पिताजी, आपने यह बडा पाप कर डाला। अभी इनके पाव पकडकर क्षमा-याचना कीजिए। अपने किये पर पश्चात्ताप कीजिए, नही तो हमारे वश का सर्वनाश हो जायगा।

विराट कुछ समझ ही न सके कि बात क्या है। परन्तु उत्तर ने फिर आग्रह किया तो उन्होने युधिष्ठिर के पाव पकडकर क्षमा-याचना की। इसके बाद उत्तर को गले लगा लिया और बोले—"बेटा, बडे वीर हो तुम। बताओ तो तुमने कौरवो की सेना को जीता कैसे ? लाखो गायो को सेना से छुडाया कैसे ? विस्तार से सब हाल सुनाओ। जो कुछ हुआ, शुरू से लेकर सब हाल बताओ।"

उत्तर ने कहा—"पिताजी, मैंने कोई सेना नही हराई। मैं तो लडा भी नही। एक भी गाय मैंने नही लौटाई। यह सब किसी देवकुमार का

कार्य था। उन्होंने कौरवों की सेना को तहस-नहस करके गायें लौटा दीं। मैं तो सिर्फ देखता रहा।"

बड़ी उत्कंठा के साथ राजा ने पूछा--"कौन था वह वीर? कहां है वह? बुला लाओ उसे। उस वीर के दर्शन करके अपनी आंखें धन्य कर लूं जिसने मेरे पुत्र को मृत्यु के मुंह से बचाया। उस वीर को मैं अपनी पुत्री उत्तरा को भेंट करूंगा। उसकी पूजा करूंगा। बुला लाओ उसे।"

"पिताजी, वह देवकुमार अन्तर्द्धान हो गये; लेकिन फिर भी मेरा विश्वास है कि आज या कल वे अवश्य प्रकट होंगे।" राजकुमार ने कहा।

राजा विराट और राजकुमार उत्तर की विजय का उत्सव मनाने के लिए राजसभा हुई। नगर के सब प्रमुख लोग आकर अपने-अपने आसनों पर बैठने लगे। कंक, वल्लभ, बृहन्नला, तंतिपाल, ग्रंथिक आदि राजा के पांचों सेवक सभा में आये तो सबकी दृष्टि उनपर पड़ी। जब ये पांचों राजकुमारों के लिए नियुक्त स्थानों पर जा बैठे तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्होंने यह सोच अपना समाधान कर लिया कि राजा की सेवा-टहल करनेवाले नौकर होने पर भी समय-समय पर उन्होंने वीरता से राजा की जो सहायता की, उसीके लिए राजा ने इनको यह गौरव प्रदान किया होगा। यदि यह बात न होती तो इन सेवकों की हिम्मत कैसे पड़ती कि राजोचित आसनों पर जा बैठें!

लोग यह सोच ही रहे थे कि इतने में राजा विराट सभा में प्रविष्ट हुए। यह देखकर कि पांचों सेवक राजकुमारों के लिए नियत आसन पर शान से बैठे हुए हैं, विराट के भी आश्चर्य और क्रोध का ठिकाना न रहा।

उन्होंने अपने क्रोध को रोका और पांचों भाइयों के पास उनके आसनों पर जाकर पूछा कि आज भरी सभा में यह अविनय आप लोग क्यों कर रहे हैं। थोड़ी देर तक तो विराट और पाण्डवों के बीच में कुछ विवाद होता रहा; पर आखिर में पाण्डवों ने सोचा कि अब ज्यादा विवाद करना और अपने को छिपाये रखना ठीक नहीं। यह सोचकर अर्जुन ने पहले राजा विराट को और बाद में सारी सभा को अपना असली परिचय दे दिया। लोगों के आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। सभा में कोलाहल मच गया।

राजा विराट का हृदय कृतज्ञता, आनन्द और आश्चर्य से तरंगित हो उठा। पांचों पाण्डव और राजा द्रुपद की पुत्री मेरे यहां सेवा-टहल करते हुए अज्ञात होकर रहे; मेरे और मेरे पुत्र के प्राणों की रक्षा की; मैं कैसे इस सबका बदला चुकाऊं? कैसे इनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं? यह सोचकर राजा विराट का जी भर आया। युधिष्ठिर से बार-बार गले मिले और गद्गद् होकर कहा—"मैं आपका ऋण कैसे चुकाऊं? मेरा यह सारा राज्य आपका है। मैं आपका अनुचर बनकर रहूंगा।"

युधिष्ठिर ने प्रेम के साथ कहा—"राजन्! मैं आपका बहुत आभारी हूं। राज्य तो आप ही रखिये। आपने आड़े समय पर हमें जो आश्रय दिया वही लाखों राज्यों के बराबर है।

विराट ने कुछ सोचने के बाद अर्जुन से आग्रह किया कि आप राज-कन्या उत्तरा से ब्याह कर लें।

अर्जुन ने कहा—"राजन्! आपका बड़ा अनुग्रह है। पर आपकी कन्या को मैं नाच और गाना सिखाता रहा हूं। मेरे लिए वह बेटी के समान है। इस कारण यह उचित नहीं कि मैं उसके साथ ब्याह करूं। हां, यदि आपकी इच्छा ही हो तो मेरे पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका ब्याह हो जाय। उत्तरा को मैं अपनी पुत्र-वधू स्वीकार करने के लिए तैयार हूं।"

राजा विराट ने यह बात मान ली।

इसके कुछ समय बाद दुरात्मा दुर्योधन के दूतों ने आकर युधिष्ठिर से कहा—"कुन्ती-पुत्र! महाराज दुर्योधन ने हमें आपके पास भेजा है। उनका कहना है कि उतावली के कारण प्रतिज्ञा पूरी होने से पहले अर्जुन पहचाने गये हैं। इसलिए शर्त के अनुसार आपको बारह बरस के लिए और वनवास करना होगा।"

इसपर धर्मराज युधिष्ठिर हंस पड़े और बोले—"दूतगण, शीघ्र ही वापस जाकर दुर्योधन को कहो कि पितामह भीष्म और ज्योतिष-शास्त्र के जानकारों से पूछकर इस बात का निश्चय वे करें कि अर्जुन जब प्रकट हुआ था तब प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो चुकी थी या नहीं। मेरा यह दावा है कि तेरहवां बरस पूरा होने के बाद ही अर्जुन ने धनुष की टंकार की थी।"

●